ॐ

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

स्वर्गीय भैया भगवतीदासजी कृत

ब्रह्मविलास

कवि नाथूराम (प्रेमी) जैन द्वारा संशोधित

सम्पादन :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियां, भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत
2080

वीर संवत
2550

ई. सन
2024

—: प्रकाशन :—

फाल्गुन अष्टाह्निका महापर्व
दिनांक 17 मार्च से 25 मार्च 2024 के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250 फोन : 02846–244334

2. श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर,** अलीगढ़।

प्रकाशकीय

अध्यात्मप्रेमी भैया भगवतीदासजी द्वारा रचित ब्रह्मविलास नामक ग्रन्थ का प्रस्तुत संस्कारण प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। लेखक द्वारा रचित निर्वाणकाण्ड सम्पूर्ण दिगम्बर जैन समाज में अत्यन्त लोकप्रिय है एवं प्रत्येक तीर्थंकर भगवन्त के मोक्षकल्याणक के अवसर पर इसका पाठ अनिवार्यरूप से किया जाता है। इसी प्रकार निमित्त-उपादान संवाद लेखक की लोकप्रिय रचना है। जिसने पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी को अत्यन्त प्रभावित किया और इस संवाद पर उन्होंने भाववाही प्रवचन किये जो 'मूल में भूल' नामक ग्रन्थ में प्रकाशित हैं। इसी प्रकार लेखक की अन्य अनेक रचनाएँ अध्यात्म एवं आगमरस से ओतप्रोत हैं।

सभी साधर्मीजन इन रचनाओं का रसपान करते हुए अपने आत्महित का मार्ग प्रशस्त करें, इस भावना से प्रस्तुत संकलन प्रकाशित किया जा रहा है। इस रचना का संशोधनकार्य पण्डित नाथूलाल प्रेमी द्वारा किया गया था। जिसका प्रकाशन अनेक वर्षों पूर्व मुम्बई से जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय से वीर संवत् २४३० को प्रकाशित किया गया था। अनेक वर्षों से यह कृति अनुपलब्ध थी। इस कारण इसका यह संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रस्तुत संस्करण को व्यवस्थितरूप से प्रस्तुत करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) द्वारा किया गया है। सभी साधर्मीजन इस कृति का भरपूर लाभ लें, इसी भावना के साथ...

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

विले पार्ला, मुम्बई

प्रस्तावना

वर्तमान समय में हिन्दी भाषा काव्य के प्राचीन वा अर्वाचीन जितने ग्रन्थ देखने में आते हैं, उनमें से शतांश भी ऐसे ग्रन्थ नहीं निकलेंगे जिनमें कि वैराग्य वेदान्त नीति वा भक्तिरस का स्वाद मिल सके, ऐसे ग्रन्थ जिनमें कि अलंकार-नायकादि भेदों की भरमार हैं, हजारों मिलते हैं तथा विलासितापूर्ण संसार में दिन पर दिन नये बनते ही चले जाते हैं। इन ग्रन्थों से सर्वसाधारण को कितना लाभ पहुँचता है, सो तो हम नहीं कह सकते, परन्तु इस समय कविवर भूधरदासजी के दो सवैये याद आ गये हैं, उन्हें पाठकों को सुनाये देते हैं।

राग उदै जग अन्ध भयो, सहजै सब लोगन लाज गमाई।
सीख विना सच सीखत हैं, विषयानके सेवनकी सुघराई।।
तापर और रचें रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अन्ध असूझनकी अखियाँनमें, झोंकत हैं रज रामदुहाई।।१।।

हे विधि? भूल भई तुमतैं, समझे न कहाँ कसतूरि बनाई?।
दीन कुरंगनके तनमें! तृण दंत धरे करुणा नहिं आई।।
क्यों न रची तिन जीभन-जे, रसकाव्य करें परको दुखदाई।
साधुअनुग्रह दुर्जनदण्ड, दुहू सधते विसरी चतुराई।।२।।

हर्ष का विषय है कि ऐसे समय में जब कि भाषा साहित्य केवल मात्र शृंगाररस के भरोसे पर ही जी रहा था, जैन कवियों ने उसमें वेदान्त, वैराग्य भक्तिरस का श्रेयस्कर संचार करने के लिये अतिशय प्रयत्न किया है, क्योंकि जैनकवियों के बनाये हुए जितने ग्रन्थ आजतक देखे व सुने गये हैं, उनमें से किसी में भी विषयान्ध करनेवाले रसों का प्रवेश नहीं

हुआ है। बल्कि यों कहना चाहिए कि उनके इस बात की दृढ़ प्रतिज्ञा ही थी जो कि उनके बनाये हुए नाटक समयसार, प्रवचनसार, बनारसीविलास, द्यानतविलास, ब्रह्मविलास भूधरविलास, बुधजनशतसयी, वृन्दावनशतसयी आदि ग्रन्थों के देखने से भलीभाँति ज्ञात हो सकती है।

पण्डित हेमराजजी[१], बनारसीदासजी[२], भगवतीदासजी, द्यानतरायजी, भूधरदासजी, रामचन्द्रजी, सेवारामजी (जाट), जिनवख्श (मुसलमान), वृन्दावनजी, दौलतरामजी, बिहारीलालजी आदि बड़े-बड़े भाषाकवि जैनियों में हुए हैं। जिनकी काव्यशक्ति प्रशंसनीय थी। इनमें से भैया भगवतीदासजीकृत यह ब्रह्मविलास ग्रन्थ (जिसको एक प्रकार का वेदांत कहना चाहिए) है। इस ग्रन्थ के विषय में कुछ कहने से पहिले हम उक्त कविवर के विषय में कुछ लिखकर पाठकों को यथाशक्ति परिचय देना चाहते हैं।

कविवर भगवतीदासजी का जन्म आगरे में ही हुआ था और वे अपने अन्तसमय तक प्राय: वहीं पर रहे हैं, ऐसा उनके ग्रन्थ से जान पड़ता है। इनके पिता का नाम लालजी था। ये ओसवाल जाति के वणिक थे। इन्होंने प्रशस्ति में अपना गोत्र कटारिया लिखा है। इनके समय में औरंगजेब बादशाह मौजूद थे। इनकी जन्मतिथि व मृत्यु तिथि का अभी तक हमें पता नहीं लगा तो भी उनकी कविता से जो वि. सं. १७३१ में १७५५ तक का क्रमश: उल्लेख मिलता है, उससे जान पड़ता है कि, उनका जन्म अठारहवीं शताब्दी के पहिले ही हुआ होगा। इसके पहिले या आगे की कोई भी कविता अभी तक नहीं मिली है। कविता में इन्होंने अपना पद व भोग 'भैया' वा 'भविक' तथा एक जगह 'दासकिशोर' भी रक्खा है।

एक दन्तकथा से प्रसिद्ध है कि कविवर केशवदासजी तथा दादू पंथी

१-२. ये दोनों कवि-तुलसीदासजी के समकालीन थे।

बाबा सुन्दरदासजी और भैया भगवतीदासजी एक ही गुरु के शिष्य थे अर्थात् काव्य विषय इन्होंने एक ही गुरु से सीखा था। विद्याभ्यास के पश्चात् तीनों पृथक्-पृथक् हो गये। कविवर केशवदासजी ने जब 'रसिकप्रिया' ग्रन्थ निर्माण किया तो उसकी एक-एक प्रति सहपाठी वा मित्र होने के कारण बाबा सुन्दरदासजी तथा भगवतीदासजी के पास समालोचनार्थ भेजी। भगवतीदासजी ने रसिकप्रिया को देखकर एक छन्द बनाया, और उसे रसिकप्रिया के पृष्ठ पर लिखकर वापिस भेज दिया था। वह यह है।

बड़ी नीति लघु नीति करत है, वाय सरत वदवोय भरी।
फोड़ा आदि फुनगुणी मंडित, सकल देह मनु रोग दरी।।
शोणित हाड मांसमय मूरत, तापर रीझत घरी घरी।
ऐसी नार निरखकर केशव, 'रसिकप्रिया' तुम कहा करी?।।१९।।

(ब्रह्मविलास, पृष्ठ १८४)

इसी प्रकार बाबा सुन्दरदासजी ने भी जो कि वैराग्य वेदान्त विषय के अच्छे कवि थे, रसिकप्रिया की बहुत कुछ निन्दा की है। जो कि उनके बनाये हुए सुन्दरविलास से प्रगट है।

इस दन्तकथा के कथनानुसार इन्हें केशवदासजी के समकालीन ही कहना चाहिए परन्तु इतिहास प्रकाशकों व केशवदासजी का शरीरपात विक्रम संवत् १६७० में होना लिखा है। इस कारण इस दन्तकथा पर विश्वास नहीं किया जा सकता। कदाचित् रसिकप्रिया इनके देखने में पीछे से आई हो और फिर यह छन्द बनाया हो तो भी सम्भव हो सकता है।

यह ब्रह्मविलास ग्रन्थ यथार्थ में उनकी विक्रम संवत् १७३१ से १७५५ तक की कविता का संग्रह है जो कि सांसारिक कार्यों से निराकुलित होने पर समय समय पर बनाया गया है। किन्तु द्रव्यसंग्रह

आदि में इनके मित्र मानसिंहजी की कविता का भी प्रवेश है। यद्यपि वह कविता इतनी उत्तम नहीं है। जो इनकी कविता में शामिल की जाये तो भी कविवर ने अपने मित्र के उत्साहवर्द्धनार्थ इस ग्रन्थ में स्थान प्रदान करकें यथार्थ मित्रता वा सज्जनता का परिचय दिया है।

भगवतीदासजी संस्कृत और हिन्दी के ज्ञाता होने के अतिरिक्त फारसी, गुजराती मारवाड़ी बंगला आदि भाषा का भी ज्ञान रखते थे, ऐसा अनुमान उनकी कविता में प्रयोजित शब्दों से तथा कोई-कोई कविता खास गुजराती फारसी में करने से स्पष्टतया हो सकता है, तथा ओसवाल जाति की उत्पत्ति मारवाड़ देश से होने के कारण कविवर भगवतीदासजी की मातृभाषा मारवाड़ी होना भी संभव है। क्योंकि इनकी कविता में यत्र तत्र मारवाड़ी भाषा के (जो कि प्राय: प्राकृत भाषा के शब्दों से सुशोभित है) शब्दों का प्रयोग अधिक पाया जाता है।

इस ग्रन्थ के शोधने का भार ग्रन्थ प्रकाशक पण्डित पन्नालालजी ने मुझ अल्पज्ञ पर डाला था। यद्यपि मैं काव्य विषय का इतना जानकार नहीं हूँ, जो ऐसे-ऐसे अपूर्वभाव विशिष्ट ग्रन्थों का संशोधन कर सकूँ। परन्तु उक्त प्रकाशकजी की आज्ञा का उल्लंघन करने को असमर्थ होकर मुझसे जहाँ तक बना है, परिश्रम करने में त्रुटि नहीं की है। फिर भी सम्भव है कि प्रमादवशत: अनेक अशुद्धियाँ रह गयी होंगी। आशा है कि उन्हें पाठक महाशय सुधार के पढ़ने की कृपा करेंगे।

इस ग्रन्थ में परमात्मशतक और कुछ चित्रयद्धकविता जो पूर्वार्द्ध में थी और जिसे साथ प्रकाशित करने की आवश्यकता समझ अनवकाशवशत: रख छोड़ी थी, वह हमने कठिन दो दोहों के अर्थ से यथाशक्ति विभूषितकर अन्त में लगाई है। आशा है कि पाठक महाशय इस क्रमभंग करने के अपराध को क्षमा करेंगे। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में य, व, श, प, स, ख, क्ष, च्छ अनुसार और सानुनासिक सम्बन्धी

रदबदल की त्रुटियाँ भी विशेष रही होंगी सो पाठक महाशय मुझे अल्पज्ञ बालक जान क्षमा करेंगे।

इस ग्रन्थ के संशोधनार्थ ४ प्रतियों की सहायता ली गई है। जिनमें से एक तो वि०संवत् १७८० की, दूसरी सं. १८०४ की, तीसरी सं. १९२० की और चौथी सं. १९५३ की लिखी हुई है। इनमें से सं. १७८० की प्रति से हमें बहुत कुछ सहायता मिली है। क्योंकि यह प्रति ग्रन्थ निर्माण होने के थोड़े ही दिन पीछे की लिखी हुई होने से बहुत कुछ शुद्ध है। अन्य प्रतियों में अनभिज्ञ लेखकों की असावधानी की परम्परा से बहुत कुछ पाठान्तर पाया गया है।

अन्त में ग्रन्थकर्ता व प्रकाशक महाशय के परिश्रम पर विचार करके पाठकगण इस ग्रन्थ से अपना और अपनी सन्तति का हितसाधन करेंगे, ऐसी आशा करके इस प्रस्तावना को पूर्ण करता हूँ।

मुम्बई
१७-१२-१९०३ ई०

सर्वसज्जनों का हितैषी दास-
नाथूराम प्रेमी जैन

ॐ

श्री वीतरागाय नम:

स्वर्गीय कविवर भैया भगोतीदासकृत

ब्रह्मविलास

अथ पुण्यपचीसिका

मंगलाचरण छप्पय

प्रथम प्रणमि अरहंत, वहुरि श्रीसिद्ध नमिज्जै।
आचारज उवझाय, तासु पद वंदन किज्जै।।
साधु सकल गुणवंत, शान्तमुद्रा लखि वंदों।
श्रावक प्रतिमा धरन, चरन नमि पापनिकंदों।।
सम्यकवंत स्वभाव धर, जीवजगतमहिं होंहि जित।
तित तित त्रिकाल वंदित 'श्रविक' भावसहित शिरनाय नित।।१।।

श्री जिनेन्द्रस्तुति छप्पय

मोहकर्म जिहँ हर्‍यो, कर्‍यो रागादिक नष्टित।
द्वेष सवै परिहर्‍यो, जागि क्रोधहिं किय भिष्टित।।
मानमूढ़ता हरिय, दरिय माया दुखदायिन।
लोभ लहरगति गरिय, खरिय प्रगटी जु रसायिन।।
केवल पद अवलंवि हुव, भवसमुद्रतारनतरन।
त्रयकाल चरन वंदत 'भविक' जयजिनंद तुह[१] [२]पयशरन।।२।।

---

१. तुम्हारे, २. पद।

श्रीसिद्धस्तुति छप्पय छन्दः

अचल धाम विश्राम, नाम निहचै पद मंडित।
यथाजात परकाश, बास जहँ सदा अखंडित।।
भासहि लोकालोक, थोक सुखसहज विराजहिं।
प्रणमहि आपु सहाय, सर्वगुणमंदिर छाजहिं।।
इहविधि अनंत जिय सिद्धमहिं, ज्ञानप्रान विलसंत नित।
तिन तिन त्रिकाल वंदत 'भविक' भावसहित नित एकचित।।३।।

श्रीआचार्यजी की स्तुति छप्पय छन्द

पंच परम आचार, ताहि धारहिं आचारज।
ज्ञान चार संयुक्त, करत उत्तम सब कारज।।
देत धर्म उपदेश, हेत भविजीय विचारत।
जिनवानी जो खिरत, सु तौ निज हिरदै धारत।।
कहत अर्थ परकाशकें, केवलपद महिमा लखत।
जुगसाधुमध्यपरधानपद, आचारज अमृत चखत।।४।।

श्रीउपाध्यायस्तुति कवित्त

द्वादशांगवानी सुबखानी वीतराग देव, जानी भव्यजीवन अनादिकी कहानी है। ताके पाठ करिवेको भेद हृदै धरिवेको, अर्थके उचरिवेको पंडित प्रमानी है।। पर समुझायवेको ज्ञान उपजायवेको, रूपके रिझायवेको निपुण निदानी हैं। याहीतें प्रमाण मानी सत्य उवझायवानी, 'भैया' यों वखानी जाकी मोक्षवधू रानी है।।५।।

श्रीमुनिराज की स्तुति

दहिकैं करम अघ लहिकैं परममग, गहिकें धरमध्यान ज्ञानकी लगन है। शुद्ध निजरूप धरै परसों न प्रीति करै, बसत शरीरपैं अलिप्त

ज्यों गगन है।। निश्चै परिणामसाधि अपने गुणें अराधि, अपनी समाधिमध्य अपनी जगन है। शुद्ध उपयोगी मुनि राग-द्वेष भये शून्य, परसों लगन नाहिं आपमें मगन है।।६।।

श्रावकप्रशंसा

मिथ्यामतरीत टारी भयो अणुव्रतधारी, एकादश भेद भारी हिरदै वहतु है। सेवा जिनराजकी है यहै शिरताजकी है, भक्ति मुनिराजकी है चित्तमें चहतु है। वीसद्वै निवारी रीति भोजन न अक्षप्रीति, इंद्रिनिको जीत चित्त थिरता गहतु है। दयाभाव सदा धरै, मित्रता प्रगट करै, पापमलपंक हरै मुनि यों कहतु है।।७।।

सम्यक्तकी महिमा

भौथिति निकंद होय कर्मवंद मंद होय, प्रगटै प्रकाश निज आनंदके कंदको। हितको दृढाव होय विनैको बढाव होय, उपजै अंकूर ज्ञान द्वितीयाके चंदको।। सुगति निवास होय दुर्गतिको नाश होय, अपने उछाह दाह करै मोहफंदको। सुख भरपूर होय दोप दुख दूर होय, यातै गुणवृंद कहैं सम्यक सुछंदको।।८।।

श्रीजिनेन्द्रदेव की प्रतिमा को नमस्कार छप्पय

प्रथम प्रणमि सुरलोक, जहां जिनचैत्य अकृत्रिम।
चैत्य चैत्य प्रतिबिंब, एकसो आठ अनूपम।।
वहुरि प्रणमि मृतलोक, बिम्ब जिनके जिहँ थानक।
कृत्य अकृत्तिम दुविधि, लसै प्रतिमा मनमानक।।
पाताल लोक रचना प्रबल, तिहँ थानक जिनबिबँ विदित।
तहँ तहँ त्रिकाल वंदित 'भविक' भावसहित शिरनायनित।।९।।

सम्यग्दृष्टि की महिमा कवित्त

स्वरूप रिझवारेसे सुगुण मतवारेसे, सुधाके सुधारेसे सुप्राण दयावंत हैं। सुबुद्धिके अथाहसे सुरिद्धपातशाहसे, सुमनके सनाहसे महाबडे महंत हैं। सुध्यानके धरैयासे सुज्ञानके करैयासे, सुप्राण परखैयासे शकती अनंत हैं। सवै संघनायकसे सवै बोलला यकसे सवै सुखदायकसे सम्यकके संत हैं।।१०।।

(सवैया)

काहेको कूर तू क्रोध करै अति, तोहि रहैं दुख संकट घेरें।
काहेको मान महाशठ राखत, आवत काल छिनै छिननेरे।।
काहेको अंध तु बंधत मायासों, ये नरकादिकमें तुहै गेरें।
लोभ महादुख मूल है भैया, तु चेतन क्यों नहिं चेत सवेरे।।११।।

कवित्त

जेते जग पाप होंहि अध्रमके व्याप होंहि, तेते सब कारजको मूल लोभकूप है। जेते दुखपुंज होहिं कर्मनके कुंज होहिं, तेते सब बंधनको मूल नेह रूप है।। जेते बहु रोग होंहिं व्याधिके संयोग होंहिं, तेते सब मूलको अजीरन अनूप हैं। जेते जगमर्ण होंहिं काहूकी न शर्ण होंहिं, तेते सब रूपको शरीरनाम भूप है।।१२।।

ज्ञानमें है, ध्यानमें है, वचन प्रमाणमें है, अपने सुथानमें है ताहि पहचानुरे। उपजै न उपजत मूए न मरत जोई, उपजन मरन व्योहार ताहि मानुरे। रावसो न रंकसो है पानीसो न पंकसो है, अति ही अटंकसो है ताहि नीके जानुरे। आपनो प्रकाश करै अष्टकर्म नाश करै, ऐसी जाकी रीति 'भैया' ताहिउर आनुरे।।१३।।

सेर आध [1]नाजकाज अपनों करै अकाज, खोवत समाज सब राजनितें अधिके। इंद्र होतो चंद्र होतो नरनागइन्द्र होतो करत तपस्या जोपैं पैठि साधुमधिकें।। इन्द्रिनको दम होतो [2]'यम ओ नियम होतो,' जमको न गम होतो ज्ञान होतो अधिकें। लोकालोक भास होतो अष्टकर्म नाश होतो, मोखमें सुवास होतो चलतो जो सधिकें।।१४।।

सवैया

काहेको कूर तू भूरि सहै दुख, पंचनके परपंच [3]भखाये।
ये अपने अपने रसको नित पोखतु हैं, तोहि लोभ लगाये।।
तू कछु भेद न बूझतु रंचक, तोहि दगा करि देत बँधाये।।
है अबके यह दाव भलो [4]नर! जीत ले पंच जिनंद बताये।।१५।।
हे [5]नर अंध तू बंधत क्यों निज, सूझत नाहिं कै भंग खई है।
जे अघ संचतु है नित आपको, ते तोहि सौंज करैंगे गई है।।
ये नरकादिकमें तोहि डारिकें, देहैं सजा वहु ऐसी भई है।
मानत नाहिं कहूं समुझाय, सु तोकों दई मति ऐसी दई है।।१६।।

कवित्त

धूमनके धौरहर देख कहा गर्व करै, ये तो छिनमाहिं जांहि पौंन परसत ही। संध्याके समान रंग देखत ही होय भंग, दीपकपतंग जैसें काल गरसत ही।। सुपनेमें भूप जैसें इंद्रधनुरूप जैसें, ओसबूंद धूप जैसें दुरै दरसत ही। ऐसोई भरम सब कर्मजालवर्गणाको, तामे मूढ मग्न होय मरै तरसत ही।।१७।।

---

(१) अन्न। (२) 'दूर सब तम हो तो' ऐसा भी पाठ है। (३) बहकाये। (४) 'तोही' ऐसा भी पाठ है। (५) 'शठ' ऐसा भी पाठ है।

मात्रिक कवित्त

देख तू दृष्टि विचार अभ्यंतर, या जगमहिं कछु सांचो आह।
मात तात सुत बन्धव वनिता, इनसो प्रीति करै कित चाह।
तन यौवन कंचन औ मंदिर, राजरिद्ध प्रभुता पद काह।
ये उपजै विनशै अपनी थिति, तूं कित नाथ होंहि शठ! ताह।।१८।।

कवित्त

संसारी जीवनके करमनको बंध होय, मोहको निमित्त पाय रागद्वेषरंगसों। वीतराग देवपैं न रागद्वेष मोह कहूं, ताहीतैं अबंध कहे कर्मके प्रसंगसों।। पुग्गलकी क्रिया रही पुग्गलके खेतबीचि, आपहीतें चलै धुनि अपनी उमंगसों। जैसें मेघ परै विनु आपनिज काज करै, गर्जि वर्षि झूम आवे शकति सु छंगसों।।१९।।

मात्रिक कवित्त

आतमसूवा भरममहिं भूल्यो, कर्म नलिनपैं बैठो आय।
विषयस्वादविरम्यों इह थानक, लटक्यो तरैं ऊर्द्धवभये पाँय।।
पकरै मोहमगन चुंगलसों, कहै कर्मसों नाहिं वसाय।
देखहु किन? सुविचार भविकजन, जगत जीव यह धरै स्वभाय।।२०।।

तोलों प्रगट पूज्यपद थिर है, तोलों सुजस लहै परकास।
तोलौं उज्जल गुणमणि स्वच्छित, तोलों तपनिर्मलता पास।।
तोलों धर्मवचनमुख शोभत, मुनिपद ऐसे गुनहिं निवास।
जोलों रागसहित नहिं देखत, भामनिको मुखचंदविलास।।२१।।

कवित्त

जोपैं चारों वेद पढे रचिपचि रीझ रीझ, पंडितकी कलामें प्रवीन तू कहायो है। धरम व्योहार ग्रन्थ ताहूके अनेक भेद, ताके पढे निपुण

प्रसिद्ध तोहि गायो है।। आतमके तत्त्वको निमित्त कहूं रंच पायो, तोलों तोहि ग्रन्थनिमें ऐसेके बतायो है। जैसें रसव्यञ्जनिमें करछी फिरै सदीव, मूढतासुभावसों न स्वाद कछु पायो है।।२२।।

सवैया

चेतन ऐसेमें चेतत क्यों नहि, आय बनी सबही विधि नीकी।
है नरदेह यो आरज खेत, जिनंदकी वानी सु बूंद अमीकी।।
तामे जु आप गहो थिरता तुम, तौ प्रगटै महिमा सब जीकी।
जामें निवास महासुखवास सु, आय मिलै पतियां शिवतीकी।।२३।।

कवित्त

ग्रीषममें धूप परै तामें भूमि भारी जरै, फूलत है आक पुनि अतिही उमहिकैं। वर्षाऋतुमेघ झरै तामें वृक्ष केई फरै, जरत जवासा अघ आपुहीतैं डहिकैं।। ऋतुको न दोष कोऊ पुण्यपाप फलै दोऊ, जैसें जैसें किये पूर्व तैसें रहै सहिकैं। केई जीव सुखी होंहि केई जीव दुखी होंहिं, देखहु तमासो 'भैया' न्यारे नैकु रहिकैं।।२४।।

दोहा

पुण्य ऊर्ध्व गतिको करै, निश्चै भेद न कोय।
तातें पुण्यपचीसिका, पढै धर्म फल होय।।२५।।

सत्रहसे तेतीसके, उत्तम फागुन मास।
आदिपक्ष नमि भावसों, कहै भगोतीदास।।२५।।

इति पुण्यपचीसिका समाप्ता।।१।।

अथ शतअष्टोत्तरी कवित्तबन्ध लिख्यते।

दोहा

ओंकार गुण अति अगम, पँचपरमेष्टि निवास।
प्रथम तासु वंदन किये, [१]लहिये ब्रह्मविलास।।१।।

छप्पय

द्रव्य एक आकाश, जासुमहिं पंच विराजत।
द्रव्य एक चिद्रूप, सहज चेतनता राजत।।
द्रव्य एक पुनि धर्म, चलन सबको सहकारी।
द्रव्य सुएक अधर्म, रहनथिरता अधिकारी।।
द्रव्य एक पुद्गल प्रगट, अरु अंतक[२] पट मानिये।
निज निज सुभावमें सव मगन, यह सुवोध उर आनिये।।२।।

जीव ज्ञानगुण धरै, धरै मूरतिगुण पुद्गल।
जीव स्वपर करि भेद, भेद नहि लहै कर्ममल।।
जीव सदा शिवरूप, रूपमें दर्वसु ओरें।
जीव रमै निजधर्म, धर्मपर लहै न ठौरें।
जीव दर्व चेतन सहित, तिहू काल जगमें लसै।
तसु ध्यान करतही भव्य जन, पंचमिगति पलमें वसै।।३।।

रसनाके रस मीन, प्राण पलमाहिं गमावै।
अलि नासा परसंग, रैन बहु संकट पावै।।
मृग करि श्रवण सनेह, देह दुरजनको दीनी।
दीपक देख पतंग, दृष्टि हित कैसी कीनी।।

---

१. होवत–ऐसा भी पाठ है। २. काल।

फरसइंद्रिवस करि पर्‌यो, कौन कौन संकट सहै।
एक एक विषबेलिसम, पंचन सेय तु सुख चहै।।४।।

चेतु चेतु चित्त चेतु, विचक्षण बेर यह।
हेतु हेतु तुव हेतु, कहित हों रूप गह।।
मानि मानि पुनि मानि, जनम यहु बहुर न पावै।
ज्ञान ज्ञान गुण जान, मूढ क्यों जन्म गमावै।।
बहु पुण्य अरे नरभौ मिल्यो, सो तू खोवत वावरे।
अज हू संभारि कछु गयो नहि 'भैया' कहत यह दावरे।।५।।

कवित्त

जैसो वीतराग देव कह्यो है स्वरूपसिद्ध, तैसो ही स्वरूप मेरो यामें फेर नाहीं है। अष्टकर्म भावकी उपाधि मोमें कहू नाहिं, अष्ट गुण मेरे सो तौ सदा मोहि पांहीं है।। ज्ञायक स्वभाव मेरो तिहू काल मेरे पास, गुण जे अनन्त तेऊ सदा मोहिमाहीं है। ऐसो है स्वरूप मेरो तिहू काल सुद्धरूप, ज्ञानदृष्टि देखतैं न दूजी परछांही है।।६।।

विकट भौसिंधु ताहि तरिवेको तारू कौन, ताकी तुम तीर आये देखो दृष्टि धरिकै। अवके संभारेतैं पार भले पहुँचत हौं, अवके संभारे विन वूडत हो तरिकैं।। बहुर्‌यो फिर मिलवो नाहिं ऐसो है संयोग, देव गुरु ग्रंथ करि आये हिय धरि कैं। ताहि तू विचारि निज आतमनिहारि 'भैया' धारि परमातमाहिं शुद्ध ध्यान करिकैं।।७।।

जोपैं तोहि तरिवेकी इच्छा कछू भई भैया, तो तौ वीतरागजूके वच उर धारिये। भौसमुद्रजल में अनादिही तैं वूडत हो, जिननाम नौका मिली चित्ततैं न टारिये।। खेवट विचारि शुद्ध थिरतासों ध्यान काज, सुखके समूहको सुदृष्टिसों निहारिये। चलिये जो इह पंथ मिलिये श्यौ मारगमें, जन्मजरामरनके भयको निवारिये।।८।।

ज्ञानप्रान तेरे ताहि नेरे तौ न जानत हो, आनप्रान मानि आनरूप मानि रहे हो। आतमके वंशको न अंश कहूं खुल्यो कीजै, पुग्गलके वंशसेती लागि लहलहे हो।। पुग्गल के हारे हार पुग्गल के जीते जीत, पुग्गलकी प्रीतसंग कैसें बहबहे हो। लागत हो धायधाय लागै न उपाय कछू, सुनो चिदानंदराय! कौन पंथ गये हो?।।९।।

छंद द्रुमिला

इक बात कहूं शिवनायकजी, तुम लायक ठौर कहां अटके?।
यह कौन विचक्षन रीति गही, विनुदेखहि अक्षनसों भटके।।
अजहूं गुणमानो तो शीख कहूं, तुम खोलत क्यों न पटै घटके?
चिनमूरति आपु विराजतु है, तिन सूरत देखे सुधा गटके।।१०।।

सवैया

शुद्धि[1]तें मीन पियें पय बालक, रासभ अंगविभू[2]ति लगाये।
राम कहे शुक ध्यान गहे वक, भेड़ तिरै पुनि मूंड़ मुड़ाये।।
वस्त्र विना पशु व्योम चलै खग, व्याल तिरें नित पौनके खाये।
एतो सबै जड़ रीत विचक्षन! मोक्ष नहीं विनतत्वके पाये।।११।।

कर्म स्वभावसों [3]तांतोसो तोरिकें, आतम लक्षन जानि लये हैं।
ध्यान करै निहचै पदको जिहँ, थानक और न कोऊ ठये हैं।।
ज्ञान अनंत तहां प्रतिभासत, आपु ही आपु स्वरूप छये हैं।
और उपाधि पखारिकें चेतन, शुद्ध भये तेउ सिद्ध भये हैं।।१२।।

देखत रूप अनूप अनूपम, सुंदरता छवि रीझिकैं मोहै।
देखत इन्द्र नरेन्द्र महामुनि, लच्छिविभूषण कोटिक सोहै।।
देखत देव कुदेव सबै जग, राग विरोध धरै उर दो है।

---

१. जलशुद्धि, २. राख, (३) 'नातोसो तोरिके' ऐसा भी पाठ है।

ताहि विचारि विचक्षन रे मन! द्वैपल देखु तो देखत को है।।१३।।

कवित्त

सुनो राय चिदानंद कहोजु सुबुद्धि रानी, कहैं कहा बेर बेर नैकु तोहि लाज है। कैसी लाज कहो कहां हम कछू जानत न, हमें इहां इंद्रनिको विषै सुख राज है।। अरे मूढ विषै सुख सेयें तू अनन्ती वेर, अज हू अघायो नाहिं कामी शिरताज है। मानुष जनम पाय आरज सुखेत आय, जो न चेतैं हंसराय तेरो ही अकाज है।।१४।।

सुनो मेरे हंस एक बात हम सांची कहैं, कहो क्यों न नीके कोउ मुखहू गहतु है। तुम जो कहत देह मेरी अरु नीकै राखों, कहो कैसें देह तेरी राखी ये रहतु है?।। जाति नाहिं पांति नाहि रूपरंग भांति नाहिं, ऐसें झूठ मूठ कोउ झूंटोहू कहतु है। चेतन प्रवीनताई देखी हम यह तेरी, जानिहो जु तब ही ये दुख को सहतु है।।१५।।

सुनो जो सयाने नाहु देखो नेकु टोटा लाहु, कौन विवसाहु, जाहि ऐसें लीजियतु है। दश द्यों[१]स विषैसुख ताको कहो केतो दुख, परिकें नरकमुख कोलों सीजियतु है।। केतो काल बीत गयो अजहू न छोर लयो, कहूं तोहि कहा भयो ऐसे रीझयतु है। आपु ही विचार देखो कहिवेको कौन लेखो, आवत परेखो तातें कह्यो कीजियतु है।।१६।।

मानत न मेरो कह्यो मान बहुतेरो कह्यो, मानत न तेंरो गयो कहो कहा कहिये?। कौन रीझि रीझि रह्यो कौन बूझ बूझ रह्यो, ऐसी बातैं तुमे यासों कहा कही चहिये?। एरी मेरी रानी तोसों कौन है सयानी सखी, एतौ बापुरी[२] विरानी तू न रोस गहिये। इनसो न नेह मोहि

---

१. दिन, २. विचारी।

तोहीसों सनेह वन्यों, रामकी दुहाई कहू तेरे गेह रहिये।।१७।।

जीवन कितेक तापै सामा तू इतेकु करै, लक्ष कोटि जोर जोर नैकु न अघातु है। चाहतु धराको धन आन सव भरों गेह, यों न जानैं जनम सिरानो मोहि जात है।। कालसम क्रूर जहां निशदिन घेरो करै, ताके बीच शशा जीव कोलों ठहरातु है। देखतु है नैननिसों जगसब चल्यो जात, तऊमूढचेतै नाहिं लोभै ललचातु है।।१८।।

कहां हैं वे वीतराग जीते जिन रागद्वेष, कहां है वे चक्रवर्ति छहों खंड के धनी। कहां हैं वे वासुदेव युद्धके करैया वीर, कहां हैं वे कामदेव कामकीसी जे अनी।। कहां है वे राजा राम रावनसे जीते जिनि, कहां हैं वे शालिभद्र लच्छि जाके थी घनी। ऐसे तो कईक कोटि ह्वै गये अनंतीबेर, डेढ दिन तेरी वारी काहेको करै मनी।।१९।।

सुनिरे सयाने नर कहा करै घरघर, तेरो जु शरीरघर घरीज्यों तरतु है। छिन छिन छीजे आय जल जैसें घरी जाय, ताहूको इलाज कछु उरहू धरतु है।। आदि जे सहे हैं ते तौ यादि कछु नाहि तोहि, आगें कहो कहा गति काहे उछरतु है। घरी एक देखो ख्याल घरीकी कहां है चाल, घरी घरी घरियाल शोर यों करतु है।।२०।।

पाय नर देह कहो कीनों कहा काम तुम, रामा रामा धनधन करत विहातु है। कैक दिन कैक छिन रहि है शरीर यह, याके संग ऐसें काज करतु सुहातु है।। जानत है यह घर मरवेको नाहिं डर, देख भ्रम भूलि मूढ फूलि मुसकात है। चेतरे अचेत पुनि चेतवेको नाहि ठौर, आज कालि पींजरेसों पंछी उड जातु है।।२१।।

कर्मको करैया सो तो जानै नाहिं कैसे कर्म, भरममें अनादिहीको करमैं करतु है। कर्मको जनैया (भैया) सोतो कर्म करै नाहिं, धर्म

माहि तिहूंकाल धरमें धरतु है।। दुहूंनकी जाति पांति लच्छन स्व भाव भिन्न, कबहू न एकमेक होइ विचरतु है। जा दिनातें ऐसी दृष्टि अन्तर दिखाई दई, तादिनातें आपु लखि आपुही तरतु है।।२२।।

सवैया

जीव अकर्ता कह्यो परको, परको करता पर ही परवान्यो।
ज्ञान निधान सदा यह चेतन, ज्ञान करै न करै कछु आन्यो।।
ज्यों जग दूध दही घृत तक्रकी, शक्ति धरै तिहुं काल बखान्यो।
कोऊ प्रवीन लखै दृगसेती सु, भिन्न रहैवपु[१]सों लपटान्यो।।२३।।

मात्रिक कवित्त

चेतन चिह्न ज्ञान गुण राजत, पुद्गलके वरणादिक रूप।
चेतन आपरु आन विलोकत, पुग्गल छाँह धरै अरु धूप।।
चेतनकै थिरता गुण राजत, पुग्गलकै जड़ता जु अनूप।
चेतन शुद्ध सिधालय राजत, ध्यावत है शिवगामी भूप।।२४।।

कवित्त

जीवहू अनादिको है कर्महू अनादिको है, भेदहू अनादिको है सर्व दोऊदलमें। रीझवेको है स्वभाव रीझनाहीं है स्वभाव, रीझवेको भावसो स्वभाव है अमलमें।। साँचेही सो करै प्रीति सांचेसों न करी प्रीति, सांची विधि रीतिसो बहाय दई पल में। ज्ञान गुन काम कीने काम के न काम कीने, ध्यानमें मुकाम कीने वसे आप थलमें।।२५।।

दासीनके संग खेल खेलत अनादि बीते, अजहू लों वहै बुद्धि कौन चतुरई है। कैसी है कुरूपकारी निशि जैसें अँधियारी, औगुन गहनहारी कहा जान लई है।। इनहीकी संगतसों संकट अनेक सहे,

---

१. 'न रहै' ऐसा भी पाठ है।

जानि वूझ भूल जाहु ऐसी सुधि गई है। आवत परेखो हंस! मोहि इन वातनको, चेतनाके नाथको अचेतना क्यों भई है।।२६।।

कहाँ कहाँ कौनसंग लागेही फिरत लाल! आवो क्यों न आज तुम ज्ञानके महलमें। नैकहू विलोकि देखो अन्तरसुदृष्टिसेती, कैसी कैसी नीकी नारि ठाड़ी हैं टहलमें।। एकनतें एक वनी सुंदर सुरूप घनी, उपमा न जाय गनी वामकी चहलमें। ऐसी विधिपाय कहूं भूलि और काज कीजे, एतो कह्यो मानलीजे वीनती सहलमें।।२७।।

सवैया

लाई होंलालन बाल अमोलक, देखहु तो तुम कैसी बनी हैं?
ऐसी कहूं तिहूं लोकमें सुन्दर, और न नारि अनेक घनी हैं।।
याहीतैं तोहि कहूं नित चेतन! याहूकी प्रीति जु तोसों सनी है।
तेरी औ राधेकी रीझि अनंत, सु मोपें कहूं यह जात गनी है।।२८।।

कायासी जु नगरीमें चिदानंद राज करै, मायासी जु रानी पैं मगन बहु भयो है। मोहसो है फोजदार क्रोधसो है कोतवार, लोभसो वजीर जहां लूटिवेको रह्यो है।। उदैको जु काजी मानै मानको अदल जानै, कामसेवा कानवीस आइ वाको कह्यो है। ऐसी राजधानीमें अपने गुण भूल गयो, सुधि जब आई तबै ज्ञान आय गह्यो है।।२९।।

कवित्त

कौन तुम कहां आये कौनें वौराये तुमहिं, काके रस रसे कछु सुधहू धरतु हो?। कौन हैं ये कर्म जिन्हे एकमेक मानिरहे, अजहूं न लागे हाथ भाँवरि भरतु हो वे दिन चितारो जहां वीते हैं अनादिकाल, कैसे कैसे संकट सहेहु विसरतु हो। तुम तो सयाने पैं सयान यह कौन कीन्हो, तीनलोकनाथ ह्वैके दीनसे फिरतु हो।।३०।।

देख कहा भूलि पस्चो देख कहा भूलि पस्चो, देख भूलि कहा कस्चो हस्चो सुख सब ही। ज्ञान है अनंत ताहि अक्षर अनन्त भाग, बल है अनंत ताहि देखो क्यों न अव ही।। कामवशपरे तातें नरकमें वशपरे, ऐसे दुख परे सो कहे न जांहिं कब ही। बात जो निगोदकी है तेहू तैंन गोदकी है, ऐसे अनुमोदकी है जानिहू जो तब ही।।३१।।

सवैया

वे दिन क्यो न चितारत चेतन, मातकी कूखमें आय बसे हो।
ऊरध पांव नगे निशिवासर, रंच उसा[१]सनिको तरसे हो।।
आवसंयोग वचे कहुं जीवत, लोगनिकी तव दृष्टि लसे हो।
आजु भये तुम यौवनके रस, भूल गये किततैं निकसे हो।।३२।।

कवित्त

सहे हैं नरकदुख फेर भयो तेही रुख, वेरवेर कहै मुख मैं ही सुख लहा है। जोबनकी जेब भरे जुवति लगावे गरे, करै काम खोटे खरे काम आगि दहा है।। दिन दश बीति जाय हाथपीट पछताय, यौवन न ठहराय कीजे अब कहा है। जरा आइ लागी कान भूलिगये अवसान, देखे जमके निसान पस्चो शोच महा है।।३३।।

जाही दिन जाही छिन अंतर सुबुद्धि लसी, ताही पल ताही समैं जोतिसी जगति है। होत है उद्योत तहां तिमिर विलाइजातु, आपापर भेद लखि ऊरधव गति है।। निर्मल अतीन्द्री ज्ञान देखि राय चिदानंद, सुखको निधान याकै माया न जगति है। जैसो शिवखेत तैसो देहमें विराजमान, ऐसो लखि सुमति स्वभावमें पगति है।।३४।।

---

१. 'कुसातनको'–ऐसा भी पाठ है।

मत्रिक कवित्त

जबते अपनो जी आपु लख्यो, तवतैं जु मिटी दुविधा मनकी।
यों शीतल चित्त भयो तबही सब, छांडदई ममता तनकी।।
चिंतामणि जब प्रगट्यो घरमें, तब कौन जु चाहि करै धनकी।
जो सिद्धमें आपुमें फेर न जानै सो, क्यों परवाह करै जनकी।।३५।।

सवैया

केवल रूप महा अति सुंदर, आपु चिदानंद शुद्ध विराजै।
अंतरदृष्टि खुलै जब ही तब, आपुहीमें अपनो पद छाजै।।
सेवक साहिब कोऊ नही जग, काहेको खेद करै किहँ काजै।
अन्य सहाय न कोऊ तिहारै जु[१], अंत चल्यो अपनो पद साजै।।३६।।

दोहा

जा छिन अपने सहज ही, चेतन करत किलोल।
ता छिन आन न भास ही, आपुहि आपु अडोल।।३७।।

कवित्त

पियो है अनादिको महा अज्ञान मोहमद, ताहीतैं न शुधि याहि और पंथ लियो है। ज्ञानविना व्याकुल ह्वै जहां तहां गिस्यो परै, नीच ऊंच ठौरको विचार नाहिं कियो है।। वकिबो विराने वश तनहूकी सुधि नाहिं, वूडै सब कूपमाहिं सुन्नसान हियो है। ऐसे मोहमदमें अज्ञानी जीव भूलि रह्यो ज्ञानदृष्टि देखो 'भैया' कहा ताको जियो है।।३८।।

देखत हो कहां कहां केलि करै चिदानंद, आतम स्वभाव भूलि और रस राच्यौ है। इन्द्रिनके सुखमें मगन रहै आठों जाम इन्द्रिनके

१. 'सहाय नही नर कोउ तिहारै' ऐसा पाठ भी है।

दुख देख जाने दुख सांच्यो है।। कहूं क्रौध कहूं मान कहूं माया कहूं लोभ; अहंभाव मानिमानि ठौरठौर माच्यौ है।। देव तिरजंच नरनारकी गतिन फिरै, कौन कौन स्वांग धरैं यह ब्रह्म नाच्यो है।।३९।।

करखाछंद गुर्जरभाषाया:

उहिल्या जीवड़ा हूं तनै शूं कहूं, वळी वळी आज तुं विषयविष सेवै। विषयना फल अछै विषय थकी पांडुवा ज्ञाननी दृष्टि तूं कां न बेवै।। हजी शुं सीख लागी नथी कां तनै नरकना दु:ख कहिवेको न रेवै। आव्यो एकलो जायपण एक तू, एटलामाटे कां एटलूं खेवै।।

कवित्त

कोउ तो करै किलोल भामिनीसों रीझिरीझि, वाहीसों सनेह करै कामराग अंगमें। कोउतो लहै अनंद लक्ष कोटि जोरि जोरि, लक्ष लक्ष मानकरै लच्छिकी तरंगमें। कोउ महाशूरवीर कोटिक गुमान करै, मो समान दूसरो न देखो कोऊ जंगमें। कहैं कहा 'भैया' कछु कहिवेकी बात नाहिं, सब जग देखियतु रागरस रंगमें।।४१।।

जोलों तुम और रूप ह्वै रहे हो चिदानंद, तोलो कहूं सुख नाहिं रावरे विचारिये। इन्द्रिनिके सुखको जो मान रहे सांचो सुख, सो तो सब दु:ख ज्ञान दृष्टिसों निहारिये।। एतो विनाशीकरूप छिनमें औरै स्वरूप, तुम अविनाशी भूप कैसें एकु धारिये। ऐसो नरजन्म पाय नैकु तो विवेक कीजै, आप रूप गहि लीजे कर्मरोग टारियै।।४२।।

अरे मूढ चेतन! अचेतन तू काहे होत, जेई छिन जांहिं फिर तेई तोहि आयवी?। ऐसो नरजन्म पाय श्रावकके कुल आय, रह्यो है विषै लुभाय ओंधीमति छाइवी।। आगें हू अनादिकाल बीते विपरीत हाल, अजहूं सम्हारि लाल! बेर भली पाइवी। पीछें पछतायें कछु

आइ है न हाथ तेरे, तातें अब चेत लेहु भली परजायवी।।४३।।

जीवैं जग जिते जन तिन्हैं सदा रैनदिन, सोचतही छिन छिन काल छीजियतु है। धन होय धान होय, पुत्र परिवार होय, बडो विसतार होय जस लीजियतु है।। देहहू निरोग होय सुखको संयोग होइ मनबांछे भोग होय जौंलौं जी जियितु है। चहै वांछा पूरी होइ पैन वांछे पूरी होय, आयु थिति पूरी होय तोलों कीजियतु है।।४४।।

मात्रिक कवित्त

जबलों रागद्वेष नहिं जीतय तबलों मुकति न पावै कोइ।
जबलों क्रोध मान मनधारत, तबलों, सुगति कहांतें होइ।।
जबलों माया लोभ बसे उर, तबलों, सुख सुपनै नहिं जोइ।
एअरि जीत भयो जो निर्मल, शिवसंपति विलसत है सोई।।४५।।

कवित्त

सात धातु मिलन है महादुर्गन्ध भरी, तासों तुम प्रीति करी लहत अनंद हौ। नरक निगोदके सहाई जे करन पंच, तिनहीकी सीख संचि चलत सुछंद हौ।। आठों जाम गहै काम रागरसरंगराचि, करत किलोल मानों माते ज्यों गयंद हौ। कछू तो विचार करो कहां कहां भूले फिरो, भलेजू भलेजू 'भैया' भले चिदानंद हौ।।४६।।

सवैया

ए मन मूढ! कहा तुम भूले हो, हंसविसार लगे परछाया।
यामें स्वरूप नहीं कछु तेरो जु, व्याधिकी पोट बनाई है काया।।
सम्यक रूप सदा गुण तेरोसु, और बनी सबही भ्रम माया।
देखत रूप अनूप विराजत सिद्धसमान जिनंद बताया।।४७।।

चेतन जीव! निहारहु अंतर, ए सब हैं परकी जड काया।
इन्द्र[१]कमान ज्यों मेघघटामहिं, शोभत है पैं रहै नहिं छाया।।
रैन समै सुपनो जिम देखै तु प्रात बहै सब झूंट बताया।
त्यों नदिनाव सँयोगमिल्यो तुम, चेतहु चित्तमें चेतन राया।।४८।।

देहके नेह लग्यो कहा चेतन, न्यारी ये क्यों अपनी करमानी।
याहीसों रीझि अज्ञानमें मानिकैं, याहीमें आपु न ह्वैरह्यो थानी।।
देखतु है परतच्छ विनाशी तऊ, नहिं चेतत अंध अज्ञानी।
होतु सुखी अपनो बल फोरिकैं, मान कह्यो सर्वज्ञकी बानी।।४९।।

समस्यापूर्ति – 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे' सवैया।

केवलरूप विराजत चेतन, ताहि विलोकि अरे मतवारे।
काल अनादि वितीत भयो, अजहू तोहि चेतन होत कहा रे?।।
भूलिगयो गतिको फिरबो अब तो दिन च्यारि भये ठकुरारे।
लागि कहा रह्यो अक्ष[२]निके संग, 'चेतन क्यों नहिं चेतनहारे'।।५०।।

बालक है तब बालकसी बुधि, जोबन काम हुतासन जारे।
वृद्ध भयो तब अंग रहे थकि, आये हैं सेत गये सब कारे।।
पाँय पसारि पर्‍यो धरतीमहिं, रोवै रटै दुख होत महारे।
बीती यों बात गयो सब भूलि तू, चेतन क्यों नहिं चेतनहारे।।५१।।

बालपनैं नित बालनके सँग, खेल्यो है ताकी अनेक कथारे।
जोबन आप रस्यो रमनीरस, सोउ तो वात विदीत यथारे।।
वृद्ध भयो तन कंपत डोलत, लार परै मुख होत विथारे।
देखि शरीरके लच्छन भैया तु, 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे'।।५२।।

---

१. इन्द्रधनुष, २. इन्द्रियों के।

तू ही जु आय वस्यो जननी उर, तूही रम्यो नित बालकतारे।
जोबनताजु भई पुनि तोहिको, ताहीके जोर अनेक तैं मारे।।
वृद्ध भयो तुंही अंग रहै सब, बोलत वैन कहै तुतरारे।
देखि शरीरके लक्षण भैया तु, 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे'।।५३।।

औरसों जाइ लग्यो हितमानिके, वाहीके संग सुज्ञान विडारे।
काल अनादि वस्यो जिनके ढिग, जान्यो न लक्षण ये अरि सारे।।
भूलि गयो निजरूप अनूपम, मोह महा मद के मतवारे।
तेरो हू दाव वन्यो अबके तुम, 'चेतत क्यों नहिं चेतनहारे'।।५४।।

कवित्त

पंचनसों भिन्न रहै कंचन ज्यों काई तजै, रंच न मलीन होय जाकी गति न्यारी है। कंजनके कुल ज्यों स्वभाव कीच छुवै नाहि, बसै जलमाहि पै न उर्द्धता विसारी है।। अंजनके अंश जाके वंशमै न कहूं दीखै, शुद्धता स्वभाव सिद्धरूप सुखकारी है। ज्ञान को समूह ज्ञान ध्यान में विराजि रह्यो, ज्ञानदृष्टि देखो 'भैया' ऐसो ब्रह्मचारी है।।५५।।

चिदानंद भैया विराजत है घटमाहिं, ताके रूप लखिवेको उपाय कछू करिये। अष्ट कर्म जालकी प्रकृति एक चार आठ, तामें कछू तेरी नाहि आपनी न धरिये।। पूरवके बंध तेरे तेई आइ उदै होंहि, निजगुणशकतिसों तिन्है त्याग तरिये। सिद्धसम चेतन स्वभाव में विराजत है, वाको ध्यान धरु और काहुसों न डरिये।।५६।।

एक शीख मेरी मान आप ही तू पहिचान, ज्ञान द्रगचर्ण आन वास वाके थरको। अनंत बलधारी है जु हलको न भारी है, महाब्रह्मचारी है जुसाथी नाहिं जरको।। आप महा तेजवंत गुणको न

ओर अंत, जाकी महिमा अनंत दूजो नाहि वरको। चेतनाके रस भरे चेतन प्रदेश धरे, चेतनाके चिह्न करे सिद्ध पटतरको।।५७।।

कर्मको करैया यह भरमको भरैया यह, धर्मको धरैया यहै शिवपुर राव है। सुख समझैया यह दुख भुगतैया यहै, भूलको भुलैया यहै चेतना स्वभाव है।। चिरको फिरैया यहै भिन्नको रहैया यहै, सबको लखैया यहै याको भलो चाव है। राग द्वेषको हरैया महामोखको करैया, यहै शुद्ध 'भैया' एक आतम स्वभाव है।।५८।।

उर्दू भाषा में कवित्त

मान यार! मेरा कहा दिलकी चशम खोल, साहिब नजदीक है तिसको पहचानिये। नाहक फिरहु नाहिं गाफिल जहान बीचि शुकन गोश जिनका भलीभांति जानिये।। पावक ज्यों वसता है अरनी[1] पखानमाहिं, तीसरोस चिदानंद इसहीमें मानिये। पंजसे गनीम तेरी उमरसाथ लगे हैं खिलाफ तिसें जानि तूं आप सच्चा आनिये।।५९।।

अबैं भरमके त्योरसों देख क्या भूलता, देखि तु आपमें जिन आपने बताया है। अंतरकी दृष्टि खोलि चिदानंद पाइयेगा, बाहिरकी दृष्टिसों पौद्गलीक छाया है।। गनीमनके भाव सब जुदे करि देखि तू, आगें जिन ढूंढा तिन इसीभांति पायां है। वे ऐब साहिब विराजता है दिलबीच, सच्चा जिसका दिल है तिसीके दिल आया है।।६०।।

नाहक विराने तांई अपना कर मानता है, जानता तू है कि नाहीं अंत मुझे मरना है। केतेक जीवनेपर ऐसे फैल करता है, सुपने से सुख में तेरा पूरा परना है।। पंजसे गनीम तेरी उमरके साथ लगे, तिनोंको फरक किये काम तेरा सरना है। पाक बेऐबसाहिब दिलबीच बसता है, तिसको पहिचान वे तुझे जो तरना है।।६१।।

---

१. लकड़ी

वे दिन क्यों फरामोश करता है चिदानंद, दोजकके बीच तूं पुकार पड़ा करता था। उछालके अकाश तुझै लेते थे त्रिशूलसो आतिससा आब तू तौ पीवतैं ही जरता था।। तत्ता लोहा करिकें देह तेरी तोरते थे, फिरस्तोंके आगे तू साइत भी न ठरता था। जिंदगानी सागरों की उमर तेरी हुई थी, जिसके बीच वे तू ऐसे दुःख भरता था।।६२।।

कवित्त, इकतुकिया

चैतहुरे चिदानंद इहां बने दोऊ फंद, कामिनी कनक छंद अैन-मैनकासी है। जिहिंको तू देख भूल्यो, विषयसुख मान फूल्यो, मोहकी दशामें झूल्यो, अैनमैनकासी है।। पाये तैं अनेक वेर देंखै कहा फेरि फेरि, कालकरतव हेरि अैन मैनिकासी है। इनको तू छाँडदेहु 'भैया' कह्यो मान लेहु, सिद्ध सदा तेरो गेह अैनमैनाकसी है।।६३।।

कोटिकोटि कष्ट सहे, कष्टमें शरीर दहे, धूमपान कियो पै न पायो भेद तनको। वृक्षनके मूल रहे जटानमें झूलि रहे, मान मध्य भूलि रहे किये कष्ट तनको।। तीरथ अनेक न्हये, तिरत न कहूं भये, कीरतिके काज दियो दानहू रतनको। ज्ञानविना बेर बेर क्रिया करी फेर फेर, कियो कोऊ कारज न आतम जतनको।।६४।।

धरम न जानतु है मूढ मिथ्या मानतु है, शास्त्रशुद्ध छोरि और पढ़्यो चाहे पारसी। मिथ्यामती देव जहां शीस नावे जाय तहां, एते पर कहै हमें येही पूरो पारसी।। निशदिन विषै मानै सुकृतको नहिं जानै, ऐसी करतूत करै पहुंच्यो चाहे पारसी।। नरकमाहिं परैगो सुतीसतीन भरैगो, करेगो पुकार एको न विपति पारसी।।६५।।

सवैया

देव अदेवमें फेर न मान, कहै सब एक गँवार कहू को।
साधु कुसाधु समान गनै चित, रंच न जानत भेद कहूंको।।
धर्म कुधर्मको एक विचारत, ज्ञान बिना नर बासी चहूंको।
ताहि विलोकि कहा करिये मन! भूलो फिरै शठ कालतिहूंको।।६६।।

दोहा

नैननितैं देखै सकल, नै ना देखै नाहि।
ताहि देखु को देख तो, नैन झरोखे मांहि।।६७।।

कवित्त

देखै ताहि देख जोपै देखिवेकी चाह धरै, देखे विन आप तोहि पाप बडो लागै है। मोह निंद शैनमें अनादिकाल सोय रह्यो, देखि तू विचार ताहि सोवै है कि जागै है।। रागद्वेषसंगसों मिथ्यातरंग राचि रह्यो, अष्ट कर्म जाल की प्रतीति मानि पागै है। विपैकी कलोल हंस! देखि देखि भूलि गयो, रूपरस गंध ताहि कैसैं अनुरागै है।।६८।।

देव एक देहरेमें सुंदर सुरूप वन्यो, ज्ञानको विलास जाको सिद्ध सम देखिये। सिद्धकीसी रीति लिये काहू सो न प्रीति किये, पूरबके बंध तेई आइ उदै पेखिये।। वर्ण गन्ध रस फास जामे कछु नाहि भैया, सदाको अबन्ध याहि ऐसो करे लेखिये। अजरा अमर ऐसो चिदानंद जीव नाव, अहो मन मूढताहि मर्ण क्यों विशेखिये।।६९।।

काके दोऊ राग द्वेष? जाके ये करम आठ, काके ये करम आठ? जाके रागद्वेख हैं। ताको नाव क्यों न लेहु? भले जानो तुम लेहु, लिखिहु बतावो लिखिवेको कहा लेख है?।। ताको कछू लच्छन है? देखि तूं विचक्षन है, कछू उन्मान कहो? मान कह्यो

भेख है। ए न कहो सुधि सुधि तौ परैगी आगैं आगैं, जोपैं कहू इनसों मिलाप कौ विशेख है।।७०।।

कुंडलिया

भैया, भरम न भूलिये पुद्गलके परसंग।
अपनो काज सवांरिये, आय ज्ञानके अंग।।
आय ज्ञानके अंग, आप दर्शन गहि लीजे।
कीजे थिरताभाव, शुद्ध अनुभौरस पीजे।।
दीजे [१]चउविधि दान, अहो शिव खेत वसैया।
तुम त्रिभुवनके राय, भरम जिन भूलहु भैया।।७१।।

हंसा हँस हँस आप तुझ, पूर्व संवारे फंद।
तिहिं कुदावमें बंधि रहे, कैसें होहु सुछंद।।
कैसें होहु सुछंद, चंद जिम राहु गरासै।
तिमर होय बल जोर, किरणकी प्रभुता नासै।।
स्वपरभेद भासै न देह जड़ लखि तजि संसा।
तुम गुण पूरन परम सहज अवलोकहु हंसा।।७२।।

भैया पुत्रकलत्र पुनि, मात तात परिवार।
ए सब स्वारथके सगे, तू मनमांहि विचार।।
तू मनमाहि विचार, धार निजरूप निरंजन।
पर परणति सो भिन्न, सहज चेतनता रंजन।।
कर्म भर्म मिलि रच्यो, देह जड़ मूर्ति धरैया।
तासों कहत कुटंब मोह मद माते भैया।।७३।।

---

१. दशविधि – ऐसा भी पाठ है।

सूवा सयानप सब गई, सेयो सेमर वृच्छ।
आये धोखे आमके, यापैं पूरण इच्छ।।
यापैं पूरण इच्छ वृच्छको भेद न जान्यो।
रहे विषय लपटाय, मुग्ध मति भरम भुलान्यो।।
फलमहिं निकसे तूल स्वाद पुन कछू न हूवा।
यहै जगतकी रीति देखि, सेमर सम सूवा।।७४।।

मात्रिक–कवित्त

आठनकी करतूत विचारहु, कौन कौन यह करते ख्याल।
कबहूं शिरपर छत्र धरावहिं, कबहू रूप करैं बेहाल।।
देवलोक कबहूं सुख भुगतहिं, कबहू नेकु नाजको काल।
ये करतूति करैं कर्मादिक, चेतन रूप तु आप संभाल।।७५।।

चेतन रूप विचारि विचक्षन, ए सब हैं परके परपंच।
आठों कर्म लगे निशिवासर, तिन्हें निवारि लेहु किन खंच।।
जिय समुझावत हों फिर तोकों, इनसे मग्न होऊ जिन रंच।
ये अज्ञान तुम ज्ञान विराजत, तातैं करहु न इनको संच।।७६।।

चेतन जीव विचारहु तो तुम, निहचै ठौर रहनकी कौन।
देव लोक सुरइंद्र कहावत, तेहू करहिं अंत पुनि गौन।।
तीन लोकपति, नाथ जिनेश्वर, चक्रीधर पुनि नर हैं जौन।
यह संसार सदा सुपनेसम, निशचै वास इहां नहिं हौन।।७७।।

चितके अंतर चेत विचक्षन, यह नरभव तेरो जो जाय।
पूरव पुण्य किये कहुं अतिही, तातें यह उत्तम कुल पाय।।
अब कछु सुक्रत ऐसो कर तू, जातें मरण जरा नहिं थाय।
बार अनंती मरकें उपजे, अब चेतहु चित चेतन राय।।७८।।

कवित्त

अरे नर मूरख तू भामनीसों कहा भूल्यो, विषकीसी बेल काहू दगाको बनाई है। सेवत ही याहि नैकु पावत अनेक दुःख, सुखहूकी बात कहूं सुपनै न आई है।। रसके कियेसों रसरोगको रसंस होइ, प्रीतिके कियेसों प्रीति नरककी पाई है। यह शुभ्र सागरमें डूबिवेकी ठौर 'भैया', यामें कछु धोखा खाय रामकी दुहाई है।।७९।।

मात्रिक कवित्त

चंद्रमुखी मन धारत है जिय, अंतसमें तोकों दुखदाई।
चारहु गतिमें यही फिरावत, तासों तुम फिर प्रीति लगाई।।
बार अनंती नरकहिं डारिके, छेदन भेदन दुःख सहाई।
सुबुधि कहै सुनि चेतनप्रानी, सम्यक शुद्ध गहौ अधिकाई।।८०।।

सवैया

रे मन मूढ विचारि करो, तियके संग बात सबै विगरैगी।
ए मन ज्ञान सुध्यान धरो, जिनके संग बात सबै सुधरैगी।।
धू गुण आपु विलक्ष गहो पुनि, आपुहितै परतीति टरैगी।
सिद्ध भये ते यही करनी कर, ऐसें किये शिव नारि वरैगी।।८१।।

सोरठा

एहो चेतनराय, परसों प्रीति कहा करी।
जे नरकहिं ले जाहिं, तिनहीसों राचे सदा।।८२।।

मात्रिक कवित्त

चेतन नींद बडी तुम लीनी, ऐसी नींद लेय नहिं कोय।
काल अनादि भये तोहि सेवत, विनजागे समकित क्यों होय।।
निशचै शुद्ध गयो अपनो गुण, परके भाव भिन्न करि खोय।
हंस अंश उज्वल ह्वै जब ही, तब ही जीव सिद्धसम सोय।।८३।।

काल अनादि भये तोहि सोवत, अब तो जागहु चेतन जीव।
अमृत रस जिनवरकी वानी, एकचित्त निशचैकर पीव।।
पूरब कर्म लगे तेरे संग, तिनकी मूर उखारहु नींव।
ये जड़ प्रगट गुप्त तुम चेतन, जैसे भिन्न दूध अरु घीव।।८४।।

समान सवैया

काल अनादि तैं फिरत फिरत जिय, अव यह नरभव उत्तम पायो।
समुझि समुझि पंडित नर प्रानी, तेरे कर चिंतामणि आयो।।
घटकी आँखै खोल जोंहरी, रतन जीव जिनदेव बतायो।
तिलमें तैल वास फूलनिमें, यों घटमें घटनायक गायो।।८५।।

सवैया

हंसको वंश लख्यो जबतें, तबतैं जु मिट्यो भ्रम घोर अंधेरो।
जीव अजीव सबैं लख लीने, सु तत्त्व यहै जिनआगमकेरो।।
ताक्ष्र्यके आवत ही अहि भागे, सु छूटि गयो भवबंधन घेरो।
सम्यक शुद्ध गहो अपनो गुन, ज्ञानके भानु कियो है सवेरो।।८६।।

कवित्त

उदै करै जोपैं भानु पच्छिमकी दिशा आय, उड़िके अकाश मध्य जाय कहूं धरती। अचल सुमेरु सोऊ चल्यो जायअवनीपै, सीतता स्वभाव गहै आगि महा जरती।। फूलै जोपै कौंल कहूं पर्वतकी शिलानपै, पाथरकी नाव चलै पानीमाहिं तरती। चलिके ब्रह्मंड जोपै तालमधि जाहि कहूं, तऊ विधनाकी लेखिलिखी नाहिं टरती।।८७।।

सवैया

काहेको शोच करै चित चेतन, तेरी जु वात सु आगें बनी है।
देखी है ज्ञानीतैं ज्ञान अनंतमें, हानि ओ वृद्धिकी रीति घनी है।।

ताहि उलंघि सकै कहि कौउजु, नाहक भ्रामिक बुद्धि ठनी है।
याहि निवारिकें आपु निहारिकें, होहु सुखी जिम सिद्ध धनी है।।८८।।

कोउजु शोच करो जिन रंचक, देह धरी तिंहु काल हरैगो।
जो उपज्यो जगमें दिन चारके, देखत ही पुनि सोई मरैगो।।
मोह भुलावत मानत सांच सो, जानत याहीसों काज सरैगो।
पंडित सोई विचारत अंतर, ज्ञान सँभारिकें आपु तरैगो।।८९।।

काहेको देहसों नेह करै तुव, अंतको राखी रहैगी न तेरी।
मेरी है मेरी कहा करै लच्छिसों, काहुकी ह्वैके कहू रही नेरी?।।
मान कहा रह्यो मोह कुटुंवसों, स्वारथ के रस लागे सगेरी।
तातैं तू चेति विचक्षन चेतन, झूंटी है रीति सवै जगकेरी।।९०।।

कवित्त

केवल प्रकाश होय अंधकार नाश होय, ज्ञानको विलास होय ओरलों निवाहवी। सिद्धमें सुवास होय, लोकालोक भास होय, आपुरिद्ध पास होय औरकी न चाहवी।। इन्द्र आय दास होय अरिनको त्रास होय, दर्वको उजास होय इष्टनिधि गाहिवी। सत्वसुखराश होय सत्यको निवास होय, सम्यक भयेतैं होय ऐसी सत्य साहिवी।।९१।।

मात्रिक कवित्त

जाके घट समकित उपजत है, सो तौ करत हंसकी रीत।
क्षीर गहत छांड़त जलको सँग, वाके कुलकी यहै प्रतीत।।
कोटि उपाय करो कोउ भेदसों, क्षीर गहै जल नेकु न पीत[1]।
तैसें सम्यकवंत गहै गुण, घट घट मध्य एक नयनीत।।९२।।

सिद्ध समान चिदानंद जानिके, थापत है घटके उरबीच।
वाके गुण सब बाहि लगावत, और गुणहि सब जानत कीच।।

१. पीता है।

ज्ञान अनंत विचारत अंतर, राखत है जियके उर सींच।
ऐसें समकित शुद्ध करत हैं, तिनतैं होवत मोक्ष नगीच।।९३।।

कवित्त

निशदिन ध्यान करो निशचै सुज्ञान करो, कर्मको निदान करो आवै नाहि फेरिकैं। मिथ्यामति नाश करो सम्यक उजास करो, धर्मको प्रकाश करो शुद्धदृष्टि हेरिकै।। ब्रह्मको विलास करो, आतमनिवास करो, देव सब दास करो महामोह जेरिकैं। अनुभौ अभ्यास करो थिरतामें वास करो, मोक्षसुख रासकरो कहू तोहि टेरिकै।।९४।।

जिनके सुदृष्टि जागी परगुणके भै[१] त्यागी, चेतनसो लवलागी भागी भ्रांति भारी है। पंचमहाव्रतधारी जिन आज्ञाके विहारी, नग्नमुद्राके अकारी धर्महितकारी है।। प्राशुक अहारी अठ्ठाईस मूल गुणधारी, परीसह सहैं भारी परउपकारी है। पर्मधर्म धनधारी सत्य शब्दके उचारी, ऐसे मुनिराज ताहि वंदना हमारी है।।९५।।

शुभ ओ अशुभ कर्म दोऊ सम जानत है, चेतनकी धारामें अखंड गुण साजे है। जीवद्रव्य न्यारो लखै न्यारे लख आठों कर्म पूरवीक बंधतैं मलीन केई ताजे हैं।। स्वसंवेग ज्ञानके प्रवानतैं अवाधिवेदि ध्यानकी विशुद्धतासों चढै केई बाजे हैं। अंतर की दृष्टिसों अरिष्ट सब जीत राखे, ऐसी बातैं करैं ऐसे महा मुनिराजे हैं।।९६।।

श्रीवीर जिनस्वामीको केवल प्रकाश भयो, इंद्र सब आय तहां क्रिया निज कीनी है। सोचत सो इंद्र तब वानी क्यों न खिरै आज यह

१. भय।

तो अनादि थिति भई क्यों नवीनी है।। पूछत सीमंधरपैं जायके विदेहक्षेत्र, इंद्रभूति योग छिनमें बताय दीनी है। आय एक काव्य पढी जाय इंद्रभूति पास, सुनत ही चौंक चल्यो आय दीक्षा लीनी है।।९७।।

छंद प्लवंगम

राग द्वेष अरु मोह, मिथ्यात्व निवारिये।
पर संगति सब त्याग, सत्य उर धारिये।।
केवल रूप अनूप, हंस निज मानिये।
ताके अनुभव शुद्ध सदा उर आनिये।।९८।।

सवैया

जो षट स्वाद विवेकी विचारत, रागनके रस भेदनपो है।
पंच सुवर्णके लच्छन वेदत, बूझै सुवास कुवासहिं जो है।।
आठ सपर्श लखै निज देहसों, ज्ञान अनंत कहैंगे कितो है।
ताहि विलोकि विचक्षन रे मन! द्वैपल देखतो देखत को है।।९९।।

कवित्त

बुद्धि भये कहा भयो जोपैं शुद्ध चीन्हीं नाहिं, बुद्धिको तो फल यह तत्त्वको विचारिये। देह पाये कौन काज पूजे जो न जिनराज, देहकी बडाई ये जप तप चितारिये।। लच्छि आये कौन सिद्धि रहि है न थिर रिद्धि, लच्छिको तो लाहु जो सुपात्र मुख डारिये। वचनकी चातुरी बनाय बोले कहाहोहि, वचन तौ वह सत्य शवद उचारिये।।१००।।

सवैया

जो परलीन रहै निशिवासर, सो अपनी निधि क्यों न गमावै।
जो जगमाहिं लखै न अध्यातम, सो जिय क्यों निहचै पद पावै।।

जो अपने गुन भेद न जानत, सो भवसागरमें फिर आवै।
जो विप खाय सो प्राण तजै, गुड खाय जो काहे न कांन विधावै।।१०१।।

दुर्मिल सवैया ८ सगण

भगवंत भजो सु तजो परमाद, समाधिके संगमें रंग रहो।
अहो चेतन त्याग पराइ सु बुद्धि, गहो निज शुद्धि ज्यों सुक्ख लहो।।
विपया रसके हित वूडत हो, भवसागरमें कछु शुद्धि गहो।
तुम ज्ञायक हो षट् द्रव्यनके, तिनसों हित जानके आपु कहो।।१०१।।

कवित्त

देखी देह खेतक्यारी ताकी ऐसी रीति न्यारी, वोये कछु आन उपजत कछु आन है। पंचामृत रस सेती पोखिये शरीर नित, उपजै रुधिर मास हाडनको ठान है।।१०२।। एतेपर रहै नाहिं कीजिये उपाय कोटि, छिनमें विनश जाय नाम न निशान है। एते देखि मूरख उछाह मनमाहिं धरै, ऐसी झूंठ वातनिको सांच कर मान है।।१०३।।

कुंडलिया

सुखमें मग्न सदा रहै, दुखमें करै विलाप।
ते अजान जाने नहीं, यहै पुन्य अरु पाप।।
यहै पुण्य अरु पाप, आप गुन इनतें न्यारो।
चिद्विलास चिद्रूप, सहज जाको उजियारो।।
गुण अनंत जामे प्रगट, कबहू होहिं न और रुख।
तिहिं पद परसे विनु रहै, मूढ मगन संसार सुख।।१०४।।

कवित्त

जीव जे अभव्य राशि कहे हैं अनंत तेउ, ताहू तैं अनंत गुणे सिद्धके विशेखिये। ताहूतैं अनंत जीव जगमें जिनेश कहे, तिनहूतैं

कर्म ये अनंत गुणे लेखिये।। तिनहूतैं पुद्गल प्रमाणु हैं अनंत गुणे, ताहूतैं अनंत यों आकाशको जु पेखिये। ताहूतैं अनंत ज्ञान जामें सब विद्यमान, तिहू काल परमाण एकसमै देखिये।।१०५।।

कवित्त

जे तो जल लोकमध्य सागर असंख्य कोटि, ते तौ जल पीयो पै न प्यास याकी गयी है। जे ते नाज दीपमध्य भरे हैं अवार ढेर, तेतौ नाज खायो तोऊ भूख याकी नयी है।। तातें ध्यान ताको कर जातें यह जाँय हर, अष्टादश दोष आदि येही जीत लयी है। वहै पंथ तूहीं साजि अष्टादशजाहिं भाजि होय बैठि महाराज तोहि सीख दयी है।।१०६।।

कविकी लघुता, छंद कवित्त

एहो बुद्धिवंत नर हँसो जिन मोह कोऊ, बाल ख्याल कीनो तुम लीजियो सुधारिके। मैं न पढ्ओ पिंगल न देख्यो छंद कोश कोऊ, नाममाला नावको पढी नहीं विचारिके।। संस्कृत प्राकृत व्याकरणहू न पढ्यो कहूं, तातैं मोको दोष नाहि शोधियो निहारिके। कहत भगोतीदास ब्रह्मको लह्यो विलास, तातैं ब्रह्म रचना करी है विसतारिके।।१०७।।

दोहा

इति श्री शत अष्टोत्तरी, कीन्हीं निजहित काज।
जे नर पढहिं विवेकसों, ते पावहिं शिवराज।।१०८।।

इति शतअष्टोत्तरी कवित्तबंध समाप्त:।

अथ द्रव्यसंग्रह मूलसहित कवित्तबन्ध लिख्यते।

मंगलाचरण, आर्याछंद

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्दिठ्ठं।
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा।।१।।

छप्पयछंद

सकल कर्मक्षय करन, तरन तारन शिव नायक।
ज्ञान दिवाकर प्रगट, सर्व जीवहिं सुखदायक।।
परम पूज्य गणधरहु, ताहि पूजित–जिनराजे।
देवनिके पति इंद्र वृंद, वंदित छवि छाजे।।
इह विधि अनेक गुणनिधिसहित, वृषभनाथ मिथ्यात हर।
तसु चरण कमल वंदित भविक, भावसहित नित जोर कर।।१।।

दोहा

तिहँ जिन जीव अजीवके, लखे सगुण परजाय।
कहे प्रगट सब ग्रंथमें, भेदभाव समुझाय।।१।।

जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
[१]भुत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।।२।।

कवित्त

जीव है सुज्ञानमयी चेतना स्वभाव धरै, जानिवो औ देखिवो अनादिनिधि पास है। अमूर्त्तिक सदा रहै और सो न रूप गहै, निश्चैनै प्रवान जाके आतम विलास है।। व्योहारनय कर्त्ता है देहके प्रमान मान, भुक्ता सुख दुःखनिको जगमें निवास है। शुद्ध नै विलोके सिद्ध करम कलंक बिना, ऊर्द्धको स्वभाव जाको लोक अग्रवास है।।२।।

---

१. 'भोत्ता' ऐसा भी पाठ है।

तिक्काले चदुपाणा, इंदिय बलमाउ आणपाणा य।
ववहारा सो जीवो, णिच्चयणयदो दु चेदणा[१] जस्स।।३।।

तिहुंकाल चार प्राण धरै जगवासी जीव, इन्द्रीवल आयु ओ उस्वास स्वास जानिये। एई चार प्राण धरै साताभान जीवो करै, तातैं जीव नांव कह्यो नैव्योहार मानिये।। निश्चैनय चेतना विराज रही शुद्ध जाके, चेतन विरुद सदा याहीतै प्रमानिये। अतीत अनागत सुवर्तमान 'भैया' निज, ज्ञानप्रान शास्वतो स्वभाव यों बखानिये।।३।।

उवओगे दुवियप्पो, दंसण णाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खू ओही, दंसणमथ केवलं णेयं।।४।।

जीवके चेतना परिणाम शुद्ध राजत है, ताके भेद दोय जिन ग्रंथनिमें गाइये। एक है सु चेतना कहावै शुद्ध दर्शन, दूजी ज्ञान चेतना लखेतैं ब्रह्म पाइये।। देखिवेके भेद चारि लीजिये हृदै विचारि, चक्षु ओ अचक्षु औधि केवल सुध्याइये। येही चार भेद कहे दर्शनके देखनेके, जाके परकाश लोकालोक हू लखाइये।।४।।

णाणं अट्ठवियप्पं, मदिसुदिओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जय केवलमवि, पचक्खपरोक्खश्रेयं च।।५।।

मइ सुइ परोक्ख[२] णाणं, ओही मण होइ वियल पंचक्खं।
केवलणाणं च तहा, अणोवमं होइ सयलपच्चक्खम्।।६।।

ज्ञानके जु भेद आठ ताके नाम भिन्न सुनो, कुमति कुश्रुति अवधि लों विशेखिये। सुमति सुश्रुति सु औधि मनपर्जय और, केवल प्रकाशवान वसुभेद लेखिये।। मति श्रुति ज्ञान दोऊ हैं परोक्षवान

---

१. चेयणा ऐसा भी पाठ है। २. परोह ऐसा भी पाठ है।

औधि, मनपर्जय प्रत्यक्ष एक देश पेखिये। केवल प्रत्यक्ष भास लोकलोकको विकास, यहै ज्ञान शास्वतो अनंतकाल देखिये।।५।।

अट्ठचदु[1]णाणदंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं।।६।।

मात्रिक कवित्त

अष्ट प्रकार ज्ञान चतु दरसन, नय व्यवहार जीवके लच्छन।
निहचैं शुद्ध ज्ञान ओ दरसन, सिद्ध समान सुछंद विचक्षन।।
केवल ज्ञान दरस पुनि केवल, राजै शुद्ध तजै प्रतिपच्छन।
यह निहचै व्योहार कथनकी, कथा अनंत कही शिव गच्छन।।६।।

वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो।।७।।

कवित्त

वर्ण पंच स्वेत पीत हरित अरुण श्याम, तिनहूके भेद नाना भांतिके विदीत है। रस तीखो खारो मधुरो कडुओ कषायलो, इनहूके मिले भेद गणती अतीत है।। तातो सीरो चीकनो रूखो नरम कठोर, हरुवो भारी सुगंध दुर्गंधमयी रीत है। मूरति सुपुद्गलकी जीव है अमूरतीक नैव्यौहार मूरतीक बंधतै कहीत है।।७।।

बंध्यो है अनादिहीको कर्मके प्रबंध सेती, तातैं मूरतीक कह्यो परके मिलापसों। बंधहीमें सदा रहै समैप्रतिसमै गहै; पुग्गलसों एकमेक ह्वै रह्यो है आपसों।। जैसे रूपो सोनो मिले एक नाव पाय रह्यो, तैसैं जीवमूरतीक पुग्गल प्रतापसों। यहै बात सिद्ध भई जीव मूरतीकमई, बंधकी अपेक्षा लई नैव्योहार छापसों।।७।।

१. चहुं ऐसा भी पाठ है।

पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो।
चेदणकम्मा णादा, सुद्धणया सुद्ध भावाणं।।८।।

पुदगल करमको करैया है चिदानंद, व्योहार प्रवान इहां फेर कछु नाहीं है। ज्ञानावर्णी आदि अष्ट कर्मको करता है, रागादिक भाव धरै आप उहि पांही है।। शुद्ध नै विचारिये तो राग है कलंक याकै, यह तो अटंक सदा चेतना सुधाही है। अनंत ज्ञान परिणाम तिनको करैया जीव, सास्वतो सदीव चिरकाल आपमाही हैं।।८।।

ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि।
आदा णिच्चयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स।।९।।

व्योहार नै देखिये तो पुग्गलके कर्मफल, नाना भांति सुखदुःख ताको भुगतैया है। उपजाये आपुतैं ही शुभ ओ अशुभ कर्म, ताके फल साता ओ असाताको सहैया है।। निश्चैनय देखिये तो यह जीव ज्ञानमई, अपुने चेतन परिणामको करैया है। तातैं भोक्ता पुनि सुचेतन परिणामनिको, शुद्धनै विलोकिये तो सबको लखैया है।।९।।

अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्चयणयदो असंखदेसो वा।।१०।।

देहके प्रमान राजै चेतन विराजमान, लघु और दीरघ शरीरके उदैसों है। ताहीके समान परदेश याके पूरि रहे, सूक्ष्म औ बादर तन धरै तहां तैसो है।। व्यवहारनय ऐसो कह्यो समुद्धात विना, देहको प्रमान नाहि लोकाकाश जैसो है। शुद्ध निश्चयनयसों असंख्यात परदेशी, आतम स्वभाव धरै विद्यमान ऐसो है।।१०।।

पुढविजलतेउवाऊ, वणप्फदी विविह थावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी।।११।।

पृथ्वीकाय जलकाय अग्निकाय वायुकाय, वनस्पतिकाय पांचो थावर कहीजिये। वे इंद्री ते इंद्री चौ इंद्री पंचेंद्रिय है चारों, जामें सदा चलिवेकी शकति लहीजिये।। तन जीभ नाक आंख कान येही पंचइंद्री, जाके जे ते होय ताहि तैसो सर्दहीजिये। संख द्वै पिपीलि तीन भौंर चार नर पंच, इन्हें आदि नाना भेद समुझि गहीजिये।।११।।

समणा अमणा णेया, पंचेंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
[1]वायरसुहमेइंदी, सव्वे पज्जत्त इदरा य।।१२।।

पंच इंद्री जीव जिते ताके भेद दोय कहे, एकनिके मन एक मनबिना पाइये। और जगवासी जंतु तिनके न मन कहूं, एकेंद्री, बेइंद्री तेंद्री चौइंद्री बताइये।। एकेंद्रीके भेद दोय सूक्षम बादर होय, पर्यापत[2] अपर्यापत[3] सवै जीव गाइये। ताके बहु विस्तार कहे हैं जु ग्रंथनिमें, थोरेमें समुझि ज्ञान हिरदै अनाइये।।१२।।

मग्गण गुण ठाणेहि य, चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।।१३।।

चउदह मारगणा चउदह गुणस्थान, होंहिं ये अशुद्ध नय कहे जिनराजने। येही भाव जोलों तोलों संसारी कहावै जीव, इनको उलंघिकरि मिलै शिव साजने।। शुद्धनै विलोकियेतौ शुद्ध है सकलजीव, द्रव्यकी उपेक्षासो[4] अनंत छवि छाजने। सिद्धके समान ये विराजमान सबै हंस, चेतना सुभाव धरै करें निज काजनै।।१३।।

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवयेहिं संजुत्ता।।१४।।

---

१. 'वादर' ऐसा भी पाठ है। २. पर्याप्त। ३. अपर्याप्त। ४. 'अपेक्षासों' ऐसा भी पाठ है परन्तु ऐसा पाठ रखने पर 'अनंत' शब्द का अर्थ 'नित्य' ऐसा लेना चाहिए।

अष्टकर्महीन अष्ट गुणयुत चरमसु, देह तातें, कछु ऊनो सुखको निवास है। लोकको जु अग्र तहाँ स्थित है अनंत सिद्ध, उत्पादव्यय संयुक्त सदा जाको वास है।। अनंतकाल पर्यंत थिति है अडोल जाकी, लोकालोकप्रतिभासी ज्ञानको प्रकाश है। निश्चै सुखराज करै बहुरि न जन्म धरै, ऐसो सिद्ध राशनिको[1] आतम विलास है।।१४।।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहि सव्वदो मुक्को।
उड्ढं गच्छदि सेसा, विदिसावज्जं गदिं जंति।।१।।

प्रकृति ओ थितिबंध अनुभागबंध परदेशबंध एई चार बंध भेद कहिये। इन्हीं चहु बंधतैं अबंध ह्वैके चिदानंद, अग्निशिखासम ऊर्ध्वको सुभावी लहिये।। और सब जगजीव तजै निज देह जब, परभोको गौन करै तबै सर्ल गहिये। ऐसें ही अनादिथिति नई कछू भई नाहिं, कही ग्रंथमांहि जिन तैसी सरदहिये।।१।।

(इति जीवस्य नवाधिकारा:)

अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गल मुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसादु।।१५।।

अजीवदरव पंच ताके नांव भिन्न सुनो, पुद्गल ओ धर्मद्रव्यको सुभाव जानिये। अधर्म द्रव्य आकाश द्रव्य काल दर्व एई, पांचो द्रव्य जगमें अचेतन बखानिये।। तामे पुग्गल है मूरतीक रूप रस गंध, पर्शमई गुणपरजाय लिये जानिये। और पंच जीव जुत कहे हैं अमूरतीक, निज निज भाव धरै भेदी ह्वै पिछानिये।।१५।।

सद्दोबंधो सुहमो, थूलो संठाण भेद तमछाया।
उज्जोदादवसहिया, पुग्गलदव्वस्स पज्जाया।।१६।।

---

१. 'सिद्धराजनिको' ऐसा भी पाठ है।

शबद बंध सूक्षम थूल ओ अकार रूप, ह्वैवो मिलिवो ओ विछुरिवो धूप छाय है। अंधारो उजारो ओ उद्योत चंदकांतिसम, आतप सु भानु जिम नानाभेद छाय है।। पुद्गल अनंत ताकी परजाय हू अनंत, लेखो जो लगाइये तोऽनंतानंत थाय है। एकही समैंमें आय सब प्रतिभास रही, देखी ज्ञानवंत ऐसी पुद्गल प्रजाय है।।१६।।

गइपरणयाण धम्मो, पुग्गलजीवाण गमणसहयारी।
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई।।१७।।

जब जीव पुद्गल चलै उठि लोकमध्य, तबै धर्मास्तिकाय सहाय आय होत है। जैसें मच्छ पानीमाहिं आपुहीतैं गौन करे, नीरकी सहायसेती अलसता खोत है।। पुनि यों नही जो पानी मीनको चलावे पंथ, आपुहीतै चलै तो सहाय कोऊ नोत है। तैसें जीव पुद्गलको और न चलाय सके, सहजै ही चलै तो सहायका उदोत है।।१७।।

ठाणजुयाण अधम्मो, पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी।
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई।।१८।।

जीव अरु पुग्गलको थितिसहकारी होय, ऐसो है अधर्मद्रव्य लोकताई हद है। जैसें कोऊ पथिक सुपंथमध्य गौन करे, छायाके समीप आय बैठे नेकु तद है।। पैं यों नहीं जु पंथीको राखतु बैठाय छाया, आपुने सहज बैठै बाको आश्रैपद है। तैसें जीव पुद्गलको अधर्मास्तिकाय सदा, होत है सहाय 'भैया' थितिसमैं जद है।।१८।।

अवगासदाणजोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं।
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि[1] दुविहं।।१९।।

जीव आदि पंच पदार्थनिको सदाही यह, देत अवकाश तातैं

---

१. **'अलोगागास' ऐसा भी पाठ है।**

आकाश नाम पायो है। ताके भेद दोय कहे एक है अलोकाकाश, दूजो लोकाकाश जिन ग्रंथनिमें गायो है।। जैसें कहू घर होय तामें सब बसें लोय, तातैं पंच द्रव्यहूको सदन बतायो है। याहीमें सबै रहै पै निजनिज सत्ता गहै, यातैं परें और सो अलोक ही कहायो है।।१९।।

धम्माधम्मा कालो, पुग्गलजीवा य संति जावदिये।
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो।।२०।।

जितने आकाशमाहिं रहैं ये दरबपंच, तितने अकाशको जु लोकाकाश कहिये। धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य कालद्रव्य पुद्गल, द्रव्य जीव द्रव्य ऐई पांचों जहाँ लहिये।। इनतै अधिक कछु और जो विराज रह्यो, नाम सो अलोकाकाश ऐसो सरदहिये। देख्यो ज्ञानवंतन अनंतज्ञान चक्षुकरि, गुणपरजाय सो सुभाव शुद्ध गहिये।।२०।।

दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो।
परिणामादिलक्खो, वट्टणलक्खो य परमट्ठो।।२१।।

जोई सर्वद्रव्यको प्रवर्त्तावन समरथ, सोई कालद्रव्य बहुभेदभाव राजई। निज निज परजाय विषै परणवै यह, कालकी सहाय पाय करै निज काजई।। ताही कालद्रव्यके[1] विराजरहे भेद दोय, एक व्यवहार परिणाम आदि छाजई। दूजो परमार्थकाल निश्चयवर्त्तना चाल, कायतैं रहित लोकाकाशलों सुगाजई।।२१।।

लोयायास पदेसे, इक्केक्के जेट्ठिया हु इक्केक्का।
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंखदव्वाणि।।२२।।

लोकाकाशके जु एक एक परदेश विपै, एक एक काल अणु सुविराज रहे हैं। तातैं काल अणुके असंख्य द्रव्य कहिय तु, रतनकी

---

१. 'जमराजके' ऐसा भी पाठ है।

राशि जैसें एक पुंज लहे हैं।। काहुसों न मिलै कोई रत्नजोत दृष्टि जोई, तैसें काल अणु होय भिन्नभाव गहे हैं। आदि अंत मिलै नाहिं वर्त्तना सुभावमांहि, समै पल महूर्त्त परजाय भेद कहे हैं।।२२।।

एवं छब्भेयमिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं।
उत्तं कालविजुत्तं, णायव्वा पंच अत्थिकाया दु।।२३।।

दोहा

जीव अजीवहि द्रव्यके, भेद सुषट्विध जान।
तामें पंच सु काय धर, कालद्रव्य विन मान।।२३।।

संति जदो तेणेदे, अत्थीति भणंति जिणवरा जह्मा।
काया इव बहुदेसा, तह्मा काया य अत्थिकाया य।।२४।।

कवित्त

ऐसे कह्यो जिनवर देख निज ज्ञान माहिं, इतने पदार्थनिको कायधर मानिये। जीवद्रव्य पुद्‌गलद्रव्य धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य ओ अकाश द्रव्य एई नाम जानिये।। कायके समान सदा बहुते प्रदेश धरे, तातैं काय संज्ञा इन्हैं प्रत्यक्ष प्रवानिये।। निज निज सत्तामें विराज रहे सबै द्रव्य, ऐसें भेद भाव ज्ञान दृष्टिसों पिछानिये।।२४।।

हुंति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे।
मुत्ते तिविह पदेसा[1], कालस्सेगो ण तेण सो काओ।।२५।।

जीवद्रव्य धर्मद्रव्य अधरमद्रव्य इन, तीनों को असंख्य परदेशी कहियतु है। अनंत प्रदेशी नभ पुद्गलके भेद तीन, संख्याऽसंख्याऽनंत परदेशको बहतु है।। कालके प्रदेश एक अन्य पांचके अनेक, तातैं पंच अस्ति काय ऐसो नाम हतु है। काल विन काय जिनराजजूनें यातैं कह्यो, एक परदेशी कैसें कायको धरतु है।।२५।।

---

१. 'पयेसा' ऐसा भी पाठ है।

एयपदेसोवि अणू, णाणाखंध प्पदेसदो होदि।
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हू।।२६।।

पुग्गल प्रमाणु जोपैं एक परदेश धरै, तोपैं बहु प्रमाणु मिलै बहु प्रदेश हैं। नानाकार खंधसों जु कितने प्रदेश होंहि, अनंत असंख्यसंख्य भेदको धरेश हैं।। तातैं सर्वज्ञजूने पुग्गल प्रमाणु प्रति, कह्यो कायधर सदा जाके सब भेश है। देखिये जु नैननिसों पुग्गलके पुंज सबै, यहै लोक माहिं एक सासुतो नरेश है।।२६।।

जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणुवट्ठद्धं।
तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं।।२७।।

जितनों आकाश पुग्गलाणु एक रोकि रह्यों, तितने अकाश को प्रदेश एक कहिये। शुद्ध अविभागी जाके एकके न होय दोय, ऐसे परमाणुके अनेक भेद लहिये।। अनंत परमाणूको योग्य ठौर देवेको जु, ऐसोही अकाशको प्रदेश एक गहिये। जामें और द्रव्य सब प्रगट विराज रहे, कोऊ काहू मिलै नाहिं ऐसो सरदहिये।।२७।।

इति श्रीषड्द्रव्यपञ्चास्तिकायप्रतिपादनामा प्रथमोऽधिकारः।।१।।

आसवबधंणसंवरणिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे।
जीवाजीवविसेसो, तेवि समासेण पभणामो।।२८।।

चौपाई १५ मात्रा

आस्रव सँवर, बंधको खंध, निर्जर मोक्ष पुण्यको बंध।
पापऽरु जीव अजीव सु भेव, इते पदार्थ कहों संखेव[1]।।२८।।

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेओ।।
भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि।।२९।।

---

१. संक्षेप से।

दुर्मिल छंद (सवैया) ३२ मात्रा

जिहँ आतमके परिणामनिसों, निजकर्महि आस्रव मान लये।
तिहँ भावनको यह नाम लियो, भावास्रव चेतनके जु भये।।
दरवाश्रव पुद्गलको अयबो, करमादि अनेकन भांति ठये।
इम भावनिको करता भयो चेतन, दर्वित आस्रव ताहितैं ये।।२९।।

मिच्छत्ताविरदिपमाद, जोगकोहादओ सविण्णेया।
पणपणपणदहतियचदु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स।।३०।।

मात्रिक कवित्त

पांच मिथ्यात पांच है अव्रत, अरु पंद्रह परमादहिं जान।
मनवचकाय योग ये तीनो, चतु कषाय सोरहविधि मान।।
इन्हैं आदि परिणाम जाति बहु, भावास्रव सब कहे बखान।
तातैं भावकर्मको करता, चिन्मूरत 'भैया' पहिचान।।३०।।

णाणावरणादीणं, जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि।
दव्वासवो स णेओ, अणेयभेओ[1] जिणक्खादो।।३१।।

कवित्त

ज्ञानावर्णी आदि अष्ट करमनको आयवो, पुग्गलप्रमाणु मिलि नानाभांति थिते हैं। जीवके प्रदेशनिको आयके आछादतु है, कोऊ न प्रकाश लहै, असंख्यात जिते हैं।। ऐसो द्रव्य आस्रव अनेकभांति राजत है, ताहीके जु वसि जग वसें जीव किते हैं। कहे सर्वज्ञजूने भेद ये प्रत्यक्ष जाके, वेदै ज्ञानवंत जाके मिथ्यामत विते[2] हैं।।३१।।

वज्झदि कम्मं जेण दु, चेदणभावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं, अण्णोण्णपवेसणं इदरो।।३२।।

---

१. 'अणेय भेदो' ऐसा भी पाठ है। २. वीता है।

चेतन परिणामसो कर्म जिते बांधियत, ताको नाव भावबंध ऐसो भेद कहिये। कर्मके प्रदेशनिको आतमप्रदेशनिसों परस्परमिलिबो एकत्व जहां लहिये।। ताको नाव द्रव्यबंध कह्यो जिनग्रंथनमें, ऐसो उभै भेद बंध पद्धतिको गहिये। अनादिहीको जीव यह बंधसेती बँध्यो है, इनहीके मिटत अनंत सुख पहिये[१]।।३२।।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा, ठिदि अणुभागा कसायदो होंति।।३३।।

द्रव्यबंध भेद चारि प्रकृति ओ स्थितिबंध, अनुभागबंध परदेश बंध मानिये। प्रकृति प्रदेशबंध दोऊ मनवचकाय, के संयोगसेती होंहि ऐसे उर आनिये।। थिति बंध अनुभाग होंय ये कषायसेती, समुच्चै समस्या एती समुझि प्रमानिये। ऐसे बंधविधि कही ग्रंथनके अनुसार सर्वंगविचार सरवज्ञ भये जानिये।।३३।।

चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ।
सो भावसंवरो खलु, दव्वासवरोहणो अण्णो।।३४।।

कर्मनिके आस्रव निरोधिवेके भाव भये, तेई परिणाम भाव-संवर कहीजिये। द्रव्यास्रव रोकिवेको कारण सु जे जे होंय, ते ते सर्व भेदद्रव्य संवर लहीजिये।। याहीविधि भेद दोय कहे जिनदेव सोय, द्रव्यभाव उभै होय 'भैया' यों गहीजिये। संवरके आवत ही आस्रव न आवै कहूं, ऐसे भेद पाय परभाव त्याग दीजिये।।३४।।

वदसमिदी गुत्तीओ, धम्माणुपेहापरीसहजओ य।
चारित्तं बहु भेया, णायव्वा भावसंवरविसेसा।।३५।।

अहिंसादि पंच महाव्रत पंचसमितिसु, मनवचकाय तीन गुपति

---

१. 'वहिये' पाठ भी है।

प्रमानिये। धरम प्रकार दश बारह सुभावनाजु, वाईस परीसह को जीतिवो सुजानिये।। बहुभेद चारितके कहत न आवै पार, अति ही अपार गुण लच्छन पिछानिये। एते सब भेद भाव संवरके जानियेजु, समुच्चैहि नाम कहे 'भैया' उर आनिये।।३५।।

जहकालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण।
भावेण सडदिणेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा।।३६।।

मात्रिक कवित्त

जे परिणाम होंहि आतमके, पुग्गल करम खिरनके हेत।
अपनों काल पाय परमाणू, तप निमित्ततैं तजत सुखेत।।
तिहँ खिरिवेके भाव होंहि बहु, ते सब निर्ज्जरभाव सुचेत।
पुग्गल खिरै सुद्रव्य निर्जरा, उभयभेद जिनवर कहिदेत।।३६।।

सव्वस्स कम्मणो जो, खय हेदू अप्पणो क्खु परिणामो।
णेवोसभावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्मपुधभावो।।३७।।

छप्पय छंद

सकल कर्म छय करन, भाव अंतरगत राजै।
तिन भावनिसों कहत, भाव यह मोक्ष सु छाजै।।
दर्वमोक्ष तहाँ लहत, कर्म जहां सर्व विनासैं।
आतमके परदेश, भिन्न पुद्गलतैं भासैं।।
इहविधि सुभेद द्वै मोक्षके, कहे सु जिनपथ धारिकैं।
यह द्रव्य भावविधि सरदहत, सम्यकवंत विचारिकैं।।३७।।

सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा।
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च।।३८।।

कवित्त

शुभभाव तहां जहां शुभ परिणाम होहिं, जीवनिकी रक्षा अरु व्रतनिकों करिवो। तातें होय पुण्य ताको फल सातावेदनीय, शुभ आयु शुभगोत बहु सुख बरिवो।। अशुभ प्रणामनितें जीव हिंसा आदि बहु, पापके समूह होंय सृंकृतको हरिवो। वेदनी असाता होय छिनकी न साता होय, आयु नाम गोत सब अशुभको भरिवो।।३८।।

इतिश्रीसप्ततत्वनवपदार्थ प्रतिपादकनामा द्वितीयोऽधिकारः।।२।।

सम्मद्दंसण णाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्चयदो, तत्तियमइओ णिओ अप्पा।।३९।।

छप्पय

सम्यकदरशप्रमाण, ज्ञान पुनि सम्यक सोहै।
अरु सम्यक चारित्र, त्रिविध कारण शिव जो है।।
नय व्यवहार वखानि, कह्यो जिन आगम जैसे।
निहचै नय अव सुनहु, कहहुं कछु लच्छन तैसे।।
दर्शन सुज्ञान चारित्रमय, यह है परम स्वरूप मम।
कारणसु मोक्षको आपु तैं, चिद्विलास चिद्रूप क्रम।।३९।।

रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियह्मि।
तह्मा तत्तिय मइओ, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा।।४०।।

कवित्त

जीव व्यतिरेक ये रतनत्रय आदि गुण, अन्य जड़द्रव्यनिमें नैकुहू न पाइये। तातैं दृगज्ञानचर्ण आतमको रूपवर्ण, त्रिगुणको मूलधर्ण चिदानंद ध्याइये।। निश्चैनय मोक्षको जु कारण है आप सदा, आपनो

सुभाव मोक्ष आपुमें लखाइये। जैसें जैनवैनमें बखाने भेदभाव ऐन, नैनसो निहार 'भैया' भेद यों बताइये।।४०।।

जीवादीसद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणे तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि।।४१।।

जीवादि पदार्थनिकी जोंन सरधानरूप, रुचि परतीति होय निजपरभास है। ताको नाम सम्यक कहा है शुद्ध दरशन, जाके सरधाने विपरीत बुद्धि नाश है।। आतम स्वरूपको सुध्यान ऐसे कहियतु, जाके होत होत बहु गुणको निवास है। सम्यक दरस भये ज्ञानहू सम्यक होय, इन्हैं आदि और सब सम्यक विलास है।।४१।।

संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरूवस्स।
गहणं सम्मं णाणं सायारमणेयभेयं तु[1]।।४२।।

छप्पय

निजपरवस्तु स्वरूप, ताहि वेदै अरु धारै।
गुन लच्छन पहिचानि, यथावत अंगीकारै।।
संशय विभ्रम मोह, ताहि वर्जित निज कहिये।
ऐसो सम्यक ज्ञान, भेद जाके बहु लहिये।।
तसपद महिमा अगम अति, वुधिवलको वरनन करै।
यह मतिज्ञानादिक बहुत, भेद जासु जिन उच्चरै।।४२।।

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसिदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णये समये।।४३।।

मात्रिक कवित्त

जासु स्वरूप सवै प्रतिभासत, दर्शन ताहि कहै सव कोय।
भावऽरु भेद विचार विना जहँ, एकहि वेर विलोकन होय।।

१. 'च' ऐसा भी पाठ है।

जानि जु द्रव्य यथावत वेदत, भेद अभेद करै नहिं जोय।।
गुण देखै विकल्प विनु 'भैया', दरसन भेद कहावे सोय।।४३।।

दंसणपुव्वं णाणं, छदमत्थाणं च दुण्णि उवयोगा।
जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगवं तु ते दोवि।।४४।।

कुंडलिया[१]

सब संसारी जीवको, पहिले दरशन होय।
ताके पीछें ज्ञान ह्वै, उपजैं संग न दोय।।
उपजैं संगन दोय, कोइ गुण किसि न सहाई।
अपनी अपनी ठौर, सवै गुण लहै बडाई।।
पैश्रीकेवल ज्ञानको, होय परमपद जव्व।
तब कहुं समै न अंतरो, होंहिं इकट्ठे सब्ब।।४४।।

असुहादो विणवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं।।४५।।

कवित्त

पापपरिणाम त्याग हिंसातैं निकसि भाग, धरमके पंथ लाग दयादान कररे। श्रावकके व्रत पाल ग्रंथनके भेद भाल, लगै दोष ताहि टाल अघनिको हररे।। पंच महाव्रतधरि पंच हू समिति करि, तीनहू गुपति वरि तेरह भेद चररे। कहै सर्वज्ञ देव चारित्र व्योहारभेव, लहि ऐसा शीघ्रमेव वेग क्यों न तररे।।४५।।

बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं।।४६।।

अभ्यंतर बाह्य दोऊ क्रियाको निरोध तहां, परम सम्यक्त गुण

१. इस कुंडलिये में कुछ विलक्षणता है।

चारित उदोत है। वैन अरु काय दोऊ बाहिरके योग कहे, मन अभ्यंतर योग तीनो रोध होत है।। ताहीतैं निघट जल जात है संसाररूप, रागादिक मलिनको याही क्रम खोत है। कषाय आदि कर्मके समूहको विनाश करै, ताको नाव सम्यक चारित्रदधिपोत है।।४६।।

दुविहंपि मोक्ख हेउं, झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तह्मा पयन्तचिन्ता, जूयं ज्झाणं समब्भसह।।४७।।

मात्रिक कवित्त

द्वै परकार मोखको कारण, नितप्रति तस कीजे अभ्यास।
रत्नत्रयतैं ध्यानप्राप्त पुन, सुख अनंत प्रगटै निजरास।।
ध्यान होय तो लहै रतनत्रय, छिनमें करै कर्मको नास।
तातैं चिंता त्याग भविकजन, ध्यान करो धर मन उल्लास।।४७।।

मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु।
थिरमिच्छह जइ चित्तं, विचित्त झाणप्पसिद्धीए।।४८।।

छप्पय

मोह कर्म जिन[1] करहु, करहु जिन रागऽरु द्वेषहिं।
इष्ट संयोगहि देख, करहु जिन राग विशेषहिं।
मिलहिं अनिष्टसँयोग, द्वेष जिन करहु ताहि पर।
जो थिरता चित चहहु, लहहु यह सीख मंत्र वर।।
ध्रुवध्यान करहु वहु विधिसहित, निर्विकल्पविधि धारिकें।
जिमि लहहु परमपद पलकमें, त्रिविध करम अघ टारिकें।।४८।।

पणतीस सोल छप्पण, चदु दुगमेगं च जवह झाएह।
परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण।।४९।।

१. मत।

चौपई १६ मात्रा

पंच परम पद कीजे ध्यान। तस अक्षरका सुनहु विधान[१]।
तीस पंच अक्षर गणलीजे। नमस्कार नितप्रति तिहँ कीजे।।
'णमो अरहंताणं' सात। 'णमो सिद्धाणं' पंच विख्यात।
'णमो आयरियाणं' पँच दोय। 'णमो उवज्झायाणं' रिषि[२] होय।।
'णमो लोए सव्वसाहूणं'। नवमिलि पैंतिस अक्षर गुणं।
शोलह अक्षरको विस्तार। सुनहु भविक परमागमसार।।
'अरहंत सिद्ध आचारज' नाम। 'उपाध्याय' नित 'साधु' प्रणाम।
'अरहंत सिद्ध' छै अक्षर जान। 'अ सि आ उ सा' पंच प्रधान।
चतु अक्षर 'अरहंत' चितारि। द्वै अक्षर श्री 'सिद्ध' निहारि।।
इक अक्षर 'ओं' सब ही धरै। इनको सुमरन भविजन करै।
ये सबही परमेष्टि लखेय। अन्य सकलगुरुमुख सुनलेय।।

दोहा

इह विधि पंच परमपदहि, भविजन नितप्रति ध्याय।
इनके गुणहि चितारतैं प्रगट इन्ही सम थाय।।४९।।

णट्ठ चउघायकम्मो, दंसण सुहणाणवीरियमइओ।
सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो।।५०।।

कवित्त

ऐसें निज आतम अर्हंतको विचारियतु, चारकर्म नष्ट गये ताहीतैं अफंद है। ज्ञानदर्शवरणीय मोहिनी सु अंतराय, येही चारि कर्म गये चेतन सुछंद है।। दृष्टिज्ञान सुख वीर्य अनंत चतुष्टै युक्त, आतमा विराजमान मानों पूर्णचंद है। परमोदारीक देह बसै राग तजै जेह, दोषनितैं रह्यो सुद्ध ज्ञानको दिनंद है।।५०।।

---

१. 'विनान' ऐसा भी पाठ है। २. सात।

णट्ठट्ठकम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणवो दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो ज्झायेह लोयसिहरत्थो।।५१।।

ऐसे यह आतमाको सिद्ध कह ध्याइयतु, आठोंकर्म देहादिक दोष जाके नसे हैं। लोक ओ अलोकको जु ज्ञानवन्त दृष्टिमाहिं, जाकी स्वच्छताईमें सुभाव सब लसे हैं।। अनंतगुण प्रगट अनंतकाल–परजंत, थिति है अडोल जाकी पुरुषाकार बसे हैं। ऐसो है स्वरूप सिद्धखेतमें विराजमान, तैसो ही निहारि निज आपुरस रसे हैं।।५१।।

दंसण णाणपहाणे, वीरिय चारित्त वरतवायारे।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आयरिओ मुणी ज्झेओ।।५२।।

पंच जु आचारजके जानत विचार भले, ताही आचारजजूको नाम गुणधारी है। आपहू प्रवर्त्तै इह मारग दयाल रूप, औरैं प्रवर्तावनको परउपकारी है।। दरसनाचार ज्ञानाचारवीर्याचार चर्णाचार तपाचारमें विशेष बुद्धि भारी है। इन्हैं आदि और गुण केतेई विराज रहे, ऐसे आचारज प्रति वंदना हमारी है।।५२।।

जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो।
सो उवझाओ अप्पा जदिवरवसहो णमो तस्स।।५३।।

मात्रिक कवित्त

सम्यक दरश ज्ञान पुनि सम्यक, अरु सम्यक चारित कहिये।
ये रतनत्रय गुण करि राजत, द्वादश अँग भेदी लहिये।।
सदा देत उपदेश धरमको, उपाध्याय इह गुण गहिये।
मुनि गणमाहिं प्रधान पुरुष है, ता प्रति वंदन सरदहिये।।५३।।

दंसण णाणसमग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं।
साधयदि णिच्च सुद्धं, साहू स मुणी णमो तस्स।।५४।।

दोहा

सम्यक दर्शन संजुगत, अरु सम्यक जहँ ज्ञान।
तिहँ करि पूरण जो भर्‍यो, सो चारित परमान।।
चारित मारग मोक्षको, सर्वकाल सुध होय।
तिहँ साधत जो साधु मुनि, तिनप्रति वंदत लोय।।५४।।

जंकिंचि विचिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्तं, तदा हु तं तस्स णिच्चयं ज्झाणं।।५५।।

छप्पय

जब कहुं साधु मुनीन्द्र, एक निज रूप विचारें।
तब तहँ साधु मुनीन्द्र, अघनिके पुंज विदारें।।
जब कहुं साधु मुनीन्द्र, शुद्ध थिरतामहिं आवै।
तब तहँ साधु मुनीन्द्र, त्रिविधिके कर्म बहावै।।
इम ध्यान करत मुनिराज जब, रागादिक त्रिक टारिके।
तिन प्रति निश्चै कहत जिन, वँदहु सुरति सँभारिक।।५५।।

मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिंतह किंचि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं।।५६।।

कवित्त

मनवचकाय तिहूं जोगनिसों राचि कहुं, करो मति चेष्टा तुम इन की कदाचिकें। बोलो जिन बैन कहूं इनसों मगन ह्वैके, चिंतो जिन आन कछु कहूं तोहि सांचिकें।। पर वस्तु छांडि निज रूप माहिं लीन होय, थिरताको ध्यान करि आतमसों राचिकें। देख्यो जिन जिनवान यहै उतकृष्ट ध्यान, जामे थिर होय पर्म कर्म नाच नाचिकें।।५६।।

तवसुदवदवं चेदा, ज्झाणरहधुरंधरो जह्मा।
तह्मा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होइ।।५७।।

मात्रिक कवित्त

जब यह आतम करै तपस्या, दाहै सकल कर्मवन कुंज।
श्रुतसिद्धांत भेद बहु वेदत, जपै पंच पदके गुणपुंज।।
व्रतपचखान[१] करै बहु भेदै, इन संयुक्त महा सुख भुंज।
तब तिहँ ध्यान धुरंधर कहिये, परमानंद प्राप्तिमें मुंज।।५७।।

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा, दोससंचयचुदा सुदपुण्णा।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंदमुणिणा भणियं जं।।५८।।

कवित्त

सकलगुण निधान पंडितप्रधान बहु, दूषणरहित गुणभूषणसहित हैं। तिनप्रति विनवत नेमिचंद मुनिनाथ, सोधियो जुयाको तुम अर्थ जे अहित हैं।। ग्रंथ द्रव्य संग्रह सु कीनो मैं बहुतथोरो, मेरी कछु बुद्धि अल्पशास्त्र जो महित हैं। तातें जु यह ग्रंथ रचनाकरी है कछु, गुण गहि लीज्यो एती, विनती कहित है।।५९।।

इति श्रीद्रव्यसंग्रहग्रंथे मोक्षमार्गकथनं तृतीयोऽधिकारः।

दोहा

नेमचंद मुनिनाथने, इहविध रचना कीन।
गाथा थोरी अर्थ बहु, निपट सुगम करदीन।।१।।

छप्पय

ज्ञानवंत गुण लहै, गहै आतमरस अम्रत।
परसंगत सब त्याग, शांतरस वरें सु निज कृत।।
वेदै निजपर भेद, खेद सब तजें कर्मतन।
छेदै भवथिति वास, दास सब करहिं अरिनगन।।

---

१. प्रत्याख्यान=त्याग।

इहविधि अनेक गुण प्रगट करि, लहै सुशिवपुर पलकमें।
चिद्विलास जयवंत लखि, लेहु 'भविक' निज झलकमें।।२।।

दोहा

द्रव्यसंग्रह गुण उदधिसम, किहँविधि लहिये पार।
यथाशक्ति कछु वरणिये, निजमतिके अनुसार।।३।।

चौपाई १५ मात्रा

गाथा मूल नेमिचँद करी। महा अर्थनिधि पूरण भरी।।
बहुश्रुत धारी, जे गुणवंत। ते सब अर्थ लखहिं विरतंत।।४।।
हमसे मूरख समझें नाहिं। गाथा पढ़ै न अर्थ लखाहिं।।
काहू अर्थ लखे बुधि ऐन। वांचत उपज्यो अति चितचैन।।५।।
जो यह ग्रंथ कवितमें होय। तौ जगमाहिं पढ़ै सब कोय।
इहिविधि ग्रंथ रच्यो सुविकास, मानसिंह व भगोतीदास।।६।।
संवत सत्रहसे इकतीस, माघसुदी दशमी शुभदीस।।
मंगल करण परमसुखधाम, द्रवसंग्रहप्रति करहुं प्रणाम।।७।।

इति श्रीद्रव्यसंग्रहमूलसहित कवित्तबंध समाप्तः।

अथ चेतनकर्मचरित्र लिख्यते।

दोहा

श्रीजिन चरण प्रणाम कर, भाव भक्ति उर आन।
चेतन अरु कछु कर्म को, कहहुं चरित्र बखान।।१।।

सोवत महत मिथ्यात में, चहुं गति शय्या पाय।
वीत्यो काल अनादि तहँ, जग्यो न चेतन राय।।२।।

जबही भवथिति घट गई, काल लब्धि भइ आय।
बीती मिथ्या नींद तहँ, सुरुचि रही ठहराय।।३।।

किये कर्ण प्रथमहि तहां, जाग्यो परम दयाल।
लह्यो शुद्ध सम्यक दरस, तोरि महा अघ जाल।।४।।

देखहिं दृष्टि पसारिकें, निज पर सबको आदि।
यह मेरे सँग कौन हैं, जड़सें लगे अनादि।।५।।

तब सुबुद्धि बोली चतुर, सुन हो! कंत सुजान।
यह तेरे सँग अरि लगे, महासुभट बलवान।।६।।

कहो सुबुद्धि किम जीतिये, ये दुश्मन सब घेर।
ऐसी कला बताव जिमि, कबहुं न आवें फेर।।७।।

कह सुबुद्धि इक सीख सुन, जो तू मानें कंत।
कै तो ध्याय स्वरूप निज, कै भज श्रीभगवंत।।८।।

सुनिके सीख सुबुद्धिकी, चेतन पकरी मौन।
उठी कुबुद्धि रिसायके, इह कुलक्षयनी कौन?।।९।।

मै बेटी हूं मोह की, ब्याही चेतनराय।
कहौ नारि यह कौन है, राखी कहां लुकाय।।१०।।

तब चेतन हँस यों कहै, अब तोसों नहिं नेह।
मन लाग्यो या नारिसों, अति सुबुद्धि गुण गेह।।११।।

तबहिं कुबुद्धि रिसायके, गई पिताके पास।
आज पीय हमें परिहरी, तातें भई उदास।।१२।।

चौपाई (मात्र १५)

तबहिं मोह नृप बोलै बैन। सुन पुत्री शिक्षा इक ऐन।।
तू मन में मत ह्वै दलगीर। बांध मँगावत हों तुमतीर।।१३।।

तब भेजो इक काम कुमार। जो सब दूतनमें सरदार।।
कहो वचन मेरो तुम जाय। क्योंरे अंध अधरमी राय।।१४।।

व्याही तिय छांड़हि क्यों कूर। कहां गयो तेरो बल शूर।।
कै तो पांय परहु तुम आय। कैलरिबे को रहहु सजाय।।१५।।

ऐसे बचन दूत अवधार। आयहु चेतन पास विचार।।
नृपके बैन ऐन सब कहे। सुनके चेतन रिस गह रहे।।१६।।

अब याको हम परसें नाहिं। निजबल राज करें जगमाहिं।
जाय कहो अपने नृप पास। छिनमें करूं तुम्हारो नास।।१७।।

तुम मन में मत करहु गुमान। हम बहु हैं यह एक सुजान।।
कर आवहु असवारी बेग। मैं भी बांधी तुम पर तेग।।१८।।

ऐसे बचन सुनत विकराल। दूत लखै यह कोप्यो काल।।
उन से तो जब ह्वै है रारि। तबलों मोह न डारै मारि।।१९।।

तब मन में यह कियो विचार। अबके जो राखै करतार।।
तो फिर नाम न इनको लेउं। चेतनको पुर सब तज देउं।।२०।।

तब बोले चेतन राजान। जाहु दूत तुम अपने थान।
फिर जिन आवहु इहिपुर माहिं। देखेसों वचिहो पुनि नाहिं।।२१।।

सोरठा

दूत लह्यो प्रस्ताव, मन में तो ऐसी हुती।
भलो वन्यो यह दाव, आयो राजा मोह पै।।२२।।

कही सबै समुझाय, बातें चेतन राय की।
नवहि न तुमको आय, लरिवे की हामी भरै।।२३।।

सुनके राजा मोह, कीन्हीं कटकी[1] जीव पैं।
अहो सुभट सज होय, घेरो जाय गँवार को।।२४।।

सज सज सबही शूर, अपनी अपनी फौज ले।
आये मोह हजूर, अबै महल्ला[2] लीजिये।।२५।।

चौपाई

राग द्वेष दोउ बड़े बजीर। महा सुभट दल थंभन वीर।।
फौज माहिं दोऊँ सरदार। इनके पीछें सब परवार।।२६।।

ज्ञानावरण बोलै यों बैन। मो पे पंच जाति की सैन।।
जिन जग जीव किये सब जेर[3]। राखे भवसागर में घेर।।२७।।

ज्ञान उपरि मेरे सब लोग। ताहींतैं न जगै उपयोग।।
जानें नहीं 'एक अरु दोय'। सो महिमा मेरी सब होय।।२८।।

तब दर्शनावरण यों कहै। जगके जीव अंध ह्वै रहै।।
सो सब है मेरो परशाद। नौ रस वीर करें उनमाद।।२९।।

तवै वेदनी बोलै धीर। मो पैं दोय जातिके वीर।।
महा सुभट जोधा बलसूर। तीर्थंकर के रहें हुजूर।।३०।।

और जीव वपुरे किहि मात। मेरी महिमा जग विख्यात।।
मोको चाहें चहुंगति माहिं। मै छिन सुख द्यों छिन दुख पांहि।।३१।।

---

१. आक्रमण। २. हाजिरी। ३. कैद।

आयु कर्म बोलै बलवंत। सिद्ध बिना सब मेरे जंत[१]।।
मैं राखों तोलौं थिर रहै। नातरु पंथ मौत की गहै।।३२।।

मो पैं चार जातिके सूर। तिनसों युद्ध करै को कूर।।
चहुंगति में मेरे सब दास। मैं त्यागों तब शिवपुरवास।।३३।।

नामकर्म बोलै गहि भार। मो बिन कौन करै संसार।।
मैं करता पुदगल को रूप। तामें आय बसै चिद्रूप।।३४।।

वीर तिरानवे मेरे संग। रूप रसीले अरु बहुरंग।।
इनसों सरभर[२] को जिय करै। तोहु न छाँडै मर अवतरै।।३५।।

गोत्रकर्म लै द्वय असवार। ऊंचनीच जिनको परवार।।
सूर वंशको यहै स्वभाव। छिनमें रंक करै छिन राव।।३६।।

अंतराय अपनों दलसाज। पंच सुभट देखौ महाराज।।
सबके आगें ये असवार। रणमें युद्ध करें निरधार।।३७।।

कर हथियार गहन नहिं देहिं। चेतनकी सुधि सब हर लेहिं।।
ऐसे सुभट एक सौ बीस। तिनके गुणजानें जगदीश।।३८।।

इनके सुभट सात सरदार। परदल गंजन जबर जुझार।।
तबै मोह नृप अति आनंद। देखे सब सुभटनके वृन्द।।३९।।

प्लवंगम छन्द

राग द्वेष द्वय मित्र, लये तव बोलिकै।
तुम ल्यावहु मम फौज, भवनत्रय खोलिकै।।
बीस आठ असवार, बड़े सब सूरमा।
अरिपै यों चल जाहिं, नदी ज्यों पूरमा।।४०।।

---

१. जीव। २. बराबरी।

राग द्वेष तहँ चले, जहां सब सूर हैं।
लाये तुरत वुलाय, प्रभू ये हजूर हैं।।
तब बोले मुख बैन, जीवपर हम चढ़े।
सुनके श्रवनन शब्द, सूरके मन बढ़े।।४१।।

फौजें कीन्हीं चार, बड़े बिसतारसों।
निज सेवक सरदार, किये भुजभारसों।।
पहिली फौजें सात, सुभट आगें चले।
दूजी फौजें चार, चारतें सब भले।।४२।।

दै धोंसा[१] सब चढे, जहां चेतन बसै।
आये पुरके पास, न आगें को धसै।।
चेतनको गढ़ जोर, देख सब थरहरे।
सात सुभट तब निकस, सबन आगें अरे।।४३।।

दोहा

उदय दूत सुधि मोहकी, कही जीवपै जाय।।
कहां रहे तुम बैठके?, फौजें लागी आय।।४४।।

सोरठा

सुनके चेतन राय, चित चमक्यो कीजे कहा।
लीन्हों ज्ञान बुलाय, कहो मित्र कहा कीजिये।।४५।।

तब बोलै यों ज्ञान, इनसों तो लरिये सही।
हरिये इनको मान, अपनी फौजें साजिये।।४६।।

---

१. नगाड़े बजाकर।

चौपाई (१५ मात्रा)

तब चेतन बोले मुख वीर। तुमसे मेरे बड़े वजीर।।
तो मो कहँ चिंता कछु नाहिं। निर्भय राज करूं जगमाहिं।।४७।।

इनपै फौज करहु तय्यार। लेहु संग सब सूर जुझार।।
तबै ज्ञान सब सूर बुलाय। हुकम सुनायो चेतनराय।।४८।।

ह्वै तैयार गहहु हथियार। कर्मनसों अब करनी मार।।
सुनिकर सूर खुशी अतिभये। अंतमुहूरतमें सज गये।।४९।।

लेहु हाजिरी ज्ञान बजीर। कैसे सुभट बने सब वीर।।
तबै ज्ञान देखै सब सैन। कौन कौन सूरा तुम ऐन।।५०।।

प्रथम स्वभाव कहै मैं वीर। मोहि न लागें अरिके तीर।।
और सुनहु मेरी अरदास। छिनमें करूं अरिनको नास।।५१।।

तब सुध्यान बोलै मुख बैन। हुकम तुम्हारे जीतों सैन।।
मो आगें सब अरि नसि जाय। सूर[1] देख जिम तिमर पलाय।।५२।।

पुनि बोलो चारित बलवंत। छिनमें करहुं अरिन को अंत।
अरु विवेक बोलै बलसूर। देखत मोह नसहिं अरिकूर।।५३।।

तब संवेग कहै कर मान। अरि कुल अबहिं करूं घमसान।।
तब उत्तम बोले समभाव। मैं जीते बांके गढ़राव।।५४।।

तौ अरि बपुरे हैं किंह मात। तम सम चूर करों परभात।।
बोलै वच संतोष रसाल। मो आगें वे कहा कँगाल।।५५।।

धीरज कहै मोसन को सूर। पलमें करहुँ अरिन चकचूर।।
सत्य कहै मोमैं बहु जोर। जीतों वैरी कठिन करोर।।५६।।

---

१. सूर्य को।

उपशम कहत अनेक प्रकार। मैं जीते वैरी सरदार।।
दर्शन कहत एकही बेर। जीतों सकल अरिनको घेर।।५७।।

आये दान शील तप भाव। निश्चय विधि जानें जिनराव।।
पार न पावहुँ नाम अपार। इहि विधि सकल सजे सरदार।।५८।।

तबहि ज्ञान चेतनसों कही। फौज तुम्हारी सब बन रही।।
चेतन देखै नयन उघार। यह तौ फौज भई तय्यार।।५९।।

अवहीं मेरे सूर अनंत। ल्यावहु ज्ञान हमारे मंत[1]।।
शक्ति अनंत लसें निज नैन। देखो प्रभू तुम्हारी सैन।।६०।।

अनँत चतुष्टय आदि अपार। सेना भई सबै तयार।।
जुरे सुभट सब अति बलवंत। गिनती करत न आवै अंत।।६१।।

दोहा

कहै ज्ञान चेतन सुनहु, रोप करहु जिन रंच।
एक बात मुहि ऊपजी, कहूं बिना परपंच।।६२।।

कहै जीव कहि ज्ञान तू, कैसी उपजी बात।
तुम तो महा सुबुद्धि हो, कहते क्यों सकुचात?।।६३।।

तबहिं ज्ञान निःशंक ह्वै, बोले प्रभु सन बैन।
चाकर एकहि भेजिये, गहि लावे सब सैन।।६४।।

सोरठा

कहा विचारो मोह, जिहँ ऊपर तुम चढ़त हो।
भेजहु सेवक सोह, जीवित लावै पकरके।।६५।।

कहै चेतन सुनज्ञान, वह घेर्‍यो पुर आयके।
यह कहो कौन सयान, रहिये घरमें बैठके।।६६।।

---

१. मंत्री।

सूरनकी नहिं रीति, अरि आये घरमें रहै।
कै हारें कै जीति, जैसी ह्वै तैसी वनै।।६७।।

कहै ज्ञान सुनि सूर, तुम जो कहो सो सांच है।
कहा विचारो कूर, जिहँ ऊपर तुम चढ़त हौ।।६८।।

पद्धरि छंद (१६ मात्रा)

तब जीव कहै सुनिये सुज्ञान। तुम लायक नाहीं यह सयान।।
वह मिथ्यापुरको है नरेश। जिहँ घेरे अपने सकल देश।।६९।।

जाके सँग सूरा हैं अनेक। अज्ञान भाव सब गहें टेक।।
मंत्रीसुर रागद्वेष हेर। छिनमें सब सेना करहिं जेर।।७०।।

संशय सो गढ़ जाके अटूट। विभ्रम सी खाई जटाजूट।।
विषयासी रानी जासु गेह। सुत जाके सूर कषायसेह।।७१।।

सैनापति चारों है अनंत। जिहँ घेरो अव्रतपुर महंत।।
व्रतनामी लीन्हों देश छीन। परमत्तहिं दोही आय कीन।।७२।।

इहि विधि सब घेरे देश जेह। चढ़ आई फौजें लगी तेह।।
तातें नृप आप अनंत जोर। वल जासुन पारावार ओर।।७३।।

आयुध जाके भ्रम चक्र हाथ। बहु धारा जास उपाधि साथ।।
महा नाग फाँस विद्या अनेक। बँध सत्तर कोड़ा कोड़ि टेक।।७४।।

वाणादिक महा कठोर भाव। जिहिं लगै वचत नहिं रंक राव।।
इहि विधि अनेक हथियार धार। कहुं नाम कहत नहिं लहै पार।।७५।।

यह मोह महा बलवत भूप। तुम ज्ञाता जानत सब स्वरूप।।
कैसें कर इन सों बचौ जाव?। तुम स्यानें ह्वै चूकौ न दाव।।७६।।

सोरठा

तब बोले यों ज्ञान, जिय! तुमने सांची कही।।
पै मेरे अनुमान, तुम क्यों जानो बात यह।।७७।।

कहै जीव सुन मित्र, मैं वीतक अपनो कहूं।।
तू धरि निश्चयचित्त, सुनहु बात विस्तारसों।।७८।।

चौपई

यही मोह नृप मोहि भुलाय। निजपुत्री दीन्ही परनाय।।
ताकी याद मोह कछु नाहिं। काल अनादि याहि विधि जाहिं।।७९।।

मेरी सुधि वुधि सब हर लई। मोहि न सुरत रंच कहुं भई।।
इहि कीन्हो जैसो नट कीस। विविध स्वांग नाच्यौ निशिदीस।।८०।।

चौरासी लख नाम धराय। कबहु स्वर्ग नरक लै जाय।
कबहू करै मनुष तिरजंच। लखेन जाहिं याके परपंच।।८१।।

जडपुर को मुह कियो नेरश। मैं जानो सब मेरो देश।।
तब मैं पाप किये इहि संग। मानि मानि अपने रस रंग।।८२।।

तब मैं वसौ मोहके गेह। तातैं सब विधि जानों येह।।
कहो कहां लों बहु विस्तार। थोरेमैं लख लेहु विचार।।८३।।

सोरठा

तब बोलै इम ज्ञान, यह परमारथ मैं लह्यौ।
अब तुम सुनहु सुजान, एक हमारी बीनती।।८४।।

सेवक भेजो एक, जो अतिही बलवंत हो।
तब रहै तुम्हरी टेक, मेरे मन ऐसी बसी।।८५।।

कहै जीव सुन ज्ञान, बिना बिचारे क्यों कहौ।
मोह महा बलवान, ताकी पटतर कौन है?।।८६।।

चौपई

कहै ज्ञान सुन जीव नरेश। तुम सम और न कोउ राजेस।।
सुख समाधि पुर देश विशाल। अभय नाम गढ़ अतिहि रसाल।।८७।।

तामें सदा बसहु तुम नाथ। निशि दिन राज करौ हित साथ।।
सुमति आदि पटरानी सात। सुबुधि क्षमा करुणा विख्यात।।८८।।

निर्जर दोय धारणा एक। सात आदि अरु सखी अनेक।।
बांधव जहां धरमसे धीर। अध्यातम से सुत वरवीर।।८९।।

मित्र शांति रस बसै सुपास। निजगुण महल सदा सुख वास।।
ऐसे राज करहु तुम ईश। सुख अनंत विलसहु जगदीश।।९०।।

तुम पै सूर सैनको जोर। तिनको पार नहीं कहुं ओर।।
तुम अपनें पुर थिर ह्वै रहौ। वचन हमारो सत सरदहौ।।९१।।

आज्ञा करहु एक जन कोय। सज सेना वह आगैं होय।।
कहै जीव तुम सुनहु सुज्ञान। तुम्हरे वचन हमें परवान।।९२।।

हम आज्ञा यह तुमको करी। लेहु महूरत अति शुभ घरी।।
चढहु कर्म पै सज हथियार। सूर बडे सब तुम्हरी लार।।९३।।

हमतुममें कछु अन्तर नाहिं। तुम हममें हम हैं तुम माहिं।।
जैसे सूर तेज दुति धरै। तेज सकल सूरज दुति करै।।९४।।

इहि विधि हम तुम परमसनेह। कहत न लहिये गुणको छेह।
ज्ञान कहै प्रभु सुन इक बैन। शिक्षा मोहि दीजियो ऐन।।९५।।

तुम तो सब विधि हौ गुन भरे। पै अरि सों कबहूं नहिं लरे।।
तातें तुम रहियो हुशियार। युद्ध बड़े अरिसों निरधार।।९६।।

केशरी छंद (१६ मात्रा)

ज्ञान कहै विनती सुन स्वामी। तुम तौ सबके अंतर जामी।।
कहा भयो न करी मैं रारी। अब देखो मेरी तरवारी।।९७।।

वे सब दुष्ट महा अपराधी। किहँ विधि सैन जाय सब साधी।।
मेरे मन अचरज यह ज्ञाना। पै मैं जानों तुम बलवाना।।९८।।

दोहा

ज्ञान कहै चेतन सुनो, तुमसे मेरे नाथ।
कहा विचारो क्रूर वह, गहि डारों इक हाथ।।९९।।

तब चेतन ऐसें कहै, जीत तुम्हारी होय।
मारि भगावों मोहको, रागद्वेष अरि दोय।।१०।।

करिखा छंद

ज्ञान गंभीर दलवीर संग ले चढ्यो, एक तें एक सब सरस सूरा। कोट अरु संखिन न पार कोऊ गने, ज्ञानके भेद दल सबल पूरा।।१०१।। [1]सिपहसालार सरदार भयो भेद नृप, अरि न दलचूर यह विरद लीनो। हाथ हथियार गुणधार विस्तार वहु, पहिर दृढभाव यह सिलह कीनो।।१०२।। चढत सब वीर मन धीर असवार ह्वै, देख अरिदलनको मान भंजै। पेख जयवंत जिनचंद सवही कहै, आज पर दलनिको सही गंजै।।१०३।। अतिहि आनंदभर वीर उमगंत सब, आज हम भिड़नको दाव पायो।। युद्ध ऐसो विकट देख अरि थर हरें, होय हम नाम दिन दिन सवायो।।१०४।।

मरहठा छंद

वज्जहिं रण तूरे, दल बहु पूरे; चेतन गुण गावंत।
सूरा तन जग्गो, कोऊ न भग्गो, अरिदलपै धावंत।।

---

१. फौजी अफसर।

ऐसे सब सूरे, ज्ञान अँकूरे, आये सन्मुख जेह।।
आपावल मंडे, अरिदल खंडे, पुरुषत्वनके गेह।।१०५।।

दोहा

नाम विवेक सु दूतको, लीन्हों ज्ञान बुलाय।
जाय कहहु वा मोहको, भलो चहै तो जाय।।१०६।।

जो कबहूँ टेढ़ो वकै, तो तुम दीज्यो सोंस[१]।
धिक धिक तेरे जनमको, जो कछु राखै होंस।।१०७।।

तेरो वल जेतो चलै, तेतो कर तू जोर।
वे चाकर सब जीवके, छिनमें करि हैं भोर[२]।।१०८।।

ज्ञान भलाई जानकें, मैं पठयो तोहि पास।
चेतनको पुर छांडदे, जो जीवन की आस।।१०९।।

सोरठा

चल्यो विवेक कुमार, आयो राजा मोह पै।
कह्यो वचन विस्तार, भलो चहै तो भाजिये।।११०।।

सुनके वचन हुताश, कोप्यो मोह महा बली।
छिनमें करिहों नाश, मो आगें तुम हो कहा?।।१११।।

दोहा

एकहि ज्ञानावर्णिने, तुम सब कीने जेर।
इतनी लाज न आवही, मुखहिं दिखावहु फेर।।११२।।

काल अनंतहिं कित रहे, सो तुम करहु विचार।
अब तुम में कूवत भई, लरिवेको तय्यार।।११३।।

---

१. कसम। २. नष्ट।

चौरासी लख स्वांगमें, को नाचत हो नाच।
वा दिन पौरुष कित गयो, मोहि कहो तुम सांच।।११४।।

इतने दिनलों पालिकें, मैं तुम कीने पुष्ट।
तातें लरिवेको भये, गुण लोपी महा दुष्ट।।११५।।

जाहु जाहु पापी सबै, चेतनके गुण जेह।
मोको मुख न दिखावहू, छिनमें करिहों खेह।।११६।।

मोहवचन ऐसे स्रये, सुनिके चल्यो विवेक।
आयो राजा ज्ञान पै, कही बात सब एक।।११७।।

वह क्योंही भाजै नहीं, गहि बैठ्यो यह टेक।
लरिहों फोजें जोरिके, बोलै दूत विवेक।।११८।।

दूत वचन सुनिकें हँसो, ज्ञान वली उर माहिं।
देखो थित पूरी भई, क्योंहू मानें नाहिं।।११९।।

लेहु सुभट! तुम वेगही, अव्रतपुर[१] अभिराम।
रह्यो क्रूर वर घेरिकें, मेंटहु वाको नाम।।१२०।।

चढ़ी सैन सब ज्ञानकी, सूर वीर बलवन्त।
आगे सेनानी[२] भयो, महा विवेक महंत।।१२१।।

करिखा छंद

आय सन्मुख भये मोहकी फोजसों, भिड़नके मतै सब सूर गाढ़े। देख तब मोह अति कोह[३], मनमें कियो, सुभट हलकारि रहे आप ठाढे।।१२२।। सूर बलवंत मदमत्त[४] महा मोहके, निकसि सब सैन आगे जु आये।। मारि घमसान महा जुद्ध बहु रुद्ध करि, एक तैं एक सातों सवाये।।१२३।।

---

१. चौथा गुणस्थन। २. सेनापति। ३. क्रोध। ४. मदोन्मत्त।

वीर सुविवेकने धनुष ले ध्यानका, मारिकें सुभट सातों[१] गिराये[२]।
कुमक जो ज्ञानकी सैन सब संग धसी, मोहके सुभट मूर्छा समाये।।१२४।।

देख तब युद्ध यह मोह भाग्यो तहां, आय अव्रतहिं[३] सब सूर जोरे।
बांधकर मोरचे बहुरि सन्मुखभयो, लरनकी होंसतें करै निहोरे।।१२५।।

चौपाई १५ मात्रा

इसविधि मोह जोरि सब सैन। देशव्रत[४] पुर बैठो ऐन।।
करै उपाय अनेक प्रकार। किहिविधि ल्यों अव्रतपुर सार।।१२६।।

सुभट सात तिनको दुखकरै[५]। तिन विन आज निकसि को लरै।।
जो होते वे सूर प्रधान। तो लेते अव्रतपुर थान।।१२७।।

ऐसे वचन मोह नृप कहे। रागद्वेष तव अति उर दहे।।
हा हा! प्रभु ऐसें क्यों कहो। एक हमारी शिक्षा लहो।।१२८।।

सुभट तुम्हारे हैं बहु बीर। तिनमें जानहु साहस धीर।।
तिनको आज्ञा प्रभुजी देहु। इहविधि अव्रतपुर तुम लेहु।।१२९।।

तबै मोहनृप बीड़ा धरै। कौन सुभट आगे ह्वै लरै।।
तब बोले। अप्रत्याख्यान। मैं जीतूं अबके दलज्ञान।।१३०।।

कहै मोहनृप किंहिविधि वीर। मोहि बतावहु साहस धीर।।
बोले अप्रत्याख्यान प्रकास। सुनहु प्रभू मेरी अरदास।।१३१।।

मैं अव्रतपुरमें छिप जाउं। चेतन ज्ञान वसै जिह ठाउं।।
संग लेय अपने सब[६] लोग। नानाविधि परकासों भोग।।१३२।।

---

१. मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व और अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ ये ७ प्रकृतियाँ। २. उपशमित किया। ३. चौथे गुणस्थान में। ४. पंचमगुणस्थान में। ५. चिंता। ६. अप्रत्याख्यानावर्णी क्रोध मान माया लोभ।

उनके[१] उपसम वेदकभाव। क्षयउपसम वसुभेद लखाव।।
इनकैथिरताबहुकछुनाहिं। छिनसम्यक छिन मिथ्यामाहिं।।१३३।।

क्षायक एक महा जे जोर। पहिले प्रगटै ना उहि ओर।।
तोलों देखहु मैं क्या करों। व्रत के भाव[२] सर्वथा हरों।।१३४।।

अव्रतमें उपशम हट जाय। जिहँकर पापपुण्य मन लाय।।
जब वह मगन होय इहि संग। जीत लेहु तबही सरवंग।।१३५।।

इहिविधि जीतों परदल जाय। जो मोहि आज्ञा दीजे राय।।
तवै मोहनृप चिंतै सही। यह तौ बात भली इन कही।।१३६।।

सिद्धि करहु अप्रत्याख्यान। लेहु सूर सँग जे बलवान।।
इहिविधिआओ पुरके[३] माहिं। ज्ञानीविन जानै कोउ नाहिं।।१३७।।

निजविद्या परकाशै सही। नानाविध क्रोधादिक लही।।
ताके भेद अनेक अपार। कौलों कहिये बहु विस्तार।।१३८।।

दोहा

इहिविधि सब ही सैन ले, आयो अप्रत्याख्यान।
अव्रतपुरमें पैठिके, करै व्रतनिकी हान।।१३९।।

ताके पीछें मोहनृप, आयो सब दल जोरि।
महासुभट सँग सूर लै, चढ्यो सुमूंछ मरोरि।।१४०।।

कुमन जसूस[४] बुलायकें, मोह कहै यह बात।
तुम सुधि लावहु वेगही, कहां सुभट वे सात।।१४१।।

कुमन खबर पहिले दई, वे मूर्छित[५] उन पास।
कछु विद्या कीजे यहां, ज्यों वे लहैं प्रकास।।१४२।।

---

१. चेतन के, २. श्रावक के व्रत। ३. पांचवें गुणस्थान में। ४. गुप्तदूत। ५. उपशमरूप।

मोह करै विद्या विविध, रागद्वेष लै संग।
उनमें कछु चेतन भये, कछु रहे मूर्छित अंग।।१४३।।

सुमन दूत सब ज्ञानपैं, कही मोहकी बात।
कहाँ रहे तुम बैठि वह, सुभट जिवावत सात।।१४४।।

जो वे सात जिये कहूं, तौ तुम सुनहो बात।
चेतनके सब सुभट को, करि है पलमें घात।।१४५।।

मोह जु फौजें जोरिके, आयो कर अभिमान।
तुमहू अपने नाथको, खबरि पठावहु ज्ञान।।१४६।।

तबै ज्ञान निजनाथपै, भेज्यो सम्यक वेग।
कहो बधाई जीतकी, अरु पुनि यह उद्वेग।।१४७।।

बहुरि मिले वे दुष्ट सब, आये पुरके माहिं।
लरिवेकी मनसा करैं, भागनकी बुधि नाहिं।।१४८।।

इहिविधि सम्यकभाव सब, कही जीवपै जाय।
सुनिकें प्रबलप्रचंड अति, चढ्यो सुचेतनराय।।१४९।।

महा सुभट बलवंत अति, चढ्यो कटक दल जोर।
गुण अनंत सब संग ह्वै, कर्म दहनकी ओर।।१५०।।

आय मिले सब ज्ञानसे, कीन्हों एक विचार।
अवकें युध ऐसो करहु, बहुरि न बचै गँवार।।१५१।।

चढे सुभट सब युद्धको, सूरवीर बलवंत।
आये अंतर भूमि महिं, चेतन दल सुअनंत।।१५२।।

सोरठा

रोपि महारण थंभ, चेतन धर्म सुध्यानको।
देखत लगहि अचंभ, मनहिं मोहकी फौजको।।१५३।।

दोहा

दोऊ दल सन्मुख भये, मच्यो महा संग्राम।
इत चेतन योधा वली, उतै मोह नृप नाम।।१५४।।

करखा छंद

मोहकी फौजसों नाल गोले चलें, आय चैतन्यके दलहि लागें।।
आठ मल दोष[१] सम्यक्त्व के जे कहे, तेहि अव्रत्तमें मोह दागें।।१५५।।

जीवकी फौजसों प्रबल गोले चलें, मोहके दलनिको आय मारें।।
अंतर[२] विरागके भाव बहु भावता, ताहि प्रतिभास ऐसो विचारें।।१५६।।

बहुरि पुनि जोर कर अतिहि घन घोरकर, मोहनृपचंद्र बातें चलावै।।
दोष षट आय तन अतिहि उपजाय घन, जीवकी फौज सन्मुख बगावै।।

हंसकी फौजतें वान घमसानके, गाजते बाजते चले गाढे।।
मोहकी फौजको मारि हलकारकरि[३], हेयोपादेयके भाव काढे।।१५८।।

अष्टमद गजनिके हलकै हंकारि दै, मोहके सुभट सब धसत सूरे।।
एकतें एक जोधा महा भिड़त हैं, अतिहि बलवंत मदमंत पूरे।।१५९।।

जीवकी फौजमें सत्य परतीतके, गजनिके पुंज बहु धसत माते।।
मारिके मोहकी फौजको पलकमें, करत घमसान मदमत्त आते।।१६०।।

मार गाढी मचै, सुभट कोउ ना बचे, घाव बिन खाये, दुहुं दलनमाहीं।।
एक तें एकयोधा दूहूं दलनमें, कहते कछू ऊपमावनत नाहीं।।१६१।।

सात जे सुभट मूर्छित पढ़ते भये, मोहने मंत्रकरि सब जिवाये।।
आय इहिं जुद्धमहिं तिनहुको रुद्ध करि, जीवको जीत पीछें हटाये।।१६२।।

मिश्र[४] सासदनहिं[५] परसमिथ्यातमहि[६], उमगिकैबहुरि अव्रत[७]हिं आयो।।
मारि घमसान अवसान खोये त्वरित, सातमें एक ढूंढ्यो न पायो।।१६३।।

---

१. शंकादि। २. आंतरिक वैराग्य। ३. ललकारकर। ४. तीसरे गुणस्थान में। ५. दूसरे सासादनगुणस्थान में। ६. पहिले मिथ्यात्वगुणस्थान को भी स्पर्श करके। ७. चौथे गुणस्थान में।

सोरठा

इहविधि चेतन राय, युद्ध करत है मोहसों।
और सुनहु अधिकाय, अबहिं परस्पर भिड़त हैं।।१६४।।

मरहठा छंद

रणसिंगे वज्जहिं, कोऊन भज्जहिं, करहिं महादोउ जुद्ध।।
इत जीव हंकारहिं, निजपरवारहिं, करहु अरिनको रुद्ध।।
उत मोह चलावे, तब दल धावे, चेतन पकरो आज।
इहविध दोऊ दल, में कल नहि पल, करहिं अनेक इलाज।।१६५।।

चौपाई १५ मात्रा

मोह सराग भावके वान। मारहिं खैंच जीवको तान।।
जीव वीतरागहिं निजध्याय। मारहिं धनुषबाण इहि न्याय।।१६६।।

तबहिं मोहनृप खड्ग प्रहार। मारै पाप पुण्य दुइ धार।।
हंस शुद्ध वेदै निज रूप। यही खरग मारें अरि भूप।।१६७।।

मोह चक्र ले आरत ध्यान। मारहि चेतनको पहिचान।।
जीव सुध्यान[१] धर्मकी ओट। आप बचाय करै परचोट।।१६८।।

मोह रुद्र बरछी[२] गहि लेय। चेतन सन्मुख घाव जु देय।।
हंस दयालुभावकी ढाल। निजहिं बचाय करहि परकाल।।१६९।।

मोह अविवेक गहै जमदाढि। घाव करै चेतन पर काढि।।
चेतन ले यमधर सुविवेक। मारि हरै वैरिनकी टेक।।१७०।।

चेतन क्षायक चक्र प्रधान। बैरिन मारि करहि घमसान।।
अप्रत्याख्यान मूरछित भये। मोह मारि पीछें हट गये।।१७१।।

---

१. धर्मध्यान। २. रौद्रध्यान की वरछी।

जीत्यो चेतन भयो अनंद। बाजहिं शुभ बाजे सुखकंद।।
आयमिले अव्रतके भोग। दर्शनप्रतिमा आदि संयोग।।१७२।।

व्रतप्रतिज्ञा दूजो भाव। तीजो मिल्यो सामायिक राव।।
प्रोषधव्रत चौथो बलवंत। त्यागसचित व्रत पंच महंत।।१७३।।

षष्टम ब्रह्मचर्य दिन राय। सप्तम निशदिन शील कहाय।।
अष्टम पापारंभ निवार। नवमों दशपरिगह परिहार।।१७४।।

किंचित ग्राही परम प्रधान। महासुबुधि गुणरत्न निधान।।
दशमों पापरहित उपदेश। एकादशम भवनतजवेश।।१७५।।

प्राशुक लेय अहार सुजैन। कहिये उदंड विहारी ऐन।।
ये एकादश भूप अनूप। आय मिले श्रावकके रूप।।१७६।।

चैतन सबसों करै जुहार। परम धरम धन धारन हार।।
निज बल हंस करहिं आनंद। परम दयाल महा सुखकंद।।१७७।।

दोहा

इहि विधि चेतन जीतकें, आयो व्रतपुरमाहिं[1]।
आज्ञा श्रीजिनदेवकी, नेकु विराधै नाहिं।।१७८।।

जिहँ जिहँ थानक काजके, कीन्हें सब विधि आय।
अव भावै वैराग्यतहँ, सुनहु 'भविक' मन लाय।।१७९।।

ढाल–पंचमहाव्रत मन धरो सुनि प्रानीरे, छांडि
गृहस्थावास आज सुनि प्रानीरे।।टेक।।

तैं मिथ्यात्त्वदशा विषै सुन प्रानीरे, कीन्हें पाप अनेक आज, सुनि प्रानीरे।। भव अनंत जे तैं किये सुनि प्रानीरे, रागद्वेष पर संग,

---

१. पांचवें गुणस्थान में।

आज सुनि प्रानीरे।।१८०।। ज्ञान नेकु तोको नही सुनि० तब कीने बहु पाप, आज सुनि प्रानीरे।। ते दुख तोको देय हैं सुनि० जो चूको अब दाव, आज सुनि प्रानीरे।।१८१।। तैं अव्रतमें जे किये सुनि० व्रत्त बिना बहु पाप, आज सुनि प्रानीरे।। देश विरतमें पांच जे सुनि० थावरहिंसा लागि आज सुनि प्रानीरे।।१८२।। किये कर्मतैं अतिघने सुनि० क्यों भुगते विनजाय, आज सुन प्रानीरे।। मोह महाहितु[1] तैं कियो, सुनि० वह तोको दुख देय आज सुनि प्रानीरे।।१८३।। जिहँ जिय मोह निवारियो सुनि० तिहँ पायो आनंद, आज सुनि प्रा०।। मनवच काया योगसों सुनि० तैं कीने बहु कर्म, आज सुनि प्रानीरे।।१८४।। वे भुगते विन क्यों मिटैं सुनि० जे बांधे तें आप, आज सुनि प्रानीरे।। जो तू संयम आदरै सुनि० करै तपस्या घोर, आज सुनि प्रानीरे।।१८५।। तौ सबकर्म खपायकें सुनि० पावे परम अनंद आज सुनि प्राणीरे।। पूरव बांधे कर्म जो सुनि० सब छिनमें खप जांहिं, आज सुनि प्रानीरे।।१८६।। इहिविधि भावन भावतै सुनि० आयो अति वैराग, आज सुनि प्रा०।। जिय चाहै संयम गहों सुनि० अबै कोन विधि होय, आज सुनि प्रानीरे।।१८७।।

दोहा

जिय चाहै संयम[2] गहों, मोह लेन नहिं देय।
बैठ्यो आगें रोकिकें, अब प्रमत्तपुर[3] जेय।।१८८।।

सुभट जु प्रत्याख्यान को, करिकें आगें बान।
बैठ्यो घाटी रोकिकें, मोह महा अज्ञान।।१८९।।

केतक चाकर जोर जे, भेजे व्रतहिं छिपाय।
ते चेतनके दलनमें, निशदिन रहैं लुकाय।।१९०।।

---

१. मित्र। २. मुनिव्रत। ३। छट्ठे गुणस्थान में।

कबहूं परगट होंय कछु, कबहू वे छिप जाहिं।
इहविधि सेना मोहकी, रहै सुइहि दल माहिं।।।१९१।।

चौपाई

मोह सकल दलसों पुरद्वार। आय अस्यो संग ले परवार।।
चेतन देश विरतपुर[1] मांहि। आगें पांव धरे कहुं नाहिं।।१९२।।

मोह किये परपंच अनेक। गहिवेको गहि बैठ्यो टेक।।
जो चेतन आवै पुर[2] मांहि। तौ राखों गहिकें निज पांहिं।।१९३।।

बहुर न निकसन छिन इक देहुं। डारि मिथ्यात्व वैर निज लेहुं।।
यह चेतन मोसों युध करै। जो आवै अबके कर तरैं।।१९४।।

तौ फिर याको ऐसे करों। सुधि बुधि शक्ति सबहि परिहरों।।
इहविधि मोह दगाकी बात। रचना करहि अनेक विख्यात।।१९५।।

सुमन खबर सब जियको दई। एक बात सुन हो! प्रभु नई।।
मोह रचै फंदा बहु जाल। तुम जिन भूलहु दीन दयाल।।१९६।।

अबके जो पकरैगो तोहि। तौ फिर दोष न दीजो मोहि।।
मैं सब खबर नाथ तुम दई। जैसी कछू हकीकत भई।।१९७।।

तबै हंस इहपुरको[3] पंथ। चल्यो उलंघि महा निर्ग्रंथ।।
अप्रमत्तपुरकी[4] लइ राह। जिहँ मारग पंथी बहु साह।।१९८।।

रोके आय जु प्रत्याख्यान[5]। जुद्ध करे बिन देहुं न जान।।
चेतन कहै जाहु शठ दूर। छिनमें मारि करूं चकचूर।।१९९।।

तबहिं जोर नाना विधिकरै। चेतन सन्मुख ह्वैकें लरै।।
चेतन ध्यानधनुष कर लेय। मूर्छित[6] कर आगें पग देय।।२००।।

---

१. पांचवें गुणस्थान में। २. छट्ठे गुणस्थान में। ३. छट्ठे गुणस्थान को छोड़कर। ४. सातवें गुणस्थान की राह पकड़ी। ५. प्रत्याख्यानावरणी क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषायें। ६. उपसमरूप करकैं।

गिस्र्यो[१] जु प्रत्याख्यान कुमार। चेतन पहुँच्यो सप्तम द्वार[२]।।
मोह कहै देखहु रे जोर। यह तो किये जातु है भोर।।२०१।।
पकरहु सुभट दौरि इह जाहिं। ल्यावहु पकरि बेग मोहि पांहि।।
चल्यो धर्मराग बलवीर। विकथा वचन दूसरो धीर।।२०२।।
निद्रा विषय कषायसुपंच। पकरि हंस ले आये घंच[३]।।
चेतन देखै यह कहा भई। मोहि पकरि ले आये दई।।२०३।।
यह परमत्त देश है सही। मोकों सुमन अगाउ कही।।
अब कछु ऐसो कीजे काज। जासों होय अप्रमत्त राज।।२०४।।
अट्ठाईस मूलगुण धरै। बारह भेद तपस्या करै।।
सहै परीसह बीसरु दोय। उभय दया पालै मुनि सोय।।२०५।।
इहिविधि लहे अप्रमत आय। तबै मोह निज दास पठाय।।
पकरि भगावै करि बहु मान। तबै हंस चिंतै निज ज्ञान।।२०६।।
यह तौ मोह करै बहु जोर। मोको रहन न दे उहि ओर।।
अब याको मैं भिष्टित करों। अप्रमत्तमें तब पग धरों।।२०७।।
तबहि हंस थिरता अभ्यास। कीन्हीं ध्यान अगनिपरकाश।।
जारीं शक्ति मोह की कई। महा जोरतैं निर्बल भई।।२०८।।
हंस लयो निजबल परकास। कीन्हों अप्रमत्त पुर वास।।
सुभट तीन[४] मोहके दरे[५]। अरु परमाद सबै अप हरे।।२०९।।
तज्यो अहार विहार विलास। प्रथम करण कीनो अभ्यास।।
सप्तम पुरके अंत अनूप। करै कर्ण चारित्र स्वरूप।।२१०।।
आवै संग मोह दल लेय। पै कछु जोर चलै नहिं जेय।।
अब जिय अष्टम पुर पग धरै। मोह जु संग गुप्त अनुसरै।।२११।।

---

१. प्रत्याख्यानावरणी उपशम हो गया। २. सातवें गुणस्थान में। ३. गला। ४. नरक तिर्यंच और देव आयु को। ५. उपसमित किये।

करहि करण चेतन इह ठांव। दूजो कह्यो अपूरव नाव।।
जे कबहूँ न भये परिणाम। ते इहि प्रगटे अष्टम ठाम।।२१२।।

अब चेतन नवमें पुर[१] आय। जामें थिरता बहुत कहाय।।
पूरव भाव चलहि जे कहीं। ते इह थानक हालै नहीं।।२१३।।

इहिविधि करण तीसरो करै। तबै मोह मन चिंता धरै।।
यह तो जीते सब पुर जाय। मेरो जोर कछू न बसाय।।२१४।।

दोहा

मोह सेन सब जोरिकें, कीन्हों एक विचार।
परगट भये बैन नहीं, यह मारै निरधार।।२१५।।

तातैं सुभट लुकाय तुम, रहो पुरनके मांहि।
जो कहुँ आवै दावमें, तो तुम तजियो नाहिं।।२१६।।

हम हू शकति छिपायकें, रहैं दूरलों जाय।
जो जीवत वचि हैं कहूं, तौ तुम मिलि हैं आय।।२१७।।

नगर ग्राम उपशांत पुर, तहां लों मेरो जोर।
जो ऐहै मो दावमें, तो मैं करिहों भोर।।२१८।।

तुम हू सब जन दौरिकें, आय मिलहुगे धाय।
तब या हंसहिं पकरिकै, देहैं भली सजाय।।२१९।।

इह विचार सब सैनसों, कीन्हों मोह नरेश।
रहे गुप्त दबि दबि सबै, कर कर उपसम भेश।।२२०।।

चौपाई।

चेतन चर चलाय चहुं ओर। पकरहिं मूढ मोहके चोर।।
जन छत्तीस गहे ततकाल। मूर्छित करके चले दयाल।।२२१।।

---

१. अनिवृत्त करन नाम के नवमें गुणस्थान में।

सूक्षम सांपरायके[१] देश। आय कियो चेतन परवेश।।
तिहँ थानक इक लोभ कुमार। जीत कियो मूर्छित तिहँ बार।।२२२।।

आगे पांव निशंकित धरै। अब वैरी मोसों को लरै।।
मैं जीते सब कर्म कठोर। इहि विधि धस्यो निशंकित जोर।।२२३।।

जब उपशांत मोहके देश। हद्द माहिं कीन्हो परवेश।।
तबै मोह जोर निज किया। चेतन पकरि उलटि इत दिया।।२२४।।

आये सुभट मोहके दौर। मूर्छित छिपे रहे जिहँ ठौर।।
पकरि हंस मिथ्यापुर माहिं। ल्याये क्रूर सबहि गहि बाँह।।२२५।।

इहां न कछु निहचै यह बात। उत्कृष्टे कहिये विख्यात।।
औरहु थानक है बहु जहां। चेतन आय बसत है तहां।।२२६।।

उपशम समकित जाको होय। मिथ्यापुर लों आवे सोय।।
क्षायक सम्यकवंत कदाच। उपसम श्रेणि चढै जो राच।।२२७।।

तौ वह चौथे पुरलों आय। गिरकर रहै इहां ठहराय।।
औरों थानक उपसम गहै। दोऊ सम्यकवंत जु रहै।।२२८।।

अब मिथ्या पुरमें दुख देय। मोह वली चेतनको जेय।।
नाना विध संकट अज्ञान। सहै परीषह यह गुणवान।।२२९।।

पंच मिथ्यात्व भेद विस्तार। कहत न सुरगुरु पावे पार।।
सादि मिथ्यात्व नाश जिय लहै। ताके उदै कौन दुख सहै।।२३०।।

सो दुख जानहिं चेतनराम। कै जाने केवल गुणधाम।।
कहत न लहिये पारावार। दुख समुद्र अति अगम अपार।।२३१।।

इहि विधि सहै करमकी मार। अब चेतन निज करै सम्हार।।
द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव। पंचहु मिले वन्यो सब दाव।।२३२।।

---

१. सूक्ष्मसाम्पराय दशवां गुणस्थान।

दोहा

ध्यान सुथिरता राखि के, मनसों कहै विचार।।
संगति इनकी त्यागिके, अब तू थिर हो यार।।२३३।।

ढाल– चेत मन भाईरे।। एदेशी–

माया मिथ्या अग्र शौच, मन भाईरे, तीनों सल्य निवार, चेत मन भाईरे।।
क्रोधमान माया तजो, मन० लोभ सबै परित्याग, चेत मन भाईरे।।२३४।।

झूंठी यह सब संपदा, मन० झूठो सब परिवार, चेत मन भाईरे।।
झूंठी काया कारिमी[1], मन० झूठो इनसों नेह, चेत मन भाईरे।।२३५।।

यह छिनमें उपजै मिटै, मन० तू अविनाशी ब्रह्म, चेत मन भाईरे।।
काल अनंतहि दुख दियो, मन० इसही मोह अज्ञान, चेतमन भाईरे।।२३६।।

जो तोको सुमरण कहूँ, मन० आवे रंचकमात्र, चेत मन भाईरे।।
तो कबहूँ संसारमें, मन० तू न विषयसुख सेव, चेत मन भाईरे।।३८।।

को कहै कथा निगोदकी, मन० ताके दुखको पार, चेतमनभाईरे।।
काल अनंत तो तें लहे, मन० दुःख अनंती बार, चेतमनभाईरे।।३९।।

देव आयु पुनि तैं धर्‍यो, मन० तामें दुःख अनेक, चेतमनभाईरे।।
लाभ महासुख है जहां, मन० प्रगट विरह दुख होय, चेतमनभाईरे।।४०।।

दुःख महा बहु मानसी मन० देखे अन्य विभूति, चेतमनभाईरे।।
तिर्यक् गति में तू फिर्‍यो मन० संकट लहे अनेक, चेतमनभाईरे।।४१।।

अविवेकी कारज किये, मन० बांधे पाप अनेक, चेतमनभाईरे।।
नरदेही पाई कहूं, मन० सेये पंच मिथ्यात, चेतमनभाईरे।।४२।।

कहुं कारज को तो सर्‍यो, मन० जनम गमायो व्यर्थ, चेतमनभा०
भ्रमत भ्रमत संसारमें मन०कबहुँ न पायो सुक्ख, चेतनमन भा०।।४३।।

---

१. कर्म से जो उत्पन्न होय। २. विचारी। ''

अबके जो तोको भई, मन० कछु आतम परतीत, चेतमनभा०।
धारि लेहु निजसंपदा, मन०दर्शन ज्ञान चरित्र, चेतमनभाई रे।।२४४।।

और सकल भ्रमजाल है, मन० तत्त्व इहै निज काज, चेतमनभा०।
सुखअनंत यामें बसे, मन०निज आतम अवधार, चेतमनभा०।।२४५।।

सिद्ध समान सुछंद है, मन० निश्चै दृष्टि निहारि, चेतमनभा०।।
इहिविधि आतम संपदा, मन०लहि करि आतमकाज चेतमनभा०।।२४६।।

दोहा

इहि विधि भाव सुभाव तें, पायो परमानंद।
सम्यक दरश सुहावनो, लह्यो सु आतमचंद।।२४७।।

क्षायक भाव भये प्रगट, महा सुभट बलवंत।
कीन्हों जिहँ छिन एकमें, सुभट सातको[1] अंत[2]।।२४८।।

मोह तबै निर्बल भयो, अबके कछु विपरीत।
मेरे सुभट भये शिथल, लागहिं उनकी जीत।।२४९।।

चेतन ध्यान कमान ले, मारे क्षायक वान।
मोह मूढ छिपतो फिरै, ज्ञान करै घमसान।।२५०।।

देश विरत पुर में चढ्यो, चेतन दल परचंड।
आज्ञा श्रीजिनदेवकी, पालै सदा अखंड।।२५१।।

सोरठा

मोह भयो बलहीन, छिप्यो छिप्यो जित तित रहै।
चेतन महा प्रवीन, सावधान ह्वै चलत है।।२५२।।

---

१. दर्शन मोह की प्रकृति और अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ।
२. क्षय।

अप्रमत्तपुरमाहिं[१], चेतन आयो बिधिसहित।।
तहां न जोर बसाहिं, मोह मान भिष्टित भयो।।२५३।।

चेतन करि तहँ ध्यान, सुभट तीन[२] औरहि हरे।
पुनि चारित्र प्रमान, करन[३] किये सप्तम पुरहि।।२५४।।

दोहा

तजी अहार विहारविधि, आसन दृढ़ ठहराय।
छिन छिन सुख थिरता बढै, यों बोलै जिनराय।।२५५।।

अबहिं अपूरब[४] करनमें, आयो चेतनराय।
कियो करन[५] दूजो जहाँ, थिरता ह्वै अधिकाय।।२५६।।

नवमें[६] पुरमें आयकें, तृतिय करन करि लेय।
हरिके सुभट छतीस[७] तहँ, आगेंकों पग देय।।२५७।।

आयो दशमें पुरविषै, चेतन महा सचेत।
सुभट एक[८] इतहू हर्‍यो, तबै ज्ञान सुधि देत।।२५८।।

सावधान ह्वै नाथजी, रहियो तुम इह ठौर।
इहां मोहको जोर है, तुम जिन जानहु और।।२५९।।

पहिले हानि जो तुम लही, सो थानक इह आहि।
तातैं मैं विनती करों, प्रभू भूल जिन जाहि।।२६०।।

तब चेतन कहै ज्ञान सुनि, अब यह पंथ न लेहिं।
चलहिं उलंघि उतावले, आगे धोंसा देहिं।।२६१।।

---

१. सातवें गुणस्थान में। २. नरक, तिर्यंच देव आयु। ३. अध:प्रवर्तकरण प्रारंभ किया। ४. आठवें गुणस्थान में। ५. दूजा अपूर्वकरन प्रारंभ किया। ६. नवमें अनिव्रतकरननामक गुणस्थान में तीसरा करन प्रारंभ किया। ७. दर्शनावरणी की २ मोहिनी की ४ नामकर्म की ३० इस प्रकार छत्तीस प्रकृतियाँ। ८. सूक्ष्म लोभ।

कहे बहुत संक्षेपसों, इहविधि ये गुणथान।
पूरब बरनन विधि सबैं, समझि लेहु गुणवान।।२६२।।

जो फिरकें बरनन करैं, ह्वै पुनरुक्ति प्रदोष।
तातैं थोरेमें कह्यो, महा गुणनिके कोष।।२६३।।

पद्धरिछंद

जहँ चेतन करि सब करम छीन। उपशांत[१] मोहपुर उलँघि लीन।।
आयो द्वादशमहि[२] महमहंत। सब मोह कर्म छय करिय अंत।।२६४।।

जहँ यथाख्यात[३] प्रगट्यो अनूप। सुखमय सब वेदै निजस्वरूप।।
जहँ अवधि ज्ञान पूरन प्रकास। केवल पुनि आयो निकट भास।।२६५।।

सो छीनमोह[४] पुर प्रगट नाम। तिहि थानक विलसैं निजसुधाम।।
अब अंतराय कहुँ करिय अंत। षोडश[५] सब प्रकृति खपाय तंत।।२६६।।

जहँ घातिया चारों कर्म नाश। सब लोकालोक प्रत्यक्ष भास।।
प्रगट्यो प्रभु केवल अतिप्रकाश। जहँ गुण अनंत कीन्हों निवास।।२६७।।

प्रगटी निज संपति सब प्रतच्छ। विनशी कुलकर्म अज्ञान अच्छ।
प्रगट्यो जहँ ज्ञान अनंत ऐन। प्रगट्यो पुनि दरश अनंत नैन।।२६८।।

प्रगट्यो तहँ वीर्य अनंत जोरि। प्रगट्यो सुख शक्ति अनंत फोरि।।
तहँ दोष अठारह गये भाज। प्रभु लागे करन त्रिलोकराज।।२६९।।

सब इन्द्र आय सेवहिं त्रिकाल। प्रभु जय जय जय जीवनदयाल।।
तहँ करत अष्टप्रतिहार्य देव। विधि भावसहित नितभविक सेव।।२७०।।

प्रभु देत महा उपदेश ऐन। जिहँ सुनत लहत भवि परम चैन।।
जहँ जनम जरा दुख नाश होय। प्रभु विद्यादेश बताय सोय।।२७१।।

---

१. ग्यारहवाँ गुणस्थान। २. क्षीणमोह बारहवें गुणस्थान में। ३. यथाख्यात–चारित्र। ४. बारहवाँ गुणस्थान। ५. ज्ञानावर्ण की ५, दर्शनवर्णी की ४, यशकीर्ति १, ऊंच गोत्र १, व अंतराय ५ – इस प्रकार १६ प्रकृति।

इहविधि सयोगपुर[1] राज योग। प्रभु करत अनंत विलास भोग।।
तोउ करम चार नहिं तजहिं संग। लगरहे पूर्व तिथिबंध अंग।।२७२।।

प्रभु शुक्लध्यानआरूढ होय। अँतरीक्ष विराजहिं गगन सोय।।
तहँ आसन दृढ ठहराय एक। पद्मासन कायोत्सर्ग टेक।।२७३।।

प्रभु डग नहिं भरहिं कदाच भूम। तऊ कर्म करत है कौन धूम।।
लिये लिये फिरत तिहुँ लोकमाहिं। जिहँ थानक पूरब बंध आहिं।।२७४।।

कहुँ राखहिं थिर कहुँ लै चलंत। कहुँ बानि खिरै कहुँ मौनवंत।।
कहुँ समवशरण कहुँ कुटी होय। कहूँ चौदहराजु प्रमान लोय।।२७५।।

इहविधि ये कर्म करंत जोर। नहिं जान देत शिववधू ओर।।
एतेपै निर्बल कहे बखान। मनु जरी जेवरीकी समान।।२७६।।

तोउ समय समय में आय आय। चेतन परदेशन थित बधाय।।
यह एक समयमें करत त्याग। थिर होन देत नहिं दुतिय लाग।।२७७।।

तऊ सुभट पचासी लगि रहंत। निजनिजथानक निजबल करंत।।
चेतन परदेश न घात होय। तातैं जगपूज्य जिनेश होय।।२७८।।

दोहा

चेतन राय सयोगपुर, इहविध विलसहि राज।
अब चहुँ कर्मन हरनको, ठानहि एक इलाज।।२७९।।

श्री सयोगपुर देशमें, चेतन करि परवेश।
लाग्यो हरण सुकर्मको, तजिके जोगकलेश।।२८०।।

तब सुवेदनी कर्मने, दीनों रस निज आय।
दुहुमें एक भई प्रगट, जानहिं श्रीजिनराय।।२८१।।

---

१. तेरहवें गुणस्थान में।

हंस पयानो जगततैं, कीनो लघुथितिमांहि।
हरिके चारहिं कर्मको, सूधे शिवपुर जाहिं।।२८२।।

तहँ अनंत सुख शास्वते, विलसहिं चेतनराय।
निराकार निर्मल भयो, त्रिभुवन मुकुट कहाय।।२८३।।

चौपाई

अविचल धाम बसे शिव भूप। अष्टगुणातम सिद्ध स्वरूप।।
चरमदेह परमित परदेश। किंचित ऊनो थित विनभेश।।२८४।।

पुरुषाकार निरंजन नाम। काल अनंतहि ध्रुव विश्राम।।
भव कदाच न कबहू होय। सुख अनंत विलसै नित सोय।।२८५।।

लोकालोक प्रगट सब वेद। षट द्रव्य गुण पर्याय सुभेद।।
ज्ञेयाकार सकल प्रतिभास। सहजहिं स्वच्छ ज्ञानजिहँ पास।।२८६।।

षट्गुणी हानि वृद्धि परनमैं। चेतन शुद्ध स्वभावहि रमैं।।
उत्पत व्यय ध्रुव लक्षण जास। इहविधि थिते सबै शिवरास।।२८७।।

जगत जीत जिहि विरुद प्रमान। पायो शिवगढ रतननिधान।।
गुण अनंत कहिये कत नाम। इहविध तिष्ठहि आतमराम।।२८८।।

जिनप्रतिमा जगमें जहँ होय। सिद्ध निसानी देखहु सोय।।
सिद्ध समान निहारहु आप। जातैं मिटहि सकल संताप।।२८९।।

निश्चय दृष्टि देख घटमांहि। सिद्ध रु तोमहिं अंतर नाहिं।।
ये सब कर्म होंय जड़ अंग। तू 'भैया' चेतन सर्वंग।।२९०।।

ज्ञान दरश चारित भंडार। तू शिवनायक तू शिवसार।।
तू सब कर्मजीत शिव होय। तेरी महिमा वरनें कोय।।२९१।।

दोहा

गुण अनंत या हंसके, किंहविधि कहैं बखान।।
थोरेमें कछु बरनये, 'भविक' लेहु पहिचान।।२९२।।

यह जिनवानी उदधिसम, कविमति अंजुलि मात्र।।
तेती ही कछु संग्रही, जेतो हो निज पात्र।।२९३।।

जिनवानी जिहँ जिय लखी, आनी निजघटमाहिं।।
तिहँ प्रानी शिवसुख लह्यो, यामें धोखो नाहिं।।२९४।।

चेतन अरु यह कर्मको, कह्यो चरित्र प्रकाश।।
सुनत परम सुख पाइये, कहै भगवतीदास।।२९५।।

सत्रहसौ छत्तीसकी, जेष्ठ सप्तमी आदि।।
श्रीगुरुवार सुहावनो, रचना कही अनादि।।२९६।।

इति चेतनकर्मचरित्र समाप्त:।

अथ अक्षरबत्तीसिका लिख्यते।

दोहा

गुण अपार ओंकारके, पार न पावै कोय।।
सो सब अक्षर आदि ध्रुव, नमैं ताहि सिधि होय।।१।।

चौपाई

कक्का कहै करन[1] वश कीजे। कनक कामिनी दृष्टि न दीजे।।
करिके ध्यान निरंजन[2] गहिये। केवल पद इहविधिसों लहिये।।२।।

खक्खा कहै खबर सुनि जीवा। खबरदार ह्वै रहो सदीवा।।
खोटे फंद रचे अरिजाला। छिन इक जिनभूलहु वहख्याला।।३।।

---

१. इन्द्रियों को। २. कर्मरहित आत्मस्वरूप को।

गग्गा कहै ज्ञान अरु ध्याना। गहिकें थिर हूजे भगवाना।।
गुण अनंत प्रगटहिं ततकाला। गरिके जाहिं मिथ्यातम जाला।।४।।

घग्घा कहै स्वघर पहिचानों। घने दिवस भये फिरत अजानों।।
घर अपने आवो गुणवंता। घने कर्मको ज्यों ह्वै अंता।।५।।

नन्ना कहै नैनसों लखिये। नयनिहचै व्यवहार परखिये।।
निजके गुण निजमें गहि लीजे। निरविकल्प आतमरस पीजे।।६।।

चच्चा कहै चरचि गुण गहिये। चिन्मूरति शिवसम उर लहिये।।
चंचल मन थिर करधरि ध्याना। सीखसुगुरुसुन चेतन स्याना।।७।।

छच्छा कहै छांडि जगजाला। छहों काय जीवनप्रतिपाला।।
छांड़ अज्ञान भावको संगा। छकि अपने गुण लखि सर्वंगा।।८।।

चौपाई १५ मात्रा

जज्जा कहै मिथ्यामति जीत। जैंनधरमकी गहु परतीत।।
जिहिसों जीव लगै निजकाज। जगत उलंघि होय शिवराज।।९।।

झज्झा कहे झूंठ पर वीर!। झूंटे चेतन साहस धीर।।
झूठो है यह करम शरीर। झालि रे मृगतृष्णानीर।।१०।।

नन्ना कहै निरंजन नैन। निश्चै शुद्ध विराजत ऐन।।
निज तजकें परमें नहिं जाय। निरावरण वेदहु जिनराय।।११।।

टट्टा कहै टेव निज गहो। टिककें थिरअनुभव पद लहो।।
टिकन न दीजे अरिके भाव। टुकटुक सुखको यही उपाव।।१२।।

चौपाई १६ मात्रा

ठठ्ठा कहै आठ ठग पाये। ठगत ठगत अबकैं कर आये।।
ठगको त्याग जलांजलि दीजे। ठाकुर ह्वैकें तव सुखलीजे[1]।।१३।।

---

१. जीजे ऐसा भी पाठ है।

डड्डा कहै डंक विप जैसो। डसै भुजंग मोहविष तैसो।।
डास्यो विष गुरु मंत्र सुनायो। डर सब त्याग मान समुझायो।।१४।।

ढड्ढा कहै ढील नहिं कीजे। ढूंढ ढूंढ़ चेतन गुण लीजे।।
ढिग तेरे है ज्ञान अनंता। ढकै मिथ्यात्व ताहि करि अंता।।१५।।

दोहा

नन्ना अक्षर जे लखो, तेई अक्षर नैन।
जे अक्षर देखै नहीं, तेई नैन अनैन।।१६।।

चौपाई १५ मात्रा

तत्ता कहै तत्त्व निज काज। ताको गहे होय शिवराज।।
ताको अनुभौ कीजे हंस। तावेदतह्वै तिमिर विध्वंस।।१७।।

थत्था कहै इन्द्रिनको भूप। थंभन मन कीजे चिद्रूप।।
थाकहिं सकल कर्मके संग। थिरतासुख तहँ होय अभंग।।१८।।

दद्दा कहै परगुणको दान। दीने थिरता लहो निधान।।
दया वहै सुदया जहँ होय। दया शिरोमणि कहिये सोय।।१९।।

धद्धा कहै धरमको ध्यान। धरि चेतन! चेतनगुण ज्ञान।।
धवल परमपद प्रापति होय। ध्रुवज्यों अटलटलै नहि सोय।।२०।।

नन्ना नव तत्त्वनसों भिन्न। नितप्रति रहै ज्ञानके चिन्न।।
निशदिन ताके गुण अवधारि। निर्मल होय करम अघटारि।।२१।।

पप्पा कहै परमपद इष्ट। परख गहो चेतन निज दिष्ट।।
प्रतिभासहि सब लोकालोक। पूरण होय सकल सुख थोक।।२२।।

फफ्फा कहै फिरहु कित हंस। फिर फिर मिलै न नरभव वंस।।
फंद सकल अरिके चकचूरि। फोरि शकति निज आनंद पूरि।।२३।।

बव्वा कहै ब्रह्म सुनि बीर। वर विचित्र तुम परम गँभीर।।
बोध बीज लहिये अभिराम। विधिसों कीजे आतमकाम।।२४।।

भब्भा कहै भरमके संग। भूलि रहे चेतन सर्वंग।।
भाव अज्ञाननको कर दूर। भेदज्ञानतें परदल चूर।।२५।।

मम्मा कहै मोहकी चाल। मेटि सकल यह परजंजाल।।
मानहु सदा जिनेश्वरबैन। मीठे मनहु सुधातें ऐन।।२६।।

जज्जा कहै जैनवृष गहो। ज्यों चेतन पंचमि गति लहो।।
जानहु सकल आप परभेद। जिहँजानें ह्वै कर्म निखेद।।२७।।

रर्रा कहै राम सुनि बैन। रमि अपने गुन तज परसैन।।
रिद्ध सिद्ध प्रगटहि ततकाल। रतन तीन लख होहु निहाल।।२८।।

लल्ला कहै लखहु निजरूप। लोकअग्र सम ब्रह्मस्वरूप।।
लीन होहु वह पद अवधारि। लोभकरन परतीत निवारि।।२९।।

सोरठा

बब्बा बोले बैन, सुनो सुनोरे निपुण नर।
कहा करत भव सैन, ऐसो नरभव पाय के।।३०।।

दोहा

शश्शा शिक्षा देत है, सुन हो चेतन राम।
सकल परिग्रह त्यागिये, सारो आतम काम।।३१।।

खक्खा खोटी देह यह, खिणक माहि खिर जाय।
खरी सुआतम संपदा, खिरै न थिर दरसाय।।३२।।

सस्सा सजि अपने दलहि, शिवपथ करहु विहार।
होय सकल सुख सास्वते, सत्यमेव निरधार।।३३।।

हहा कहै हित सीख यह, हंस बन्यों है दाव।
हरिलै छिनमें कर्मको, होय बैठि शिवराव।।३४।।

क्षक्षा क्षायकपंथ[१] चढ़ि, क्षय कीजे सब कर्म।
क्षण इकमें बसिये तहां, क्षेत्र सिद्धि सुख धर्म।।३५।।

यह अक्षर बत्तीसिका, रची भगवती दास।
बाल ख्याल कीनो कछू, लहि आतमपरकाश।।३६।।

इति अक्षर बत्तीसिका

अथ श्रीजिनपूजाष्टकं लिख्यते।

दोहा

जल चंदन अरु सुमन लै, अक्षत शुचि नैवेद।
दीप धूप फल अर्घ विधि, जिनपूजा वसुभेद।।१।।

जलपूजा – कवित्त

नीर क्षीरसागरको निर्मल पवित्र अति, सुंदर सुवास भर्‍योसुरपैं अनाइये। गंगकी तरंगनके स्वच्छ सुमनोज्ञ जल, कंचन कलश वेग भरकें भगाइये।। और हू विशुद्ध अंबु आनिये उछाहसेती, जानिये विवेक जिन चरन चढाइये। भौदुख समुद्रजल अंजुलिको दीजे इहां, तीन लोक नाथकी हजूर ठहराइये।।२।।

चंदन पूजा

परम सुशीतल सुवास भरपूर भर्‍यो, अतिही पवित्र सब दूषन दहतु है। महावनराजनके वृक्षन सुगंध करै, संगतिके गुण यह विरद वहतु है।। वावन जुचंदन सुपावन करन जग, चढै जिनचर्ण गुण

१. क्षपकश्रेणी मांड।

ताहीतें लहतु है। मोह दुखदाहके निवारिवेको महा हिम, चंदनतैं पूजौं जिन चित्त यों कहतु है।।३।।

अक्षतपूजा

शशिकीसी किर्ण कैधों रूपाचलवर्ण कैधों, मेरुतट किर्ण कैधों फटिकप्रमाने हैं।। दूधकेसे फैन कैंधो चित्तामणि रेणु कैंधों, मुक्ताफल ऐन कैंधों, हीरा हेरि आने हैं।। ऐसे अति उज्ज्वल है तंदुल पवित्र पुंज, पूजत जिनेश पाद पातक पराने हैं। अच्छै गुण प्रापति प्रकाश तेज पुंज होय, अच्छै दिन देखे अच्छ इच्छते अघाने हैं।।४।।

पुष्पपूजा

जगत के जीव जिन्हें जीतके गुमानी भयो, ऐसो कामदेव एक जोधा जो कहायो है। ताके शर जानियत फलनिके वृंद बहु, केतकी कमल कुंद केवरा सुहायो है।। मालती सुगंध चारु बेलिकी अनेक जाति, चंपक गुलाब जिनचरण चढ़ायो है। तेरी ही शरण जिन जोर न बसाय याको, सुमनसों पूजे तोहि मोहि ऐसो भायो है।।५।।

नैवेद्यपूजा

परम पुनीत जान मेवनके पुंज आन, तिन्हें पुनि पहिचान जिनयोग्य जानिये। अन्न ओ विशुद्ध तोय ताको पकवान होय, कहिये नैवेद्य सोई शुद्ध देख आनिये।। पूजत जिनेन्द्रपाय पातक-पराने जाय, मोक्षलच्छि ठहराय सत्य यों बखानिये। क्षुधाको न दोष होय ज्ञानतनपोष होय, परम संतोष होय ऐसी विधि ठानिये।।६।।

दीपकपूजा

दीपक अनाये चहुं गतिमै न आवे कहूं, वर्तिका बनाये कर्मवर्ति न बनत है। घृतकी सनिग्धतासों मोहकी सनिग्ध जाय, ज्योतिके

जगाये जगाजोतिमें सनत है।। आरती उतारतें आरत सब जाय टर, पांय ढिग धरे पाप पंकति हनत है। वीतराग देव जूकी सेव कीजे दीपकसों, दीपत प्रताप शिवगामी यों भनत है।।७।।

धूपपूजा

परम पवित्र हेम आनिये अधिक प्रेम, जाति धूपदान जिमि शुद्ध निपजाइकैं। वह्नि जे विशुद्ध बनी तेज पुंज महाघनी, मानो धरी रत्न कनी ऐसी छवि पाइकैं।। तामें कृष्णागरुकी जुकनिकाहू खेव कीजे, वहै कर्मकाठनिके पुंजगहि ताइकैं। पूजिये जिनेन्द्र पांय धूपके विधान सेती, तीनलोकमाहिं जो सुवास वास छायकैं।।८।।

फलपूजा

श्रीफल सुपारी सेव दाड़िम बदाम नेव, सीताफल संगतरा शुद्धसदा फल है। विही नासपाती ओ विजोरा आम अस्रत से, नारँगी जँभीरी कर्ण फल जे कमल है।। ऐसे फल शुद्ध आनि पूजिये जिनंद जान, तिहूँ लोकमधि महा सुकृतको थल है। फल सेती पूजे शुद्ध मोक्षफल प्राप्ति होय, द्रव्य भाव सेये सुखसंपति अचल है।।९।।

अर्घविधिपूजा

जल सुविशुद्ध आन चंदन पवित्र जान, सुमन सुगंध ठान अक्षर अनूप है। निरखि नैवेद्यके विशेष भेद जान सबै, दीपक सँवारि शुद्ध और गंध धूप है।। फल ले विशेष भाय पूजिये जिनंद पाय, बसु भेद ठहराय अरथ स्वरूप है। कमल कलंक पंक हरिके भयो अटंक, सेवक जिनंद 'भैया' होत शिव भूप है।।१०।।

दोहा

शुचि करकें निज अंगको, पूजहु श्रीजिन पाय।
दर्वित भावतविधि सहित, करहु भक्ति मन लाय।।११।।

जिन पूजाके भेद बहु, यहविधि अष्टप्रकार।
प्रतिपूजा जल धारसों, दीजे अर्घ सुधार।।१२।।

इति श्रीजिनपूजाष्टकं

अथ फुटकर कविता मात्रिक कवित्त

प्रथम अशोक फूलकी वर्षा, वानी खिरहि परम सुखकार।
चामर छत्र सिंहासन शोभित, भामंडलद्युति दिपै अपार।।
दुदुंभि नाद बजत आकाशहिं, तीन भवनमें महिमा सार।
समवशरण जिन देव सेवको, ये उतकृष्ट अष्टप्रतिहार।।१३।।

सवैया सुन्दरी

काहेको देशदिशांतर धावत, काहे रिझावत इंद नरिंद।
काहेको देवि औ देव मनावत, काहेको शीस नवावत चंद।।
काहेको सूरजसों कर जोरत, काहे निहोरत मूढमुनिंद[१]।
काहेको शोच करै दिनरैन तूं, सेवत क्यों नहि पार्श्वजिनंद।।१४।।

वीतराग की स्तुति छप्पय

देव एक जिनचंद नाव, त्रिभुवन जस जंपै।
देव एक जिनचंद, दरश जिहँ पातक कंपै।।
देव एक जिनचंद, सर्व जीवन सुखदायक।
देव एक जिनचंद, प्रगट कहिये शिवनायक।।
देव एक त्रिभुवन मुकुट, तास चरण नित वंदिये।।
गुण अनंत प्रगटहि तुरत, रिद्धिवृद्धि चिरनंदिये।।१५।।

---

१. पाखंडी तपस्वी।

कवित्त

आतमा अनूपम है दीसै राग द्वेष बिना, देखो भविजीवो! तुम आपमें निहारकें। कर्मको न अंश कोऊ भर्मको न वंश कोऊ, जाकी शुद्धताईमें न और आप टारकें।। जैसो शिवखेत बसै तैसो ब्रह्म यहां लसै, यहां वहां फेर नाहीं देखिये। विचारकें। जोई गुण सिद्धमाहिं सोई गुण ब्रह्ममांहि, सिद्धब्रह्म फेर नाहिं निश्चैनिरधारकें।।१६।।

प्रश्नोत्तरदोहा

कोन ज्ञान विन आवरन, कौन देव विनराग।
कौन साधु निर्ग्रन्थ है, कौन व्रती जिहँ त्याग।।१७।।

एकाक्षरी दोहा

नाना नानी नानमें, नानी नानी नान।
नन नानी नन नाननैं, नन नैनानन नान।।१८।।

द्व्यक्षरी दोहा

मानन मानों मानमें, मान मान मै मान।
मनु ना मानै मानमें, मान मानुमें मान।।१९।।

त्र्यक्षरी दोहा

चेतन चेतो चेतना, तो चेते चित चैन।
तातें चेतन चेत तू, चेतनता नित नैन।।२०।।

चतुरक्षरी दोहा

अध्यातममें आतमा, मम अध्यातम धाम।
आतम अध्यातम मतै, ध् मम आतम ताम।।२१।।

अथ वर्त्तमानचतुर्विंशति जिनस्तुति लिख्यते।

श्रीआदिनाथजिनस्तुति – छप्पय

आदिनाथ अरहंत, नाभिराजा कुलमंडन।
नगर अयोध्या जनम, सर्व मिथ्यामति खंडन।।
केवल दर्शन शुद्ध, वृषभ लक्षन तन सोहै।
धनुष पांच सौ देह, इन्द्र शतके मन मोहै।।
मरुदेवि मात नंदन सुजिन, तिहूंलोक तारनतरन।
मनभाव धारि इक चित्तसों, भव्यजीव वंदत चरन।।१।।

श्रीअजितजिनस्तुति – मात्रिक कवित्त

जितशत्रूसुत विजयानंदन, गजलच्छन तेरै अभिराम।
अष्ट महामद सब जिनजीते, नगरअजोध्या तज धन धाम।।
केवल ज्ञान किये नर केते, पंचमि गति पहुंचे शुभ ठाम।
ऐसे अजित नाथ तीर्थंकर, तिनको नित कीजे परनाम।।२।।

श्रीसंभवजिनस्तुति – मात्रिक कवित्त

संभवनाथ सकल सुखदायक, सावस्ती नगरी अवतार।
राय जथारथ सेना जननी, केवल दर्शन रूप अपार।।
हय लच्छनतनस्वामी शोभत, अरि सब जीत तरे निरधार।
भव्यजीव परणाम करत है, हे प्रभु भवदधिपार उतार।।३।।

श्रीअभिनंदनजिनस्तुति

अभिनंदन चंदनसों पूजों, समरस राजाकुल अवतार।
नगर अजोध्या जन्म लियो जिन, कपि लच्छन जगमें विस्तार
सिद्धारथ माता कुलमंडन, पापविहंडन परम उदार।
तातैं जगत जीव नित वंदत, भवसागर प्रभु पार उतार।।४।।

श्रीसुमतिजिनस्तुति

सुमति नाथ सुमरे सुखसंपत, दुख दरिद्र दूर सबजाय।
नगरसुकोशल जन्म लियो जिन, पिता मेघ अरु मंगला माय।।
बल अनंत भगवंत विराजै, लच्छन कोक नित सेवै पाय।
मनवचभाव नित्य भवि वंदै, श्रीजिन चर्णन शीस नवाय।।५।।

श्रीपद्मप्रभजिनस्तुति

पदमप्रभ धरराजानंदन, मात सुसीमा जगतजगीस।
कोसंवी नगरी जिन जन्मे, इन्द्रादिक प्रणमहि निशदीस।।
लच्छन कमल विराजै प्रभुकै, शोभत तहँ अतिशय चौतीस।
चरणकमल प्रभुके नित वंदै, भव्यत्रिकाल नाथ निज शीस।।६।।

श्रीसुपार्श्वजिनस्तुति

श्री सुपास जिन आश जु पूरै, सेवहु नित भविजन चरनं।
पयठ्ठराजा सीव[१] सुलच्छन, पोहमिकुश प्रभु अवतरनं।।
केवल वयन देशना देते, भविजनमन अमृत झरनं।
नगर बनारसि नित जन वंदै, भव्य जीव सब तुम शरनं।।७।।

श्रीचन्द्रप्रभजिनस्तुति

चन्द्रप्रभ चंदेरी उपजे, मंगला मात पिता महसेन[२]।
शशिलच्छन सेवै चरनादिक, समकित शुद्धदेत तिहँ ऐन।।
लोकालोक प्रगट घट अंतर, वानि खिरै अमृत मुख जैन।
ताके चरण भव्य नितवंदित, अविचलरिद्ध देत प्रभु चैन।।८।।

श्रीसुविधिजिनस्तुति

सेवहु सुविधि नाथ तीर्थंकर, जसु सुमरे सुखसपंति होय।
काकंदी नगरी जिन उपजे, मगर लंछ प्रभुके तन जोय।।

---

१. सेही। २. 'जितसेन' ऐसा भी पाठ है।

रामा मात जगत सब जाने, अरिकुल व्याप सकै नहिं कोय।
अवनीपति सुग्रीव कहावत, ताके सुत वंदत तिहुं लोय।।९।।

श्रीशीतलनाथजिनस्तुति – कवित्त

कंचन वरन तन रंचन डिगत मन, तिहुंलोक नाथ जिन इन्द्रमुख भासई। नंदाजूकी कूख धन दृढरथ राजा तन, अष्टकुल मदहन, ज्ञानको प्रकाशई।। लच्छन श्रीवृच्छपाव शीतल श्रीनाथ नाव, भद्दल जिनंद गांव रवि ज्यों उजासई। देशना सुदेह सार होंहि तहाँ जैजैकार, भव्यलोक पावे पार मिथ्याको विनाशई।।१०।।

श्रीश्रेयांसजिनस्तुति – मात्रिक कवित्त

श्रीपुर नगर जगत सब जानै, विघ्नराय विसनाके नंद।
समवशरनमधि जिनवर शोभत, मोहत है नृपके कुलवृंद।।
लच्छन खग सेवै चरणादिक, तीर्थंकर श्रेयांस जिनंद।
तिनके चरणन चित्तलायकें, वंदत हैं नित इंदनरिंद।।११।।

श्रीवासुपूज्यजिनस्तुति

श्रीवासुपूज्य चंपा नगरी पति, महिपी लंछ मही सब जानै।
वासुपूज राजाकुल मंडन, जायासुत सब जगत बखानै।।
सुरपति आय सीस नित नावे, प्रभुसेवा निजमनमें आनै।
सम्यकदृष्टि नितप्रति सेवहिं, जिनके वचन अखंडित मानै।।१२।।

श्रीविमलजिनस्तुति – छप्पय

विमलनाथ इकदेव, सिद्धसम आप विराजै।
त्रिभुवनमाहिं जिनंद, जासु धुनि अंबरगाजै।।
कंपिलपुर जिन जन्म, शुक्र लंछन महि मानै।
सुरपति सेवहिं पांय, जगत्त्रयमाझ बखानै।।

कृतवर्म भूप स्यामाजननि, केवलज्ञान दिवाकरन।
तस चरन कमल वंदत 'भविक' जयजिनवर तारनतरन।।१३।।

श्रीअनन्तजिनस्तुति – मात्रिक कवित्त

अनंत नाथ सीचाना लंछन, सुजसा मात कहै सब कोय।
पिता जास श्रीसैन नरेश्वर, नगर अजोध्या जन्में सोय।।
गुण अनंत बलरूप विराजै, सिद्धभये अरिके कुल खोय।
भावसहित भविप्रानी वंदत, हे प्रभु शिवपद हमको होय।।१४।।

श्रीधर्मजिनस्तुति

लच्छन वज्र रतनपुर उपजे, धर्मनाथ तीर्थंकर धीर।
भानुमहीपतिके कुलमंडन, सुवृता मात बडे बलवीर।।
समवशरनमें देशना देते, प्रभुधुनि जिम सागर गंभीर।
चरन सदा भवि प्रानी वंदत, जैजै जिनवर चरमशरीर।।१५।।

श्रीशान्तिजिनस्तुति – सिंहावलोकन छप्पय

जिनवर ताराचंद चंदतारा नित वंदै।
वंदै सुरनर कोटि कोटि, सुरवृंद अनंदै।।
आनँद मगन जु आप, आप हस्तिनपुर आये।
आये शांति जिनदेव, देव सबही सुख पाये।।
पाये सुमात ऐरारतन, तन कंचन विश्वसेन गिन।
गिन सु कोष गुनको वन्यो, वन्यो सुतारन तरन जिन।।१६।।

श्रीकुंथुजिनस्तुति – मात्रिक कवित्त

पदमासन भगवंत विराजहिं, केवल वयन देशना देहिं।
गजपुर नगर सूरसिंह भूपति, ताके नंद अभयपद देहिं।।
कुंथुनाथ तीर्थंकर जगमें, सब प्रानिनको आनंद देहिं।
जस श्रीवत्सक लंछन सो है, भव्य त्रिकालहि वंदन देहिं।।१७।।

श्रीअर:जिनस्तुति

नंद्यावर्त्त सुलच्छन सोहै, सुरपति सेव करै नित आय।
संघ चतुर्विध देशना सुनते, वैरभाव नहिं रहै सुभाय।।
अर्जुनमात मही सब जानै, पिता जासु हैदक्षिण राय।
श्रीअरनाथ नगर गजपुरवर, वंदें भवय जिनेश्वर पाय।।१८।।

श्रीमल्लिजिनस्तुति

मल्लिनाथ मिथुलानगरीपति, अद्भुत रूप जिनेन्द्र विराजै।
कुंभराय परभावति जननी, लच्छन कलश चरण सो छाजै।।
सुरपति आय शीश नित नावें, कंचन कमल धरें प्रभु काजै।
समोशरण गह गहै जिनेसुर, वानी सुन मिथ्यातम भाजै।।१९।।

श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तुति – सिंहावलोकन छप्पय

मुनिसुव्रत जिन नाव, नाव त्रिभुवन जस जंपै।
जंपै सुरनर जाप, जाप जपि पाप जु कंपै।।
कंपै अरिकुल रीति, रीति जिन नीति प्रकासै।
परकाशै घट सुमति, सुमति राजग्रह वासै।।
वासै जिनवर सिद्ध चित, चितवन कूरम चरण तन।
तन पदमावति पूजजिन, जिनसेवक वंदै सुमुनि।।२०।।।

श्रीनमिजिनस्तुति – मात्रिक कवित्त

नम्बनाथ नीलोत्पललच्छन, मिथुलानाव नगर परसिद्ध।
विजय राय परभावति जननी, सुमिरे पावै अविचलरिद्ध।।
केवल ज्ञान जिनेश्वर वंदत, होत सदा समकितकी वृद्धि।
भावसहित जो जिनको पूजै, तिन घर होय सदा नवनिद्धि।।२१।।

श्रीनेमिजिनस्तुति – कवित्त

नेमिनाथ नाथ नेमि काहूसों न राखै प्रेम, मनवच सदा एम रहै

दशा जोगकी। समुद्रके सुत धीर सिंधुज्यों गंभीर वीर, संख रहै चर्ण तीर लिप्सा नाहीं भोगकी।। सौरिपुर शिवामाय जग जिननाथ राय नीलरत्न जासु काय, लखै बात लोगकी। अनंत बलधारी है सो सदा ब्रह्मचारी है, ऐसे जिन वंदत रहै न दशा रोगकी।।२२।।

श्रीपार्श्वनाथजिनस्तुति – छप्पय

अमृत जिनमुख झरै, द्वार सुरदुंदुभि बाजै।
सेवहिं सुरनर इंद्र, नाग फन शीश विराजै।।
नगर वनारसि नाम, तात अससेन कहिज्जे।
वामा मात विख्यात, जगत जिन पूजा किज्जे।।
सुअनंत ज्ञान बल रूपधर, आप जगत तर सिद्धहुव।
वंदै सुभव्य नर लोकके, जय जय पास जिनंद तुव।।२३।।

श्रीवीरजिनस्तुति

जिनवर श्रीमहावीर, इन्द्र सेवा नित सारहिं।
सुरनर किन्नर देव तेहु, मिथ्या मत टारहिं।।
क्षत्रिय कुल जिन जन्म, राय सिद्धारथ नंदन।
त्रिशला उर अवतार, सिंह पद पाप निकंदन।।
विधिचार संघ सुन देशना, केवल वचन विशाल अति।
जिनप्रभु वंदत सम भावधर, जय जय दीनदयाल मति।।२४।।

दोहा

जिन चौबीसी जगतमें, कलपवृक्षसम मान।
जे नर पढ़ैं विवेकसों, ते पावहिं शिवथान।।२५।।

इति चतुर्विंशतिजिनस्तुतिः।

अथ विदेहक्षेत्रस्थ वर्तमानजिनविंशतिका

श्रीसीमंधरजिनस्तुति – छप्पय

सीमंधर जिनदेव नगर पुंडरिगिर सोहै।
वंदहि सुरनर इन्द्र, देखि त्रिभुवन मन मोहै।।
वृष लच्छन प्रभु चरन सरन, सबहीको राखहिं।
तरहु तरहु संसार सत्य, सत यहै जु भाखहिं।।
श्रेयांस रायकुल उद्धरन, वर्त्तमान जगदीश जिन।
समभावसहित भविजननमहिं, चरण चारु संदेह बिन।।१।।

श्रीयुगमंधरजिनस्तुति – कवित्त

केवल कलप वृच्छ पूरत है मन इच्छ, प्रतच्छ जिनंद जुगमंधर जुहारिये। दुंदुभि सुद्वार बाजै, सुनत मिथ्यात्व भाजै, विराजै जगमें जिनकीरति निहारिये।। तिहुंलोक ध्यान धरै नामलिये पा-पहरै, करै सुर किन्नर तिहारी मनुहारिये। भूपति सुदृढराय विजया सु तेरी माय, पाय गज लच्छन जिनेशके निहारिये।।२।।

श्रीबाहुजिनस्तुति – सवैया-द्रुमिला

प्रभु बाहु सुग्रीव नरेश पिता, विजया जननी जगमें जिनकी।
मृगचिह्न विराजत जासुधुजा, नगरी है सुसीमा भली जिनकी।।
शुभकेवल ज्ञान प्रकाश जिनेश्वर, जानतु है सबही जिनकी।
गनधार कहै भवि जीव सुनो, तिहुं लोकमें कीरति है जिनकी।।३।।

श्रीसुबाहुजिनस्तुति – सवैया

श्रीस्वामि सुबाहु भवोदधि तारन, पार उतारन निस्तारं।
नगर अजोध्या जन्म लियो, जगमें जिन कीरति विस्तारं।।
निशढिल पिता सुनंदा जननी, मरकटलच्छन तिस तारं।
सुरनरकिन्नर देव विद्याधर, करहि वंदना शशि तारं।।४।।

श्रीसुजातिजिनस्तुति – कवित्त

अलिका जु नाम पावै इन्द्रकी पुरी कहावे, पुंडरगिरि सरभर नावे जो विख्यात है। सहसकिरनधार तेजतैं दिपै अपार, धुजापै विराजै अंधकारहू रिझात है।। देवसेन राजासुत जाकी छवि अदभुत, देवसेना मातु जाकै हरष न मात है। श्रीसुजाति स्वामीको प्रणाम, नित्य भव्य करैं जाके नामलिये कुल पातक विलात है।।५।।

श्रीस्वयंप्रभुजिनस्तुति – सवैया (मात्रिक)

श्रीस्वयंप्रभु शशिलंछन पति, तीनहु लोकके नाथ कहावें।
मित्रभूतभूपतिके नंदन, विजया नगर जिनेश्वर आवें।।
धन्य सुमंगला जिनकी जननी, इन्द्रादिक गुण पार न पावें।
भव्यजीव परणाम करतु है, जिनके चरन सदा चित लावें।।६।।

श्रीऋषभाननजिनस्तुति – छप्पय

ऋषभानन अरहंत, कीर्तिराजाके नंदन।
सुरनरकरहिं प्रणाम, जगतमें जिनको वंदन।।
वीरसेनसुतलशय, सिंहलच्छन जिन सोहै।
नगर सुसीमा जन्म देखि, भविजनमननमोहै।।
अमलान ज्ञान केवलप्रगट, लोकालोक प्रकाशधर।
तस चरनकमल वंदनकरत, पापपहार परांहिं पार।।७।।

श्रीअनंतवीर्यजिनस्तुति – कवित्त

श्रीअनंतवीर्यसेव कीजिये अनेक भेव, विद्यमान येही देव मस्तक नवाइये। तात जासु मेघराय मंगला सुकही माय, नगरी अजोध्याके अनेक गुण गाइये।। ध्वजापै विराजै गज पेखै पाप जाय भज, त्रिकोटनकी महिमा देखे न अघाइये। तिहूं लोकमध्य ईस अतिशै चौतीस लसै, ऐसे जगदीश 'भैया' भलीभांति-ध्याइये।।८।।

श्रीसूरप्रभजिनस्तुति – सिंहावलोकन छप्पय

सूरप्रभ अरहंत, हंत करमादिक कीन्हें।
कीन्हें निज सम जीव, जीव बहु तार सु दीन्हें।।
दीन्हें रविपद वास, वास विजयामहि जाको।
जाको तात सुनाग, नाग भय माने ताको।।
ताको अनंतबलज्ञानधर, धर भद्रा अवतारजी।
जिहँभावधारि भवि सेवही, वहि नरिंद लहिं मुकतिश्री।।९।।

श्रीविशालजिनस्तुति – सवैया

नाथ विशाल तात विजयापति, विजयावति जननी जिनकी।
धन्य सु देश जहां जिन उपजे, पुंडरगिरि नगरी तिनकी।।
लच्छन इंदु वसहि प्रभु पायें, गिनै तहां कोन सुरगनकी।
मुनिराज कहै भविजीव तरै, सो है महिमा महिमें इनकी।।१०।।

श्रीवज्रधरजिनस्तुति – कवित्त

अहो प्रभु पदमरथ राजाके नंदनसु, तेरोई सुजस तिहूंपुर गाइयतु है। केई तब ध्यान धरै, केई तब जापकरै, केई चर्णशर्णतरै, जीवपाइयतु है। नगर सुसीमा सिधि ध्वजापैं विराजै शंख, मातुसरस्वतिके आनंद बधायतु है। वज्रधरनाथ साथ शिवपुरी करो कहि, तुम दास निशदीस शीस नाइयतु है।।११।।

श्रीचन्द्राननजिनस्तुति – छप्पय

चन्द्राननजिनदेव, सेव सुर करहिं जासु नित।
पदमासन भगवंत, डिगत नहिं एक समयचित।।
पुंडरिनगरी जनम, मातु पदमावति जाये।
वृषलच्छन प्रभुचरण, भविक आनंद जु पाये।।
जस धर्मचक्र आगें चलत, ईतिभीति नासंत सब।
सुत बाल्मीक विचरंत जहँ, तहँतहँ होत सुभिक्ष तब।।१२।।

श्रीचन्द्रबाहुजिनस्तुति – मात्रिककवित्त

लक्षण पद्मरेणुका जननी, नगर विनीता जिनको गांव।
तीन लोकमें कीरति जिनकी, चन्द्रबाहु जिन तिनको नांव।।
देवानंद भूपतिके सुत, निशिवासर बंदहिं सुर पांव।
भरत क्षेत्रतैं करहिं बंदना, ते भविजन पावहिं शिवठांव।।१३।।

श्रीभुजंगमजिनस्तुति – सवैया

महिमा मात महाबलराजा, लच्छन चंद धुजा पर नीको।
विजय नग्न भुजंगम जिनवर, नाव भलो जगमें जिनहीको।।
गणधर कहै सुनो भविलोको, जाप जपो सबही जिनजीको।
जास प्रसाद लहै शिवमारग, वेग मिलै निजस्वाद अमीको।।१४।।

श्रीईश्वरजिनस्तुति – मात्रिक–कवित्त

ईश्वरदेव भली यह महिमा, करहि मूल मिथ्यातमनाश।
जस ज्वाला जननी जगकहिये, मंगलसैन पिता पुनि पास।।
नगरी जास सुसीमा भनिये, दिनपति चर्ण रहै नित तास।
तिनको भावसहित नित बंदै, एक चित्त निहचै तुम दास।।१५।।

श्रीनेमप्रभुजिनस्तुति – कवित्त

लच्छन वृषभ पाँय पिता जास वीरराय, सेना पुनि जिनमाय सुंदर सुहावनी। नगरी अजोध्या भली नवनिधि आवै चली, इन्द्रपुरी पाँय तली लोकमें कहावनी।। नेमि प्रभु नाथ वानी अमृत समान मानी, तिहूं लोक मध्यजानी दुःखको बहावनी। भविजीव पांयलागै सेवा तुम नित मागै, अबै सिद्धि देहु आगै सुखको लहावनी।।१६।।

श्रीवीरसेनजिनस्तुति – सवैया

महा बलवंत बडे भगवंत, सवै जिय जंत सुतारनको।
पिता भुवपाल भलो तिनभाल, लह्यो निजलाल उधारनको।।

पुंडरी सुवासहि रावन पास, कहै तुम दास उबारनको।
वीरसेन राय भली भानुमाय, तारोप्रभु आय विचारनको।।१७।।

श्रीमहाभद्रजिनस्तुति – सवैया

महाभद्र स्वामी तुम नाम लिये, सीझै सब काम विचारनके।
पिता देवराज उमादे माय, भली विजया निसतारनके।।
शशि सेवै आय लगै, तुम पाय भले जिनराय उधारनके।
किरपाकरि नाथ गहो हम हाथ, मिलै जिनसाथ तिहारनके।।१८।।

श्रीदेवजसजिनस्तुति – छप्पय

जिन श्रीदेवजस स्वामी, पिताश्रवभूत भनिज्जै।
लच्छन स्वस्तिक पांव, नांव तिहुं लोक गुणिज्जै।।
पावहि भविजन पार, मात गंगा सुखधारहिं।
नगर सुसीमा जन्म आय, मिथ्यामति टारहिं।।
प्रभु देहिं धरम उपदेश नित, सदा बैन अमृत झरहिं।
तिन चरणकमल वंदन करत, पापपुंज पंकति हरहिं।।१९।।

श्रीअजितवीर्यजिनस्तुति – छप्पय

वर्तमानजिनदेव पद्म, लच्छन तिन छाजै।
अजितवीर्य अरहंत, जगतमें आप विराजै।।
पद्मासन भगवंत, ध्यान इक निश्चय धारहि।
आवहि सुरनरवृंद, तिन्हैं भवसागर तारहि।।
नगर अजोध्याजन्मजिन, मात कननिका उरधरन।
तस चरन कमल वंदत 'भविक' जै जै जिन आनँद करन।।२०।।

दोहा

वर्त्तमान वीसी करी, जिनवर वंदन काज।
जे नर पढैं विवेकसों, ते पावहिं शिवराज।।२१।।

समुच्चयवर्त्तमानबीसतीर्थंकरकवित्त

सीमंधर जुगमंद्र बाहु ओ सुबाहु संजात स्वयंप्रभु नाव तिहुं पन ध्याइये। ऋषभानन अनंतवीर्य विशालसूरप्रभ, वज्रधरनाथके चरण चितलाइये।। चंद्रानन चन्द्रबाहु श्रीभुजंगमईश्वर, नेमिप्रभुवीरसेन विद्यमान पाइये। महाभद्र देवजस अजितवीरज भैया, वर्त्तमानवीसको त्रिकाल सीस नाइये।।२२।।

इति वर्त्तमानजिनविंशतिका

अथ परमात्माकी जयमाला लिख्यते।

दोहा

परम देव परनाम कर, परमसुगुरु आराधि।
परम सुधर्म चितार चित, कहूं माल गुणसाधि।।१।।

चौपाई

एकहि ब्रह्म असंखप्रदेश। गुण अनंत चेतनता भेश।।
शक्ति अनंत लसै जिह माहिं। जासम और दूसरो नाहिं।।२।।

दर्शन ज्ञान रूप व्यवहार। निश्चय सिद्ध समान निहार।।
नहि करता नहिं करि है कोय। सदा सर्वदा अविचल सोय।।३।।

लोकालोक ज्ञान जो धरै। कबहुँ न मरण जनम अवतरै।।
सुख अनंत मय जाससुभाव। निरमोही बहु कीने राव।।४।।

क्रोध मान माया नहिं पास। सहजै जहाँ लोभको नास।।
गुण थानक मारगना नाहिं। केवल आपु आपुही माहिं।।५।।

परका परस रंच नहिं जहां। शुद्ध सरूप कहावै तहां।।
अविनाशी अविचल अविकार। सो परमातम है निरधार।।६।।

दोहा

यह निश्चय परमात्मा, ताको शुद्ध विचार।।
जामें पर परसै नहिं, 'भैया' ताहि निहार।।७।।

इति परमात्मा की जयमाला।

अथ तीर्थंकरजयमाला।

दोहा

श्रीजिनदेव प्रणाम कर, परम पुरुष आराध।
कहों सुगुण जयमालिका, पंच करणरिपु साध।।१।।

दोहा

जय जय सु अनंत चतुष्टनाथ। जय जय प्रभु मोक्ष प्रसिद्ध साथ।।
जय जय तुम केवलज्ञानभास। जय जय केवल दर्शन प्रकाश।।२।।

जय जय तुम बल जु अनंत जोर। जय जय सुख जास न पार ओर।।
जय जय त्रिभुवन पति तुम जिनंद। जय जय भवि कुमदनि पूर्णचंद।।३।।

जय जय तम नाशन प्रगट भान। जय जय जित इंद्रिन तू प्रधान।।
जय जय चारित्र सु यथाख्यात। जय जय अघनिशि नाशन प्रभात।।४।।

जय जय तम मोहनिवार वीर। जय जय अरिजीतन परम धीर।।
जय जय मनमथमर्दन मृगेश। जय जय जम जीतनको रसेश।।५।।

जय जय चतुरानन हो प्रतक्ष। जय जय जग जीवन सकल रक्ष।।
जय जय तुम क्रोध कषाय जीत। जय जय तुम मान हर्‍यो अजीत।।६।।

जय जय तुम मायाहरन सूर। जय जय तुम लोभनिवार मूर।।
जय जय शत इंद्रन वंदनीक। जय जय अरि सकल निकंदनीक।।७।।

जय जय जिनवर देवाधिदेव। जय जय तिहुंपन भवि करत सेव।।
जय जय तुम ध्यावहिं भविक जीव। जय जय सुख पावहिं ते सदीव।।८।।

घत्ता

ते निजरसरत्ता तज परसत्ता, तुम सम निज ध्यावहि घटमें।
ते शिवगति पावैं बहुर न आवै, बसै सिंधुसुखके तटमें।।९।।

इति तीर्थंकर जयमाला

अथ श्रीमुनिराज जयमाला।

दोहा

परमदेव परनाम कर, सतगुरु करहुं प्रणाम।।
कहूं सुगुण मुनिराजके, महा लब्धिके धाम।।१।।

ढाल – मुनीश्वर बंदो मनधर भाव, ए देशी।

पंच महाव्रत आदरैजी, समति धरै पुनि पंच।।
पंचहु इन्द्रिय जीतकेंजी, रहै बिना परपंच, मुनीश्वर०।।२।।

षट आवश्यक नित करैजी, जीव दया प्रतिपाल।।
सोवैं पश्चिम रयनमेंजी, शुद्ध भूमि लघुकाल, मुनीश्वर०।।३।।

स्नान विलेपन ना करैजी, नग्न रहै निरधार।।
कचलोंचै हित भावसोंजी, एकहि बेर अहार, मुनीश्वर०।।४।।

थिर ह्वै लघु भोजन करैंजी, तजैं दंतवन काज।।
ये पालैं निरदोषसोंजी, सो कहिये ऋषिराज, मुनीश्वर०।।५।।

दोष लगे प्रायश्चित करैजी, धरै सु आतम ध्यान।।
सोधै नित परिणामको जी, सो संयम परवान, मुनीश्वर०।।६।।

दोष छियालीस टालकैं जी, लेवहिं शुद्ध आहार।।
श्रावकको कुल जानकैजी, जल अचवें तिहँबार, मुनीश्वर०।।७।।

महा तपस्या व्रत करैजी, सहै परीसह घोर।।
बीस दोय बहु भेदसोंजी, काय कसै अतिजोर, मुनीश्वर०।।८।।

निर्मल कर निज आतमाजी, चढैं श्रेणि शुध ध्यान।।
'भैया' ते निहचै सहीजी, पावहिं पद निर्वान, मुनीश्वर०।।९।।

दोहा

यह श्रीमुनिगुणमालिका, जो पहिरे उरमाहिं।।
तिनको शिवसंपति मिलै, जनममरनभय नाहिं।।१०।।

इति मुनिश्वर जयमाला

अथ अहिक्षिति पार्श्वनाथ जिनस्तुति।

दोहा

अश्वसेन अंगज विमल, बामाके कुलचंद।।
तिहँ केवल कल्याण भवि, पूजिये पार्श्वजिनंद।।१।।

छंद

पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्री अहि छत्तये।
जिहँ थान प्रभुजू ध्यान धरिये, आत्मरस महँ रत्तये।।
उपसर्ग कमठ अज्ञान कीन्हों, क्रोधसों अगिनत्तये।
बहु बाघ सिंह पिशाच व्यंतर, गजादिक मदमत्तये।।२।।

कोऊ रुंडमाला पहरि कंठहि, अगनि जाल मुकंत्तये।
महाकाल रूप त्रिकाल सूरति, भय दिखावत गत्तये।।

महि वरष बरषा क्रूर थाक्यो, भव समुद्रहिं पत्तये।
पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्री अहिछत्तये।।३।।

धरणीन्द्र औ पदमावती तहँ, आय जिन सेवंतये।
सुअनंत बल जुत आप राजत, मेरु ज्यों अचलत्तये।।
करि कर्म चार विनाश ताछिन, लह्यो केवल तत्तये।
पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्री अहिछत्तये।।४।।

शत इंद्र मिल कल्याण पूजा, आय विविध रचत्तये।
तिहँ काजतैं यह भूमि महिमा, जगतमें प्रगटत्तये।।
भवि जान्नि आवें जिनहि ध्यावें, निजातम सर्दहत्तये।
पूजिये पास जिनंद भविजन, नगर श्री अहिछत्तये।।५।।

दोहा

सावधान मन राखिकें, जे जिनगुण गावंत।
संपति सुख तिनको सदा, गनत न आवै अंत।।६।।

सत्रहसौ इकतीसकी, सुदि दशमी गुरुवार।
कार्तिकमास सुहावनो, पूजे पार्श्वकुमार।।७।।

इति श्रीअहिक्षितिपार्श्वनाथजिनस्तुति

अथ शिक्षा छंद

दोहा

देह सनेह कहा करै, देह मरन को हेत।।
उत्तम नरभवपायकें, मूढ अचेतन चेत।।१।।

मरहठा छंद

हे मूढ अचेतन, कछुइक चेतो, आखिर जगमें मरना है।
नरदेही पाई, पूर्व कमाई, तिससों भी फिर टरना है०।।टेक।।२।।

क्यों धर्म विसारो, पापचितारो इन बातन क्या तरना है।।
जो भूप कहाये, हुकुम चलाये, तौ भी क्या ले करना है, हे मूढ।।३।।

धन यौवन आये, रह अरुझाये, सो संध्याका वरना है।।
विषयारस रातो, रहे सुमातो, अंतअगनिमें जरना है, हे मूढ०।।४।।

कैदिनको जीवो, विषैरस पीवो, बहुरि नरकमें परना है।।
जैसी कछु करनी, तैसी भरनी, बुरे फैलसों डरना है, हे मूढ०।।५।।

छिन छिन तन छीजै, आयु न धीजै, अंजुलि जल ज्यों झरना है।।
जमकी असवारी, रहैतयारी, तिनसों निशदिन लरना है, हे मूढ०।।६।।

कै भौ फिर आयो, अंत न पायो, जन्म जरा दुख भरना है।।
क्या देख भुलाने, भरम विरानें, यह स्वपने का छरना है, हे मूढ०।।७।।

दुरगतिको परिवो, दुखको भरिवो, काल अनंतहु सरना है।।
परसों हित मानै, मूढ न जाने, यह तन नाहिं उवरना है, हे मूढ०।।८।।

मिथ्यामत लीन्हें, आप न चीन्हें, कर्म कलंकन हरना है।।
जिनदेव चितारो, आपु निहारो, जिनसों जीव उधरना है, हे मूढ०।।९।।

दोहा

जनम मरनतैं नाथ क्यों, जीव चतुर्गति माहिं।।
पंचमि गति पाई नही, जो महिमा निजमाहिं।।१०।।

निज स्वभावके प्रगटतें, प्रगट भये सब दर्व।।
जनम मरन दुख त्यागकैं, जानन लागौ सर्व।।११।।

'भैया' महिमा ज्ञानकी, कहै कहां लों कोय।।
कै जाने जिन केवली, कै समदृष्टी होय।।१२।।

इति शिक्षावली।

अथ परमार्थपदपंक्ति

१ । राग भैरों।

या देहीको शुचि कहा कीजे, जासों धोइये सोईपै छीजै, या देही को०।।टेक।। जो जो धोइये सो सो भरी, देखहु दृष्टि विचारके खरी, या देहीको०।।२।। दशों द्वार निशिवासर बहनी, कोटि जतन किये थिर नहिं रहनी, या देहीको०।।३।। तत्त्व यहै आतम रसपीजे, परगुण त्याग जलंजलि दीजे, या देहीको०।।४।।

२ । राग देव गंधार।

अब मैं छाड्यो पर जंजाल, अब मैं० टेक।
लग्यो अनादि मोह भ्रम भारी, तज्यो ताहि तत्काल अब मैं०।।१।।
आतम रस चाख्यो मैं अदभुत, पायो परमदयाल, अब मैं०।।२।।
सिद्ध समान शुद्ध गुण राजत, सोमरूप सुविशाल, अब मैं०।।३।।

३ । राग विलावल।

या घटमैं परमात्मा चिन्मूरति भइया।।
ताहि विलोकि सुदृष्टिसों पंडित परखैया, या घटमें०।।१।।
ज्ञान स्वरूप सुधामयी, भवसिंधु तरैया।।
तिहू लोकमें प्रगट है, जाकी ठकुरैया, या घटमें०।।२।।
आप तरै तारें परहिं, जैसें जल नइया।।
केवल शुद्ध स्वभाव है, समुझै समुझैया, या घटमें०।।३।।
देव वहै गुरु हैं वहै, शिव वहै वसइया।।
त्रिभुवन मुकुट चहै सदा, चेतौ चितवइया, या घटमें०।।४।।

४ । पुन: राग विलावल।

नरदेही बहु पुण्यसों, चेतन तैं पाई।।
ताहि गमावत बावरे, यह कौन बड़ाई नरदेही०।।१।।

जप तप संयम नेम व्रत, करि लेहुरे भाई।।
फिर तोको दुर्लभ महा, यह गति ठकुराई, नरदेही०।।२।।

५ । राग रामकली।

अरे तैं जु यह जन्म गमायोरे, अरे तैं०।। टेक।।

पूरब पुण्य किये कहुं अतिही, तातैं नरभव पायारे।।
देव धरम गुरु ग्रंथ न परखै, भटकिभटकि भरमायोरे अरे०।।१।।

फिर तोको मिलिबो यह दुर्लभ, दश दृष्टांत[१] बतायोरे।।
जो चेतै तो चेतरे 'भैया' तोको कहि समुझायोरे, अरे०।।२।।

६ । पुनः राग रामकली।

जीयको मोह महादुखदाई, जीयको०।। टेक।।

काल आनादि जीति जिहँ राख्यो, शक्ति अनंत छिपाई।।
क्रम क्रम करकें नरभव पायो, तऊन तजत लराई, जीयको०।।१।।

मात तात सुत बन्धव वनिता, अरु परवार बडाई।।
तिनसों प्रीति करै निशिवासर, जानत सब ठकुराई, जीयको०।।२।।

चहुं गति जनममरनके बहुदुख, अरु बहु कष्ट सहाई।।
संकट सहत तऊ नहि चेतत, भ्रममदिरा अति पाई, जीयको०।।३।।

इह बिन तजे परम पद नाहीं, यों जिनदेव बताई।।
तातैं मोह त्याग लै भइया, ज्यों प्रगटे ठकुराई, जीयको०।।४।।

७ । राग काफी।

जाको मन लागो निजरूपहिं, ताहि और क्यों भावै।
ज्यों अटूट धन लहै रंक कहुं, और न काहु दिखावै।।१।।

---

१. मनुष्यभव की दुर्लभता दिखाने के लिये जिनमत में दश दृष्टान्तरूप कथायें हैं, उनके द्वारा।

गुण अनंत प्रगटै जिहं थानक, तापटतर को आवै।।
इहिविधि हंस सकल सुखसागर, आपुहि आप लखावै।।२।।

८। राग सारंग।

जगतगुरु कब निज आतम ध्याऊं जगत०।।टेक।।

नग्न दिगंबर मुद्राधरिकैं कब निज आतम ध्याऊं।।
ऐसी लब्धि होइ कब मोको, हौं बा छिनको पाऊं, जगत०।।१।।

कब घर त्याग होऊं बनवासी, परम पुरुष लौ लाऊं।।
रहों अडोल जोड पदमासन, करम कलंक खपाऊं, जगत०।।२।।

केवल ज्ञान प्रगट कर अपनों, लोकालोक लखाऊं।।
जन्मजरा दुख देय जलांजलि, हों कब सिद्ध कहाऊँ, जगत०।।३।।

सुख अनंत विलसों तिहँ थानक, काल अनंत गमाऊँ।
'मानसिंह'[१] महिमा निज प्रगटै, बहुर न भवमें आऊं, जगत०।।४।।

९। राग धमाल गौड़ी।

गौड़ीप्रभु पारस पूजिये हो, मनधर परम सनेह, गौड़ी०।।टेक।।

सकल करम भय भंजनो हो, पूरै वंछित आश।।
तास नाम नित लीजिये हो, दिन दिन लीला विलास, गौड़ी०।।२।।

केवलपद महिमा लखो हो, धरहु सुथिरता ध्यान।।
ज्ञानमाहिं उर आनिये हो, इहिविधि श्रीभगवान, गौड़ी०।।३।।

और सकल विकलप तजो हो, राखहु प्रभुसों प्रीति।।
आप सरवर ए करें हो, यहै जिनंदकी रीति, गौड़ी०।।४।।

जाके बदन विलोकते हो, नाशौ दूर मिथ्यात।।
ताहि नमहुं नित भावसों हो, पास जगत विख्यात, गौड़ी०।।५।।

---

१. मानसिंह भैया भगवतीदासजी का परम मित्र था।

१० । पुनः ।

कहा परदेशीको पतियारो, कहा - टेक०।।
मनमाने तब चलै पंथको, सांज गिनै न सकारो।
सबै कुटंब छाँड इतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो, कहा०।।१।।
दूर दिसावर चलत आपही, कोऊ न राखन हारो।
कोऊ प्रीति करो किन कोटिक, अंत होयगो न्यारो, कहा०।।२।।
धनसों राचि धरमसों भूलत, झूलत मोहमझारो।
इहिविधि काल अनंत गमायो, पायो नहि भवपारो, कहा०।।३।।
सांचे सुखसों विमुख होत है, भ्रम मदिरा मतवारो।
चेतहु चेत सुनहुरे भइया, आपही आप संभारो, कहा०।।४।।

११ । पुनः ।

ते गहिले[१] भाई ते गहिले, जगराते[२] अबके पहिले।
आपा पर जिहँ भेद न जान्यो, ते बूड़े भवभ्रमवहले, ते गहले।।१।।
धन धन करत फिरत निशिवासर, तिनको जनम गयो अहले।
भ्रममें मगन लगन पुदगलसों, ते नर भवसागर टहले, ते गहले।।२।।
क्रोध मान माया मद माते, विषयनके रस माहिं रले।
'भैया' चेत चतुर कछु अबकें, नहि तो नरक निगोद हिले, ते ग०।।३।।

१२ । राग केदारो०।

छांड़िदे अभिमान जियरे छांड़िदे०।। टेक-
काको तू अरु कौन तेरे, सबही हैं महिमान।।
देख राजा रंक कोऊ, थिर नहीं यह थान, जियरे०।।१।।
जगत देखत तोरि चलवो, तू भी देखत आन।।
घरी पलकी खबर नाहीं, कहां होय विहान, जियरे०।।२।।

१. वावले, २. राचे

त्याग क्रोधरु लोभ माया, मोह मदिरापान।।
राग दोषहिं टार अन्तर, दूर कर अज्ञान, जियरे०।।३।।
भयो सुरपुर देव कबहूं, कबहुं नरक निदान।
इम कर्मवश बहु नाच नाचे, भैया आप पिछान, जियरे०।।४।।

१३ । राग सोरठ।

अरे सुन जिनशासनकी बतियाँ, जातें होय परम सुखि छतियां, अरे० टेक। निजपर भेद करहु दिन रतियां, ज्यों प्रगटहिं शिवशकति अनँतियां, अरे०।।१।। सुख अनंत सब होय निकतियां, मिटहि सकल भव भ्रमकी घतियां, अरे०।।२।। परम ज्योति प्रगटै परभतियां, 'भैया' निजपद गहु निज मतियां, अरे०।।३।।

१४ । राग कान्हरो।

देखो मेरी सखीये आज चेतन घर आवै।।
काल अनादि फिर्‍यो परवशही, अब निज सुधहिं चितावै, दे०।।१।।
जनमजनमके पाप किये जे, ते छिन माहि बहावै।।
श्रीजिनआज्ञा शिवपर धरतो, परमानंद गुण गावै, देखो०।।२।।
देत जलांजुलि जगत फिरनको, ऐसी जुगति बनावै।।
विलसै सुख निज परम अखंडित, भैया सब मनभावै, देखो०।।३।।

१५ । राग केदारो।

कैसें देऊं करमन दोष कैसें०।।टेक।।
मगन ह्वै ह्वै आप कीने, गहे रागरु दोष।।
विषयों के रस आप भूल्यो, पापसों तन पोस, कैसें०।।१।।
देवधर्म गुरु करी निंदा, मिथ्या मदके जोस।।
फल उदै भई नरकपदवी, भजोगे कै कोस, कैसें०।।२।।

किये आपसु बनै भुगते, अब कहा अफसोस।।
दुखित तो बहु काल बीते, लही न सुख जल ओस, कैसें०।।३।।
क्रोध मानरु लोभ माया, भर्‍यो तन घट ठोस।।
चेत चेतन पाय नरभव, मुकति पंथ सुघोष, कैसें०।।४।।

१६ । राग केदारो।

कहो परसों प्रीति कीन्हीं, कहा गुण तुम जान।
चतुर चेतन चितविचारो, कहहुँ पुनि पहिचान।।१।।
वे अचेतन तुम सुचेतन, देखि दृष्टि विनान।
परहिं त्याग स्वरूप गहिये, यहै बात प्रमान।।२।।

१७ । राग अडानो।

रे मन ऐसा है जिनधर्म, रे मन०।।टेक।।
जाके दरस सरस सुख उपजत, मिटत सकल भव भर्म।।
शुद्धस्वरूप सहज गुणसागर, जानत सबको मर्म, रे मन०।।१।।
ज्ञान दरस चारित कर राजत, परसत नाहीं कर्म।।
निश्चय ध्यान धरो वा प्रभुको; ज्यों प्रगटै पद पर्म, रे मन०।।२।।

१८ । दोहा (विहाग०)

श्रीजिन चरणांबुज प्रते, वंदत भवि धर भाव।
केवल पद अवलंवि निज, करत भगत व्यवसाव।।१।।
स्वर्ग मृत्यु पाताल में, श्री जिनबिंब अनूप।
तिहँ प्रति वंदत भविक नित, भावसहित शिवरूप।।२।।

१९ । राग अडानो।

भविक तुम वंदहु मनधर भाव, जिन प्रतिमा जिनवरसी कहिये, भ०।।
जाके दरस परमपद प्रापति, अरु अनंत शिवसुख लहिये, भविक।।१।।

निज स्वभाव निरमल ह्वै निरखत, करम सकल अरि घट दहिये।।
सिद्ध समान प्रगट इह थानक, निरख निरख छवि उर गहिये, भ०।।२।।
अष्ट कर्म दल भंज प्रगट भई, चिन्मूरति मनु बन रहिये।।
इहि स्वभाव अपनो पद निरखहु, जो अजरामर पद चहिये, भविक।
त्रिभुवन माहिं अकृत्रिम कृत्रिम, वंदन नितप्रति निरवहिये।
महा पुण्यसंयोग मिलत है, भइया जिन प्रतिमा सरदहिये, भविक०।।

२० । पुनः

हो चेतन तो मति कौन हरी, चेतन०।।टेक।।
कै लै गयो मिथ्यामति मूरख, कै कहु कुमति धरी।।
कै कहुं लोभ लग्यो तोहि नीको, कै विष प्रीति करी, हो चे०।।१
कै कहुं राग मिल्यो हितकारी, रीति न समुझि परी।।
अब हू चेत परमपद अपना, सीख सु धार खरी, हो चे०।।२

२१ । पुनः

हो चेतन वे दुःख विसरि गये।।टेक।।
परे नरकमें संकट सहते, अब महाराज भये।
सूरी सेज सबै तन वेदत, रोग एकत्र ठये।। हो चे०।।१।।
करत पुकार परम पद पावत, कर मन आनंदये।
कहू शीत कहू उष्ण महाभुवि, सागर आयु लये,।। हो चे०।।२।।

२२ । राग मारू ।

जो जो देख्यो वीतरागने सो सो होसी वीरारे।
बिन देख्यो होसी नहिं क्योंही, काहे होत अधीरा रे।।१।।
समयो एक बढ़ै नहिं घटसी, जो सुख दुखकी पीरा रे।
तू क्यों सोच करै मन कूड़ो, होय वज्र ज्यों हीरा रे।।२।।

लगै न तीर कमान बान कहुं, मार सकै नहिं मीरा रे।
तूं सम्हारि पौरुष बल अपनो, सुख अनंत तो तीरा रे।।३।।
निश्चय ध्यान धरहु वा प्रभुको, जो टारै भव भीरा रे।
'भैया' चेत धरम निज अपनो, जो तारै भव नीरा रे।।४।।

२३ । राग धनाश्री।

जिनवाणी को को नहिं तारे, जिन०।।टेक।।
मिथ्यादृष्टी जगत निवासी, लहि समकित निज काज सुधारे।
गौतम आदिक श्रुतिके पाठी, सुनत शब्द अघ सकल निवारे, जिन०
परदेशी राजा छिन वादी, भेद सुतत्त्व भरम सब टारे।
पंचमहाव्रत धर तू 'भैया' मुक्तिपंथ मुनिराज सिधारे, जिन०।।२।।

२४ । पुनः ।

जिनवाणी सुनि सुरत संभारे जिन०।।टेक।।
सम्यग्दृष्टी भवननिवासी, गह वृत केवल तत्त्व निहारे, जिन०।।१।।
भये धरणेन्द्र पदमावति पलमें, जुगलनाग प्रभु पास उबारे।।
बाहूबली बहुमान धरत है, सुनत वचन शिव सुख अवधारे, जिन०।।२।।
गणधर सबै प्रथम धुनि सुनिके, दुविध परिग्रह संग निवारे।।
गजसुकुमाल बरस बसुहीके, दिक्षाग्रहत करम सब टारे, जिन०।।३।।
मेघकुँवर श्रेणिकको नंदन, वीरवचन निजभवहिं चितारे।।
और हु जीव तरे जे भैया, ते जिनवचन सबै उपगारे, जिन०।।४।।

२५ । पुनः।

चेतन परे मोह वश आय, चेतन।।टेक।।
मानत नाहिं कहूं समुझायो, विषयन रहे लुभाय।।
नरक निगोद भ्रमन बहु कीन्हो, सो दुख कह्यो न जाय, चेतन०।।१।।

नरभव पाय धरम नहिं पायो, आगेको न उपाय।।
जैसें डारि उदधि चिंतामणि, मूरख फिर पछताय, चेतन०।।२।।
सतगुरु वचन धारिले अबके, जातें मोह विलाय।।
तब प्रगटै आतम रस भैया, सो निश्चय ठहराय, चेतन०।।३।।

।। इति परमार्थ पदपंक्ति ।।

अथ गुरु शिष्य प्रश्नोत्तर

दोहा

कहुं दिव्यध्वनि शिष्य सुनि, आयो गुरुके पास।।
पूज्य सुनहु इक बीनती, अचरजकी अरदास।।१।।

आज अचंभौ मैं सुनो, एक नगरके बीच।।
राजा रिपुमें छिप रह्यो, राग करें सब नीच।।२।।

नीचसु राज्य करै जहां, तहां भूप बलहीन।।
अपनो जोर चलै नहीं, उनहीके आधीन।।३।।

वे याको मानें नहीं, यह वासों रसलीन।।
सत्तर कोड़ाकोड़िलों, बंदीखानें दीन।।४।।

बंदीवान समान नृप, कर राख्यो उहि ठौर।।
वाको जोर चलै नहीं, उनहींके सिरमौर।।५।।

वे जो आज्ञा देत हैं, सोइ करैं यह काम।।
आप न जानें भूप मैं, ऐसो है चित भ्राम।।६।।

उनकी चेरीसों रचे, तजि निज नारि निधान।।
कहो स्वामि सो कौन वह, जिनको ऐसो ज्ञान।।७।।

कौन देश राजा कवन, को रिपु को कुल नारि।।
को दासी कहु कृपाकर, याको भेद विचारि।।८।।

गुरुरुवाच

गुरु बोलै समकित बिना, कोऊ पावै नाहिं।।
सबैं ऋद्धि इक ठौर है, काया नगरीमाहिं।।९।।

काया नगरी जीव नृप, अष्ट कर्म अति जोर।।
भाव अज्ञानदासी रचे, पगे विषयकी ओर।।१०।।

विषयबुद्धि जहां है नहीं, तहां सुमतिकी चाह।।
जो सुमती सो कुल त्रिया, इहि याको निरवाह।।११।।

आप पराये वश परे, आपा डार्‌यो खोय।।
आपा आपु न जानहीं, कहो आपु क्यों होय।।१२।।

आप न जानें आपको, कौन बतावनहार।।
तबहिं शिष्य समकित लह्यो, जान्यों सबहि विचार।।१३।।

इहि गुरु शिष्य चतुर्दशी, सुनहु सबै मनलाय।।
कहै दास भगवंतको, समताके घर आय।।१४।।

इति गुरुशिष्यचर्तुदशी

अथ मिथ्यात्वविध्वंसनचतुर्दशी

छप्पय

वन्दहुं ऋषभ जिनेन्द्र, अजित संभव अभिनंदन।
सुमति सु पद्म सुपार्श्व, बहुरि चन्द्रप्रभ वंदन।।
सुविधि शीतल श्रेयांश, वासुपूजहिं सुखदायक।
विमल अनंत रु धर्म, शान्ति कुंथ जु शिवनायक।।
अर मल मुनसुव्रत नमत, पाप पुंज पंकति हरिय।
नमि नेम पार्श्व जिन वीर कहँ, भवित्रिकाल वंदन करिय।।१।।

कवित्त मनहर

मिथ्या गढ़ भेद भयो अन्धकारनाश गयो, सम्यक प्रकाशलयो, ज्ञानकला भासी है। अणुव्रत भाव धरें महावृत अंगी करें, श्रेणीधारा चढ़े केई प्रकृत विनासी है।। मोहको पसारो डारि घातियासु कर्म टारि, लोकालोकको निहारि भयो सुखरासी है। सर्वही विनाश कर्म, भयो महादेव पर्म, वंदै भव्य ताहि नित लोक अग्रवासी है।।२।।

नेकु राग द्वेष जीत भये वीतराग तुम, तीनलोक पूज्यपद येहि त्याग पायो है। यह तो अनूठी बात तुम ही बताय देहु, जानी हम अबहीं सुचित्त ललचायो है।। तनिकहू कष्ट नाहिं पाइये अनन्त सुख, अपने सहजमाहिं आप ठहरायो है। यामें कहा लागत है, परसंग त्यागतही, जारि दीजे भ्रम शुद्ध आपुही कहायो है।।३।।

वीतराग देव सो तो बसत विदेहक्षेत्र, सिद्ध जो कहावै शिव-लोकमध्य लहिये। आचारज उवझाय दुहीमेंन कोऊ यहां, साधु जो बताये सो तो दक्षिण में कहिये।। श्रावक पुनीत सोऊ विद्यमान यहां नाहिं, सम्यकके संत कोऊ जीव सरदहिये।। शास्त्रकी शरधा तामें

बुद्धि अति तुच्छ रही, पंचम समैमें कहो कैसे पंथ गहिये।।३।।

तूही वीतराग देव राग द्वेष टारि देख, तूही तो कहावै सिद्ध अष्ट कर्म नासतैं। तूही तो आचारज है आचरै जु पंचाचार, तूही उवझाय जिनवाणीके प्रकाशतैं।। परको ममत्त्व त्याग तूही है सो ऋषि राय, श्रावक पुनीत व्रत एकादश भासते। सम्यक स्वभाव तेरो शास्त्र पुनि तेरी वाणी, तूही भैया ज्ञानी निज रूपके निवासतें।।४।।

मात्रिक सवैया

आलस कहै उद्यम जिन ठानों, सोवहु सदन पिछोरी तान।
काहे रैन दिना शठ धावत, लिख्यो ललाट मिलै सोइ आन।।
आवत जात मरे जिय केतक, एसेही भेद हिये पहिचान।
तातें इकन्तगहो उरअन्तर, सीख यहै धरिये सुख मान।।५।।

उद्यम कहै अरे शठ आलस, तू सरबर क्यों करै हमारि।
हम मिथ्यात तजें गहें सम्यक, जो निजरूप महा हितकारि।।
श्रावक धर्म्म इकादश भेंदसों, श्री मुनिपंथ महाव्रत धारि।
चढ़ गुण थान विलोक ज्ञेय सब, त्यागहिं कर्म बरैं शिवनारि।।६।।

कवित्त मनहरन

मात्रिक सवैया

मिथ्याभाव नाश होय तबै ज्ञान भास होय, मिथ्याके मिलापसों अशुद्धता अनादिकी। मिथ्याके सँयोग सेती मोक्षको वियोग रहै, मिथ्याके वियोग बात जानें मरजादिकी।। मिथ्याकी मगनतासों संकट अनेक सहै, मिथ्याके मिटाये भव भाँवरि लै वादिकी। ऐसी मिथ्या रीतिकी प्रतीतिको निवारै संत, करै निज प्रगट शक्ति तोर कर्मादिकी।।७।।

मोहके निवारें राग द्वेषहू निवारें जाहिं, राग द्वेष टारें मोह नेक हू ने पाइये। कर्मकी उपाधिके निवारिवेको पेंच यहै, जड़के उखारें वृक्ष कैसे ठहराइये।। डार पात फल फूल सबै कुम्हलाय जाय, कर्मनके वृक्षनको ऐसे के नसाइये। तबै होय चिदानन्द प्रगट प्रकाशरूप, विलसै अनन्त सुख सिद्धमें कहाइये।।८।।

जबै चिदानंद निज रूपको संभार देखे, कौन हम कौन कर्म कहांको मिलाप है। रागद्वेष भ्रमने अनादिके भ्रमाये हमें, तातें हम भूल परे लाग्यो पुण्य पाप है।। रागद्वेष भ्रम ये सुभाव तो हमारे नाहिं, हम तो अनंत ज्ञान, भानसो प्रताप है। जैसो शिव खेत बसै तैसो ब्रह्म यहां लसै, तिहू काल शुद्ध रूप 'भैया' निज आप है।।९।।

जीव तो अकेलो है त्रिकाल तीनों लोकमध्य, ज्ञान पुंज प्राण जाके चेतना सुभाव है। असंख्यात परदेश पूरित प्रमान वन्यो, अपनें सहज माहिं आप ठहराव है।। राग द्वेष मोह तो सुभाव में न याके कहू, यह तो विभाव पर संगति मिलाव है। आतम सुभावसों विभावसों अतीत सदा, चिदानन्द चेतवेको ऐसे में उपाव है।।१०।।

राग द्वेष भ्रम भाव लग्यो है अनादिहीको, जाके परसाद परभावनि बहतु है। बंधत अनेक कर्म्म इनको निमित्त पाय, तिनहीके फल सब यह पै सहतु है।। चहुंगति चौरासीमें जनम जराके दुःख, मरन मिथ्यात भाव यहै तो लहतु है। याही क्रम काल तो अनंत बीत गयो तहां, अजहुंलों चिदानंद चेतो न चहतु है।।११।।

मिथ्या भाव जालों तोलों भ्रमसों न नातो टूटै, मिथ्याभाव जौलों तौलों कर्म सों न छूटिये। मिथ्याभाव जोलों तोलों सम्यक न ज्ञान होय, मिथ्या भाव जौलों तोलों अरि नाहिं कूटिये।। मिथ्या

भाव जौलों तौलों मोक्षको अभाव रहै, मिथ्या भाव जौलों तौलों परसंग जूटिये। मिथ्याको विनाश होत प्रगटै प्रकाश जोत, सूधौ मोक्ष पंथ सूधै नेकु न अहूटिये।।१२।।

छप्पय

ऊरध मध अध लोक, तासुमें एक तिहू पन।
किसिहि न कोउ सहाय, याहि पुनि नाहिं दुतिय जन।।
जो पूरव कृत कर्म भाव, निज आप बंध किय।
सो दुख सुख द्वयरूप, आय इहि थान उदय दिय।।
तिहि मध्य न कोऊ रख सकति, यथा कर्म विलसंत तिम।
सब जगत जीव जगमें फिरत ज्ञानवंत भाषंत इम।।१३।।

दोहा

भैया सुख सागर परखि, निरखि ज्योति निजचन्द।
मिथ्या नाशन चतुर्द्दशि, पढ़त बढ़त आनन्द।।१४।।

इति मिथ्यातविध्वंसनचतुर्दशी

अथ जिनगुणमाला लिख्यते।

दोहा

तीर्थंकर त्रिभुवन तिलक, तारक तरन जिनंद।
तास चरन वंदन करौं, मनधर परमानंद।।१।।

गुण छीयालिस संयुगत, दोष अठारह नाश।
ये लक्षण जा देवमें, नित प्रति वंदों तास।।२।।

चौपाई

दश गुण जासु जनमतैं होय। प्रस्वेदादिक दोष न कोय।।
निर्मलता मलरहित शरीर। उज्वल रुधिर वरण जिम खीर।।३।।

वज्र वृषभ नाराच प्रमान। सम सु चतुर संस्थान बखान।।
शोभन रूप महा दुतिवंत। परम सुगंध शरीर वसंत।।४।।

सहस अठोत्तर लच्छन जास। बल अनंत वपु दीखै तास।।
हितमित वचन सुधासे झरैं। तास चरन भवि वंदन करैं।।५।।

दश गुण केवल होत प्रकाश। परम सुभिक्ष चहू दिश भास।।
द्वयसौ जोजन मान प्रमान। चलत गगनमें श्रीभगवान।।६।।

वपुतैं प्राणि घात नहिं होय। आहारादिक क्रिया न कोय।।
बिन उपसर्ग परम सुखकार। चहुं दिश आनन दीखहिं चार।।७।।

सब विद्या स्वामी जग वीर। छाया वर्जित जासु शरीर।।
नख अरु केश बढ़ैं नहिं कहीं। नेत्र पलक पल लागै नहीं।।८।।

चौदह गुण देवन कृत होय। सर्व मागधी भाषा सोय।।
मैत्री भाव जीव सब धरैं। सर्वकाल तरु फूल न फरैं।।९।।

दर्पणवत निर्मल ह्वै मही। समवशरण जिन आगम कही।।
शुद्ध गंध दक्षिण चल पौन। सर्व जीव आनँद अनुभौन।।१०।।

धूलिरु कंटक बर्जित भूमि। गंधोदक बरषत है झूमि।।
पद्म उपरि नित चलत जिनेश। सर्व नाज उपजहि चहुं देश।।११।।

निर्मल होय अकाश विशेष। निर्मल दशा धरतु है भेष।।
धर्म चक्र जिन आगें चलै। मंगल अष्ट पाप तम दलै।।१२।।

प्राति हार्य्य वसु आनँदकंद। वृक्ष अशोक हरै दुख द्वंद।।
पुहुप वृष्टि शिव सुखदातार। दिव्यध्वनि जिन जै जैकार।।१३।।

चौंसठ चवर ढरहिं चहुंओर। सेवहिं इंद्र मेघ जिम मोर।।
सिंहासन शोभन दुतिवंत। भामंडल छवि अधिक दिपंत।।१४।।

वेदी माहिं अधिक दुति धरै। दुंदुभि जरा मरण दुख हरै।।
तीन छत्र त्रिभुवन जयकार। समवशरणको यह अधिकार।।१५।।

दोहा

ज्ञान अनँत मय आतमा, दर्शन जासु अनंत।
सुख अरु वीर्य अनंत बल, सो वंदों भगवंत।।१६।।

इन छ्यालीसन गुणसहित, वर्त्तमान जिनदेव।
दोष अठारह नाशतैं, करहिं भविक नितसेव।।१७।।

चौपाई

क्षुधा त्रिषा न भयाकुलजास। जनम न मरन जरादिक नाश।।
इन्द्रीविषय विषाद न होय। विस्मय आठ मदहि नहिं कोय।।१८।।

रागरु दोष मोह नहि रंच। चिंता श्रम निद्रा नहिं पंच।।
रोग विना पर स्वेद न दीस। इन दूषन विन है जगदीश।।१९।।

दोहा

गुण अनंत भगवन्तके, निहचै रूप बखान।।
ये कहिये व्यवहारके, भविक, लेहु उर आन।।२०।।

'भैया' निजपद निरखतैं, दुविधा रहै न कोय।।
श्रीजिनगुणकी मालिका, पढें परम सुख होय।।२१।।

इति श्रीजिनगुणमालिका

अथ सिज्झाय लिख्यते।

करखा छंद

जहँ कर्मके वंश, सों अंश नहिं लसै, सिद्ध सम आतमा ब्रह्म ज्ञानी।
मोह मिथ्यात्वमद, पान दूरहिं नशै, राग अरुद्वेषहू जास थानी।।१।।

नहि क्रोध नहिंमान थानभासैं कहूं, माय नहिं लोभ जहँ दूरदीखै चहूं।
प्रकृति परद्रव्यकी सर्व मानी, भली सिद्ध समआतमा ब्रह्म ज्ञानी।।२।।

जामें ज्ञान अरु दर्श चारित गुणराजही, शकति अनंत सबै ध्रुवछाजही।
परम पद पेख निजराजधानी, सिद्ध समआत्मा ब्रह्म ज्ञानी।।३।।

अतीत अनागत वर्त्तमानहिं जिते, दरब गुण परजाय सर्व भासहिं तिते।
शुद्ध नय सिद्ध जिम जानिप्रानी, सिद्ध सम आत्मा ब्रह्म ज्ञानी।।४।।

अथ पंचपरमेष्ठिनमस्कार।

दोहा

प्रातसमय श्रीपंच पद, वंदन कीजे नित्त।।
भाव भगति उर आनिकै, निश्चय कर निजचित्त।।१।।

चौपाई १६ मात्रा

प्रातहिं उठि जिनवर प्रणमीजै। भावसहित श्रीसिद्ध नमीजै।।
आचारज पद वंदन कीजै। श्री उवझाय चरण चितदीजै।।२।।

साधु तणा गुण मन आणीजै। षटद्रव्य भेद भला जानीजै।।
श्री जिनवचन अमृतरस पीजै। सब जीवनकी रक्षा कीजै।।३।।

लग्यो अनादि मिथ्यात्व बमीजे। त्रिभुवन माही जिम न पसीजै।।
पाचौं इन्द्री प्रबल दमीजै। नित आतम रस माहि रमीजै।।४।।

परगुण त्याग दान नित कीजै। शुद्ध स्वभाव शील पालीजै।।
अष्ट करम तज तप यह कीजै। शुद्धस्वभाव मोक्ष पामीजै।।५।।

दोहा

इहविधि श्रीजिन चरण नित, जो वंदत धर भाव।।
ते पावहिं सुख शाश्वते, 'भैया' सुगम उपाव।।६।।

इति पंचपरमेष्ठि नमस्कार।

अथ गुणमंजरी लिख्यते

दोहा

परम पंच परमेष्ठिको, वंदौं सीस नवाय।।
जस प्रसाद गुण मंजरी, कहूं कथन गुणगाय।।१।।

ज्ञान रूप तरु ऊगियो, सम्यकधरतीमाहिं।।
दर्शन दृढ शाखासहित, चारित दल लहकाहिं।।२।।

लगी ताहि गुण मंजरी, जस स्वभाव चहुं ओर।।
प्रगटी महिमा ज्ञानमें, फल है अनुक्रम जोर।।३।।

जैसें वृक्ष रसालके, पहिले मंजरी होय।।
तैसें ज्ञान तमालके, गुणमंजरिका जोय।।४।।

दया सुवत्सल सुजनता, आतम निंदा रीति।।
समता भक्ति विरागविधि, धर्म रागसों प्रीति।।५।।

मनप्रभावना भाव अति, त्याग न ग्रहन विवेक।।
धीरज हर्ष प्रवीनता, इम मंजरी अनेक।।६।।

तिनके लच्छन गुण कहूं, जिन आगम परमान।।
इस क्रम शिव फल लागि है, देख्यो श्री भगवान।।७।।

चौपाई

दया कही द्वय भेद प्रकाश। निजपरलच्छन कहूं विकाश।।
प्रथम कहूं निज दया बखान। जिहमें सब आतम रस जान।।८।।

शुद्ध स्वरूप विचारहिं चित्त। सिद्ध समान निहारहिं नित्त।।
थिरता धर आतमपदमाहिं। विषयसुखनकी वांछा नाहिं।।९।।

रहै सदा निजरसमें लीन। सो चेतन निजदया प्रवीन।।
अब दूजो परदया विचार। जो जानै सगरो संसार।।१०।।

छहों कायकी रक्षा होय। दयाशिरोमणि कहिये सो।।
पृथिवी अप तेऊ अरु वाय। वनस्पती त्रिस भेद कहाय।।११।।

मन वच काय विराधै नाहि। सो परदया जिनागममाहिं।।
अव्रतमें भावनितें टलै। यथाशक्ति कछु दर्वित पलै।।१२।।

ज्यों कषायकी मंदित ज्योत। त्यों त्यों दया अधिक तिहँ होत।।
त्रसकी रक्षा निश्चय करै। देशविरत थावर कछु टरै।।१३।।

सर्वदया छट्टे गुणथान। आगें ध्यान कह्यो भगवान।।
और कहूं परदया बखान। ताके लक्षण लेहु पिछान।।१४।।

कष्टित देख अन्य जियकोय। जाके हिरदै करुणा होय।।
शक्ति समान करै उपकार। सो परदया कही संसार।।१५।।

दोहा

कही दया द्वय भेदसों, थोरेमें समुझाय।।
याके भेद अपार हैं, जानै श्रीजिनराय।।१६।।

अब वत्सलता गुण कहूं, जो रुचिवंत सदीव।।
लग्यो रहै जिनधर्ममें, सो सम दृष्टी जीव।।१७।।

चौपाई

जैसें बच्छा चूंघै गाय। तैसें जिनवृष याहि सुहाय।।
लग्यो रहै निशदिन तिहँ माहिं। और काजपर मनसा नाहिं।।१८।।

सुनै जिनागमके विरतंत। त्योंत्यों सुख तिहँ होत महंत।।
जो देख्यो केवल भगवान। सो निहचै याके परमान।।१९।।

द्वादश अंग प्ररूपहि जोय। सो याके घट अविचल होय।।
रहै सदा जिनमतको ध्यान। सो वत्सलता गुण परमान।।२०।।

अब तीजी सज्जनता कहूं। जाके भेद यथारथ लहूं।।
देखै जो जिनधर्मी जीव। ताकी संगति करै सदीव।।२१।।

सब प्राणीपर सज्जन भाव। मित्र समान करै चित चाव।।
जहां सुनै जिनधर्मी कोय। तहँ रोमांचित हुलसित होय।।२२।।

देखत ही मन लहै अनंद। सो सज्जनता है गुणवृंद।।
अब अपनी निंदा अधिकार। कहूं जिनागमके अनुसार।।२३।।

जब जिय करै विषयसुख भोग। निंदित ताहि रहै उपयोग।।
अघकी रीति करै जिय जहां। भ्रष्टित रहै रैन दिन तहां।।२४।।

देह कुटुंबादिक से नेह। जब ह्वै तब निंदै निज देह।।
व्रत पचखान करै नहिं रंच। तब कहै रे मूरख तिरजंच।।२५।।

जब कहू जियको हिंसा होय। तब धिक्कार करै निज सोय।।
जब परिणाम बहिर्मुख जाय। तब निज निंदा करै सुभाय।।२६।।

इहविधि निज निंदहि जे जीव। ते जिन धर्मी कहे सदीव।।
धर्म विषें उद्यम नहिं होय। तब निज निंदहिं धर्मी सोय।।२७।।

दोहा

आतमनिंदा पाठ इम। करत भविक निशदीस।।
अब समता लक्षण कहूं। जो भाषित जगदीश।।२८।।

चौपाई

समताभाव धरहि उरमाहिं। वैर भाव काहूसों नाहिं।।
निज समान जाने सब हंस। क्रोधादिक तब करै विध्वंस।।२९।।

उत्तम क्षमा धरहि उर आन। सुखदुख दुहुमें एकहि बान[1]।।
जो कोउ क्रोध करै इह आय। तबहू याके समता भाय।।३०।।

उपजै क्रोध कषाय कदाच। तब तहँ रहै आपसों राच।।
सो समतादिक लच्छन जान। थोरेमें कछु कह्यो बखान।।३१।।

अब कहुं भगति भाव जो होय। सेवहि पंच पदहिं नित सोय।।
देव गुरु जिन आगम सार। इनकी भक्ति रहै निरधार।।३२।।

जिनप्रतिमा जिन सरखी जान। पूजै भाव भगति उर आन।।
साधर्मी[2] जिय देखै कोय। ताकी भगति करै पुनि सोय।।३३।।

जामहिं गुण देखै अधिकाय। ताकी भगति करहि मन लाय।।
भक्ति भावतैं नाहिं अधाय। समदृष्टी[3] को यहै स्वभाय।।३४।।

अब कहुं गुण वैराग बखान। उदासीन सबसों तिहँ जान।।
जोपै रहै गृहस्थावास। तोहू मन तिह रहै उदास।।३५।।

जानै कबहूं चारित लेउँ। परिग्रह सबै त्यागकर देउँ।।
क्षणभंगुर देखहि संसार। तातैं राग तजै निरधार।।३६।।

निजशरीर विषलेषण करै। अशुचि देख ममता परिहरै।।
यह जड़मय चेतन सरवंग। कैसैं राग करूं इहि संग।।३७।।

---

१. आदत। २. सहधर्मी। ३. सम्यग्दृष्टि।

मन लाग्यो आतम रस माहिं। तातैं बैरबासना नाहिं।।
इम वैराग्य धरहिं जे संत। ते समदृष्टि[१] कहै सिद्धंत।।३८।।

अब कहुं धर्मरागकी बात। समदृष्टी[१] जिय सबै सुहात।।
पंच परम परमेष्ठी जान। तिनमें रागधरहिं उर आन।।३९।।

जिन आगम जो कह्यो सिधंत। तिनपै राग धरत है संत।।
ज्यों देखहि जिनधर्म उद्योत। त्यों तिहिं राग महा उर होत।।४०।।

जहां सुनै जिनधर्मी कोय। तिहिं मिलिवेकी इच्छा होय।।
धर्म राग धर्मीपै जोय। सम्यक लच्छन कहिये सोय।।४१।।

दोहा

कही आठ गुणमंजरी, सम्यक लक्षण जान।।
पंच भेद पुनि और है, तेहू कहू बखान।।४२।।

मन प्रभावना भाव धर, हेय उपादेय वंत।।
धीरज हर्ष प्रवीनता, इम मंजरी वृतंत।।४३।।

चौपाई

चित प्रभावना भावहिं धरै। किहि विधि जैनधर्म विस्तरै।।
संघ चलावहि खरचै दाम। प्रगट करै जिन शासननाम।।४४।।

जिनमंदिर की रचना करै। तामें बिंब अनोपम धरै।।
करै प्रतिष्ठा विविध प्रकार। सो जिनधर्मी चित्त उदार।।४५।।

साधू साध्वी श्रावक वग्र। इनके दूर करहिं उपसर्ग।।
पोषै संघ चतुर्विधि जान। सो जिनधर्मी कहे बखान।।४६।।

इह विधि करै उद्योत अनेक। जाके हिरदै परम विवेक।।
जिनशासनकी महिमा होय। नितप्रति काज करत है सोय।।४७।।

---

१. सम्यग्दृष्टि।

जब कोउ जीव महाव्रत धरै। ताके तहां महोत्सव करै।।
खरचहि द्रव्य देय बहु दान। सो प्रभावना अंग बखान।।४८।।

अब कहुं हेय उपादेय भेद। जाके लखे मिटै सब खेद।।
प्रथमहिं हेय कहतहूँ सोय। जामे त्याग कर्मको होय।।४९।।

पुद्गल त्याग योग्य सब तोहि। इनकी संगति मगन न होहि।।
ऐसें जो बरतै परिणाम। हेय कहत है ताको नाम।।५०।।

अब कहुं उपादेयकी बात। जामें ग्रहण अर्थ विख्यात।।
निज स्वरूप जो आतमराम। चिदानंद है ताको नाम।।५१।।

ज्ञान दरश चारित भंडार। परमधरम धन धारन हार।।
निराकार निरभय निररूप। सो अविनाशी ब्रह्म स्वरूप।।५२।।

ताकी महिमा जानहिं संत। जाकी सकति अपार अनंत।।
ताहि उपादेय जानहिं जोय। सम्यकदृष्टी कहिये सोय।।५३।।

निज स्वरूप जो ग्रहण करेय। परसत्ता सब त्यागे देय।।
ऐसे भाव धरहि जो कोय। हेय उपादेय कहिये सोय।।५४।।

अब धीरज गुण कहूं बखान। जिनके ते सम दृष्टी जान।।
धर्मविषै जो धीरज धरै। कष्टदेख सरधा नहि टरै।।५५।।

सहै उपसर्ग अनेक प्रकार। सबहू धीरज ह्वै निरधार।।
मिथ्यामत जो देखै कोय। चमत्कार तामें बहु होय।।५६।।

तबहू ताहि लखहि अज्ञान। सो धीरजधर सम्यकवान।।
अब कहुं हरप गुणहिं समुझाय। समदृष्टी यह सहज सुभाय।।५७।।

निज स्वरूप निरखहिं जो कोय। ताके हर्ष महा उर होय।।
सुख अनंतको पायो ईस। तिहँ निरखै हरषै निसदीस।।५८।।

छहों द्रव्य के गुण परजाय। जाने जिन आगम सुपसाय[1]।।
निज निरखै सु विनाशी नाहिं। यातैं हर्ष महा उर माहिं।।५९।।

तीर्थंकर देवनके देव। ताकी प्रभुताके सब भेव।।
अनँत चतुष्टय आदि विचार। हर्षै ते निज माहिं निहार।।६०।।

जन्म जरादिक दुख बहु जान। तिहतैं भिन्न अपनपो मान।।
सिद्धसमान विचारहि चित्त। तातैं हर्ष महा उर नित्त।।६१।।

अब गुण कहूं प्रवीन बखान। जिनके ते समदृष्टी मान।।
स्वपरविवेकी परम सुजान। प्रगट्यो बोध महा परधान।।६२।।

जानन लाग्यो सब विरतंत। जैसो कछु देख्यो भगवंत।।
जिन आगमके वचन प्रमान। तामहिं बुद्धि अहै परधान।।६३।।

धर्म महागुण जाके होय। तातैं निपुण न दूजो कोय।।
जाके हृदय भयो परकाश। ताकी कुमति गई सब नाश।।६४।।

चौदह विद्यामें जो आदि। ब्रह्मज्ञान सो कह्यो मरजाद।।
तातैं जो परवीन प्रधान। सो समदृष्टीबिन नहिं आन।।६५।।

मिथ्याती जिय भ्रममें रहै। सो प्रवीनता कैसें गहै।।
तातैं कथा यहै परमान। है प्रवीन जिय सम्यकवान।।६६।।

इहि विधि मंजरी लगी अनेक। ज्ञानवंत धर देख विवेक।।
जैसें द्रुम शोभै सहकार। तैसें ज्ञान गुणनके भार।।६७।।

यातैं प्रथम मंजरिका कही। इहि द्रुम शिवफल लागहि सही।।
जाके घट समकित परकाश। ताके ये गुन होंहि निवास।।६८।।

सम्यग्दर्श लहै जो जीव। सो शिवरूपी कह्यो सदीव।।
तातैं सम्यक ज्ञान प्रमान। जातें शिवफल होय निदान।।६९।।

---

१. सुप्रशाद।

दोहा

कही ज्ञानगुण मंजरी, जिनमतके अनुसार।।
जो समुझहिं ओ सरदहैं, ते पावहिं भवपार।।७०।।

यामें निज आतम कथा, आतमगुण विस्तार।।
तातैं याहि निहारिये, लहिये आतम सार।।७१।।

जो गुण सिद्ध महंतके, ते गुण निजमहिं जान।।
भैया निश्चय निरखतें, फेर रंच जिनमान।।७२।।

सत्रहसो चालीसके, उत्तम माघ हिमंत।।
आदि पक्ष दशमी सुदिन, मंगल कह्यो सिद्धंत।।७३।।

इति गुणमंजरिका

अथ लोकाकाशक्षेत्रपरिमाणकथन लिख्यते।

चौपाई

प्रणमूं परमदेवके पाय। मन वच भावसहित शिर नाय।।
लोक क्षेत्रकी गिनती कहूं। राजू भेद जहाँतैं लहूं।।१।।

घनाकार सब कह्यो बखान। त्रयशत अरु तेतालिस मान।।
ताके भेद कहूं समुझाय। श्री जिन आगमके जु पसाय[१]।।२।।

सिद्ध शिलातक गिनती करी। ऊपरिकी हद इह संग धरी।।
अहमिंदर नवग्रीव विमान। तिहँ ऊपरके सबही जान।।३।।

राजू ग्यारह घन आकार। देख्यो जिनवर ज्ञानमझार।।
ताके तरहिं सुरग वसु जान। द्विक चतुकी संख्या उर आन।।४।।

---

१. प्रसाद से।

ऊपरितें तरको दृग देहु। गनती भेद समझ कर लेहु।।
साढे अठ रज्जू द्विक एक। घनाकार सब लहहु विशेक।।५।।

दूजो द्विक साढे दश होय। तीजो साढे बारह सोय।।
चौथो साढे चउदह कह्यो। द्विक चतु भेद जिनागम लह्यो।।६।।

द्वै द्विक और कहूं विस्तार। ते राजू तेतीस निहार।।
साढे शोरह इक इक जान। इम तेतीस दुहूं द्विक मान।।७।।

सनत्कुमार महेन्द्र सुदीस। इन दुहुके साढे सैंतीस।।
अब सुधर्म ईशान विमान। तिर्यक् लोक याहि महिजान।।८।।

मेरू चूलिकातें गन लही। राजू साढे उनइस कही।।
सब गिनती ऊपरकी दीस। राजू इक सो सैंतालीस।।९।।

अब नीचें कहुं क्रमसे गुनो। जाके भेद जथारथ सुणो।।
मेरु तलवासें गण लेह। सात नरकको वरणन जेह।।१०।।

पहिली रतनप्रभा ते जान। दशराजू तिह कही बखान।।
दूजी शोलह राजू कही। तीजी नरक बीसद्वै लही।।११।।

चौथी नरक अठाइस राजु। तिह निकस्यो जिय सारे काजु।।
पंचमि नरक राजु चौतीश। छट्टी चालिस कही जगदीश।।१२।।

नरक सातवींकी मरजाद। कही छियालिस कथन अनाद।।
लोक अन्त सबतैं जो तरें। सो सब नर्क सातवीं धरै।।१३।।

सात नरककी गिनती जान। शतइक और छयानवें मान।।
सब राजू देखे जगदीस। भये तीनसै तैतालीस।।१४।।

घनाकार सब भुवनहिं जान। ऊंचौ राजू चवदह मान।।
सागर स्वयंभुरमणहिं जोय। तिहँवानहि राजू इक होय।।१५।।

पुरुषाकार कह्यो सब लोक। ताके परें सु और अलोक।।
इहि मघि त्रसनाड़ी इक जान। ताके भेद कहूं उर आन।।१६।।

चवदह राजू कही उतंग। राजू इक पोली सरवंग।।
तामहिं त्रसथावरको थान। याके परैं सु थावर मान।।१७।।

इहविधि कही जिनागम भाख। ग्रंथ त्रिलोकसारकी साख।।
धर्म ध्यानको जानहु भेद। चर्ण चतुर्थ लखहु बिन खेद।।१८।।

इतनो है यो लोकाकाश। छहों दरबको यामें वास।।
चेतन ज्ञान दरश गुण धरै। और पंथ जड़ता अनुसरै।।१९।।

रहै सदा इहि लोकमझार। तू 'भैया' निजरूप निहार।।
सत्रहसौ चालीसै सही। पौष सुदी पूनम रवि कही।।२०।।

इति लोकाकाशक्षेत्रपरिमाणकथनं।।

अथ मधुबिन्दुककी चौपाई लिख्यते।

दोहा

वंदों जिनवर जगत गुरु, वंदों सिद्ध महंत।
वंदों साधू पुरुष सब, वंदों शुद्ध सिद्धंत।।१।।

मधु बिंदुककी चौपई, कहूं ग्रंथ अनुसार।
दुख अरु सुखके उदधिको, लहिये पारावार।।२।।

काल अनादि गयो इहां, बसत यही जगमाहिं।
दुख अरु सुखसों भिन्नता, जानी कबहू नाहिं।।३।।

विषयसुखनको सुख लख्यो, तिहँ दुख लह्यो अपार।
सो जानै जिन केवली, है अनंत विस्तार।।४।।

चौपाई

इक दिन भविजन मिले सुभाय। आवत देख्यो श्रीमुनिराय।।
अट्ठाईश मूल गुण धरै। तास चरण भवि वंदन करै।।५।।

विनती करहि दूहूंकर जोर। हे प्रभु भवबंधनतैं छोर।।
तब मुनिराज धरमहित जान। जिन आगम कछु कहहिं बखान।।६।।

दोहा

भविक सुनहु उपदेश तुम, मन वच दृढकर काय।
ज्यों पावहु निज सम्पदा, संशय वेग विलाय।।७।।

इक दृष्टांत विचारिकें, कहैं सुगुरु उपदेश।।
सुनहु भविक थिरतासहित, तज अज्ञान कलेश।।८।।

चौपाई

एक पुरुष वन भूल्यो पर्‍यो। ढूंढत ढूंढत सब निशि फिर्‍यो।।
चहुं दिश अटवी झंझाकार। हीड़त कहु नहिं पावै पार।।९।।

महा भयानक सब वनराय। भटकत फिरै कछू न बसाय।।
जित देखहि तित कानन जोर। पर्‍यो महा संकट तिहँ घोर।।१०।।

सोचत वाघ सिंह जिन[1] खाय। जिन[2] कहु बैरी पकर न जाय।।
इहि विधि दुखित महावन धाय। तिहँ थानक गज निकस्यो आय।।११।।

ताकी दृष्टि पर्‍यो नर जहां। ता पकरन गज दोर्‍यो तहां।।
यह भाग्यो आगेंको जाय। पाछैं गज आवत है धाय।।१२।।

जो यह देखै दृष्टि निहार। यह तो रह्यो डगन द्वै चार।।
अब मैं भागि कहां लों जाउँ। देख्यो कूप एक तिहँ ठाउँ।।१३।।

१-२. मत।

परयो कूप मधि यहै विचार। गज पकरै तो डारै मार।।
कूप मध्य बड़ ऊग्यो एक। ताकी शाखा फली अनेक।।१४।।

तामहिं मधुमक्षिनको थान। छत्ता एक लग्यो पहचान।।
बरकी जटा लटकि तहँ रही। कूप मध्य गिरते कर गही।।१५।।

दोउकर पकर रह्यो तिहँ जोर। नीचें देखै दृष्टि मरोर।।
कूप मध्य अजगर विकराल। मुह फारे बैठ्यो जिम काल।।१६।।

वद्द निरखहि आवै मुख मांहि। तो फिर भाजि कहां लों जाहि।।
चार कौनमें नाग जु चार। बैठे तहां तेहु मुखफार।।१७।।

कब यह नर गिर है इह ठौर। गिरतें याको कीजे कौर।।
नीचें पंच सर्प लखि डरयो। तब ऊपरको मस्तक करयो।।१८।।

देखै बटकी जट[1] कहँ दोय। ऊंदरजुग[2] काटत है सोय।।
इक उज्वल इक श्याम शरीर। काटहि जटा नही तिहँ पीर।।१९।।

कूप कंठ गज शुंड प्रकार। झकझोरै वरकी बहु डार।।
पकर निशुंड चलावै ताहि। यह तो रह्यो दूर द्रुम साहि।।२०।।

बरकी शाखा हाली सबै। मधुकी बूंद गिरी इक तबै।।
इह राख्यो तबहीं मुखफार। आवत ग्रहण करी निरधार।।२१।।

झकझोरत माखी उड़ि जेह। आय लगी सब याकी देह।।
काटै तन पै वेदै नाहिं। मन लाग्यो मधु छत्ता माहिं।।२२।।

एक बूंद जब मुख महिं परै। तब दूजीपैं मनसा करै।।
लगी दृष्टि छत्तासों जाय। दुख संकटसों नहिं अकुलाय।।२३।।

---

१. जटा। २. दो चूहे।

सोरठा

तब तिहँ थानक कोय, विद्याधर आकाशमें।
जाहिं पुरुष तिय दोय, बैठे निजहि विमानमें।।२४।।

तिय निरख्यों तिहँ बार, कोउ पुरुष संकट पर्‍यो।
हे पिय! दुखहिं निवार, निराधार न कूपमें।।२५।।

दुख अपार अति घोर, पर्‍यो पुरुष संकट सहै।
कछु न चलत है जोर, हे प्रभु याहि निवारिये।।२६।।

कहै विद्याधर बैन, सुनहु प्रिया तुम सत्य यह।।
यह मानें इत चैन, निकसनको क्योंही नहीं।।२७।।

दोहा

प्रिया कहै प्रियतम सुनो, किहँ सुख मान्यो चैन।
यह अटवी यह कूप गज, अहि मखि मूसा ऐन।।२८।।

कहै विद्याधर प्रिये सुनो, मधु विंदव रस लीन।।
यह सुख मान रच्यो यहां, दुख अंगीकृत कीन।।२९।।

ए सब दुखहिं विचारके, मधुविंदवके स्वाद।
लग्यो मूढ संकट सहै, कहिवो सबही बाद।।३०।।

बहुर प्रिया कहै सुनहु प्रिय, ऐसी कबहुँ न होय।
एते संकट जो सहै, सो सुख मानै कोय।।३१।।

तातैं याको काढियें, कहै तिया समुझाय।।
विद्याधर कहै हट तजहु, पंथ अकारथ जाय।।३२।।

तीय कहै चलवो नहीं, इहि बिन काढे आज।
स्वामि वडो उपकार है, कीजे उत्तम काज।।३३।।

तिय हटविद्याधर तहां, उतर्‍यो निजहिं विमान।
आय कह्यो तिहँ नर प्रतैं, निकसि निकसि अज्ञान।।३४।।

आवै तो हम बांह गहि, तोकों लेय निकासि।
निज विमान बैठायकें, पहुंचावें तो वास।।३५।।

चौपाई

ऐसे वचन सुनत निज कान। बोलै पुरुष सुनहु हितवान[१]।।
एक बूंद छत्तासो खिरै। सो अबके मेरे मुख गिरै।।३६।।

ताको अबहीं चख सरवंग। तब मैं चलूं तुमारे संग।।
जब वह बूंद परी मुख माहिं। तब दूजी पर मन ललचाहिं।।३७।।

अब यह जो आवैगी सही। तो चलहूं कछु धोको नहीं।।
दूजी बूंद परी मुख जान। तब तीजीपर करी पिछान।।३८।।

इह विधि बूंद स्वादके काज। लाग रह्यो नहिं कछू इलाज।।
विद्याधर दै हाँक पुकार। निकसै नहीं चल्यो तब हार।।३९।।

आय विमान भयो असवार। निज थानक पहुंच्यो तिहँबार।।
तबही भवि मुनिके नमि पांय। कहा कही प्रभु कह समुझाय।।४०।।

हम नहिं समुझे यह दृष्टांत। कहहु प्रगट प्रभु सब विरतांत।।
को नर को गज को वनकूप। को अहि को वट जटा अनूप।।४१।।

को ऊंदर को मधुकी बुंद। को माखी जो दे दुखदुंद।।
कौन विद्याधर कहो समुझाय। जातैं सब संशय मिट जाय।।४२।।

दोहा

तब मुनिवर दृष्टांत विधि, कहै भविक समुझाय।
सावधान ह्वै सुनहु तुम, कहूं कथन गुणगाय।।४३।।

---

१. हितैषी

चौपाई

यह संसार महा वन जान। तामहिं भवभ्रम कूप समान।।
गज जिम काल फिरत निशदीस। तिहँ पकरन कहू विस्वावीस।।४४।।

वटकी जटा लटकि जो रही। सो आवर्द्दा जिनवर कही।।
तिहँ जर काटत मूंसा दोय। दिन अरु रैन लखहु तुम सोय।।४५।।

मांखी चूंटत ताहि शरीर। सो बहुरोगा दिककी पीर।।
अजगर पर्‍यो कूपके बीच। सो निगोद सबतैं गतिनीच।।४६।।

याकी कछु मरजादा नाहिं। काल अनादि रहै इह माहिं।।
तातैं भिन्न कही इहि ठौर। चहुं गति महितैं भिन्न न और।।४७।।

चहुं दिश चारहु महा भुजंग। सो गति चार कही सरवंग।।
मधुकी बूंद विषै सुख जान। जिहँ सुख काजरह्यो हितमान।।४८।।

ज्यों नर त्यों विषयाश्रित जीव। इह विधि संकट सहै सदीव।।
विद्याधर तहँ सुगुरु समान। दै उपदेश सुनावत कान।।४९।।

आबहु तुमहिं निकाशहिं वीर। दूर करहिं दुख संकट भीर।।
तबहू मूरख मानै नाहिं। मधुकी बूंदविषै ललचाहिं।।५०।।

इतनो दुख संकट सह रहै। सुगुरुवचन सुन तज्यो न चहै।।
तैसैं ज्ञानहीन जियवंत। ए दुख संकट सहै अनंत।।५१।।

विषै सुखन मधुविंदव काज। मानत नाहिं वचन जिनराज।।
सहत महा दुख संकट घोर। निकस न चलत वधू शिवओर।।५२।।

जिहँ थानक सुख सागर भरे। काल अनंतहु विलसहु खरे।।
जन्मजरादिक दुख मिट जाय। प्रगटै परमधरम अधिकाय।।५३।।

बहुरन कबहू संकट होय। सुख अनंत विलसहु ध्रुवसोय।।
यह उपदेश कहै मुनिराज। भव्य जीव चेतहु निजकाज।।५४।।

दोहा

सुनके वचन मुनीन्द्रके, भवि चिंतै मन माहिं।
विषयसुखनसों मगनता, कबहू कीजे नाहि।।५५।।

विषयसुखनकी मगनसों, ये दुख होंहिं अपार।
तातैं विषय विहंडिये, मन वच क्रम निरधार।।५६।।

यह विचार कर भविकजन, वंदत मुनिके पाय।
धन्य धन्य तारन तरन, जिन यह पंथ बताय।।५७।।

एतो दुख संसारमें, एतो सुख सब जान।
इम लखि भैया चेतिये, सुगुरु वचन उरआन।।५८।।

सत्रहसौ चालीसके, मारगसिर शित पक्ष।
तिथि द्वादशी सुहावनी भोमवार परतक्ष।।५९।।

मधुविंदवकी चौपई, कही ग्रंथ अनुसार।
जे समुझै वा सरदहै, ते पावहिं भवपार।।६०।।

इति मधुविंदवकी चौपई

अथ सिद्धचतुर्दशी लिख्यते।

दोहा

परमदेव परणाम कर, परम सुगुरु आराध।
परम ब्रह्म महिमा कहूं, परम धरम गुण साध।।१।।

कवित्त

आतम अनोपम है दीसै राग द्वेष बिना, देखो भव्यजीव! तुम आपमें निहारकैं। कर्मको न अंश कोऊ भर्म को न वंश कोऊ, जाकी

सुद्धताई मैं न और आप टारकैं।। जैसो शिव खते बसै तेसो ब्रह्म इहां लसै, इहां उहां फेर नाहि देखिये विचारकैं। जेई गुण सिद्धमाहि तेई गुण ब्रह्मपांहि, सिद्ध ब्रह्म फेर नाहिं निश्चय निरधारकै।।२।।

सिद्धकी समान है विराजमान चिदानंद ताहीको निहार निजरूप मान लीजिये। कर्मको कलंक अंग पंक ज्यों पखार हर्‍यो, धार निजरूप परभाव त्याग दीजिये।। थिरताके सुखको अभ्यास कीजे रैन दिना, अनुभोके रसको सुधार भले पीजिये। ज्ञानको प्रकाश भास मित्रकी समान दीसै, चित्र ज्यों निहार चित ध्यान ऐसो कीजिये।।३।।

भावकर्म नाम रागद्वेषको बखान्यो जिन, जाको करतार जीव भर्म संग मानिये। द्रव्यकर्म नाम अष्टकर्मको शरीर कह्यो, ज्ञानावर्णी आदि सब भेद भलै जानिये। नो करम संज्ञातैं शरीर तीन पावत है, औदारिक वैक्रीय आहारक प्रमानिये।। अंतरालसमै जो अहार बिना रहै जीव, नो करम तहां नाहि याहीतैं बखानिये।।४।।

सवैया

लोपहि कर्म हरै दुख भर्म सुधर्म सदा निजरूप निहारो।
ज्ञानप्रकाश भयो अघनाश, मिथ्यात्व महातम मोह न हारो।।
चेतनरूप लखो निजमूरत, सूरत सिद्धसमान विचारो।
ज्ञान अनंत बहै भगवंत, बसै अरि पंकतिसों नित न्यारो।।५।।

छप्पय छंद

त्रिविधि कर्मतें भिन्न, भिन्न पररूप परसतैं।
विविधि जगतके चिह्न, लखै निज ज्ञान दरसतैं।।
बसै आपथल माहिं, सिद्ध समसिद्ध विराजहि।
प्रगटहि परम स्वरूप, ताहि उपमा सब छाजहि।।

इह विधि अनेक गुणब्रह्ममहिं, चेतनता निर्मल लसै।।
तस पद त्रिकाल वंदत भविक, शुद्ध स्वभावहि नित बसै।।६।।

अष्टकर्मतैं रहित, सहित निज ज्ञान प्राण धर।
चिदानंद भगवान, बसत तिहुं लोक शीसपर।।
विलसत सुखजु अनंत, संत ताको नित ध्यावहि।
वेदहि ताहि समान, आयु घट माहिं लखावहि।।
इमध्यान करहि निर्मल निरखि, गुणअनंत प्रगटहिं सरव।।
तस पद त्रिकाल वंदत भविक, शुद्ध सिद्ध आतम दरव।।७।।

ज्ञान उदित गुण उदित, मुदित भई कर्म कषायें।
प्रगटत पर्म स्वरूप, ताहिं निज लेत लखायें।।
देत परिग्रह त्याग, हेत निहचै निज मानत।
जानत सिद्ध समान, ताहि उर अंतर ठानत।।
सो अविनाशी अविचल दरब, सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम।
निर्मल विशुद्ध शाश्वत सुथिर, चिदानंद चेतन धरम।।८।।

कवित्त

अरे मतवारे जीव जिन मतवारे होहु, जिनमत आन गहो जिनमत छोरकैं। धरम न ध्यान गहो धरमन ध्यान गहो, धरम स्वभाव लहो, शकति सुफोरकैं।। परसों सनेहकरो, परम सनेह करो, प्रगट गुण गेह करो मोहदल मोरकैं। अष्टा दशदोष हरो, अष्ट कर्म नाश करो, अष्ट गुण भास करो, कहूं कर जोरकैं।।९।।

वर्णमै न ज्ञान नहिं ज्ञान रस पंचनमें, फर्समें न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूं गंधमें। रूपमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कहूं ग्रंथनमें, शब्दमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कर्म बंधमें।। इनतैं अतीत कोऊ आतम स्वभाव लसै, तहाँ बसै

ज्ञान शुद्ध चेतनाके खंधमें।। ऐसो वीतरागदेव कह्यो है प्रकाशमेव, ज्ञानवंत पावै ताहि मूढ़ धावै ध्बंधमें।।१०।।

वीतरागवैन सो तो ऐनसे विराजत है, जाके परकाश निजभास पर लहिये। सूझै षट दर्व सर्व गुण परजाय भेद, देवगुरु ग्रंथ पंथ सत्य उर गहिये।। करमको नाश जामें आतम अभ्यास कह्यो, ध्यानकी हुतास अरिपंकतिको दहिये। खोल दृग देखि रूप अहो अविनाशी भूप, सिद्धकी समान सब तोपैं रिद्ध कहिये।।११।।

रागकी जु रीतसु तो बडी विपरीत कही, दोषकी जु बात सु तो महादुख दात है। इनहीकी संगतिसों कर्मबंध करै जीव, इनही संगतिसों नरक निपात है।। इनहीकी संगतिसों बसिये निगोद बीच, जाके दुखदाहको न थाह कह्यो जात है। येही जगजाल के फिरावरको बड़े भूप, इनहीके त्यागे भव भ्रम न विलात है।।१२।।

मात्रिक कवित्त

असी चार आसन मुनिवरके, तामें मुक्ति होनके दोय।
पद्मासन खड्गासन कहिये, इनबिन मुक्ति होय नहिं कोय।।
परम दिगम्बर निजरस लीनो, ज्ञान दरश थिरतामय होय।
अष्ट कर्मको थान भ्रष्टकर, शिवसंपति विलसत है सोय।।१३।।

दोहा

जैसो शिवखेतहि वसै, तैसो या तनमाहिं।।
निश्चय दृष्टि निहारतैं, फेर रंच कहुं नाहिं।।१४।।

इति सिद्धचतुर्दशी

अथ निर्वाणकांडभाषा लिख्यते।

दोहा

वीतराग वंदौं सदा, भावसहित शिरनाय।
कहूं कांड निर्वानकी, भाषा विविध बनाय।।१।।

चौपाई

अष्टापद आदीश्वर स्वामि। वासुपूज्य चंपापुरि नामि।।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार। वंदों भावभगति उर धार।।२।।

चर्म तिर्थंकर चर्म शरीर। पावापुरि स्वामी महावीर।।
शिखरसमेद जिनेश्वर बीस। भावसहित वंदो जगदीस।।३।।

वरदत औ वर इंद मुनिदं। सायरदत्त आदि गुणवृंद।।
नगर तारवर मुनि उठ[१] कोड़। वंदों भावसहित करजोड़।।४।।

श्रीगिरनार शिखर विख्यात। कोटि बहत्तर अरु सौ सात।।
संबु प्रद्युम्न कुमर द्वै भाय। अनुरुद्ध आदि नमूं तसपाय।।५।।

रामचंद्रके सुत द्वै बीर। लाड नरिंद आदि गुणधीर।।
पंचकोड़ मुनि मुक्तिमझार।। पावागिर वंदों निरधार।।६।।

पांडव तीन द्रविड़ राजान। आठकोड मुनि मुकतिप्रमान।।
श्रीशत्रुंजयगिरिके शीस। भावसहित वंदो निशदीस।।७।।

जो बलिभद्र मुकतिमें गये। आठ कोड़ि मुनि औरहिं भये।।
श्री गजपंथ शिखर सुविशाल। तिनके चरण नमूं तिहुं काल।।८।।

राम हनू सुग्रीव सुडील। गवगवाख्य नील महानील।।
कोड़ निन्याणव मुक्तिप्रमान। तुंगी गिर वंदों धर ध्यान।।९।।

---

१. साढे तीन करोड।

नंग अनंग कुमार सुजान। पंचकोड़ अरु अर्द्ध प्रवान।।
मुक्ति गये शिहुनागिरशीस। ते वंदों त्रिभुवनपति ईश।।१०।।

रावनके सुत आदि कुमार। मुक्ति भये रेवातट सार।।
कोटि पंच अरु लाखपचास। ते वंदो धर परम हुलास।।११।।

रेवानदी सिद्धवर कूट। पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।।
द्वै चक्री दश काम कुमार। औठ[१]कोडि वंदों भवपार।।१२।।

बड़वानी बड़नगर सुचंग। दक्षिण दिशि गिर चूल उतंग।।
इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण। ते वंदों भवसागर तर्ण।।१३।।

सुवरणभद्र आदि मुनि चार। पावागिरिवर शिखरमझार।।
चलना नदीतीरके पास। मुक्ति गये वंदों नित तास।।१४।।

फलहोड़ी वडगाम अनूप। पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप।।
गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहां। मुक्ति गये वंदों नित तहां।।१५।।

बाल महाबाल मुनि दोय। नाग कुमार मिले त्रय होय।।
श्रीअष्टापद मुकति मझार। ते वंदों नित सुरत संभार।।१६।।

अचला पुरकी दिशा ईशान। तहाँ मेढ़गिरि नाम प्रधान।।
साढे तीन कोटि मुनिराय। तिनके चरन नमूं चितलाय।।१७।।

वंशस्थल वनके ढिग होय। पश्चिम दिश कुंथलगिरि सोय।।
कुल भूषण देश भूषण नाम। तिनके चरणनि करहु प्रणाम।।१८।।

जसरथ राजाके सुत कहे। देश कलिंग पांचसो लहे।।
कोटि शिला मुनि कोटि प्रमान। वंदन करों जोर जुग पान।।१९।।

समवशरण श्रीपार्श्वजिनंद। रिशंदेह गिरि नयनानंद।।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज। ते वंदों नित धरम जिहाज।।२०।।

---

१. साढे तीन करोड।

तीन लोकके तीरथ जहां। नित प्रति वंदन कीजे तहां।।
मन वच भाव सहित शिर नाय। वंदन करें भविक गुण गाय।।२१।।

संवत सत्रहसो इकताल। अश्विन सुदि दशमी सुविशाल।।
'भैया' वंदन करहि त्रिकाल। जय निर्वाणकांड गुणमाल।।२२।।

इति निर्वाणकांडभाषा

अथ एकादशगुणस्थानपर्यन्तपंथवर्णन लिख्यते।

दोहा

कर्म कलंक खपायकें, भये सिद्ध भगवान।
नित प्रति वंदों भाव धर, जो प्रगटै निज ज्ञान।।१।।

कहों पंथ इह जीवके, किहँ मग आवै जाय।
गुण थानक दश एकलों, धरै जनम मृत भाय।।२।।

भव्य राशितैं निकसिकै, मुक्ति होनके काज।
चढहि गिरहि इम पंथमें, अंत होंहिं महाराज।।३।।

चौपाई

प्रथम मिथ्यात नाम गुण थान। उभय भेद ताके परवान।।
एक अनादि नाम मिथ्यात। दूजो सादि कह्यो विख्यात।।४।।

प्रथम अनादि मिथ्याती जीव। पंथ तीनको धरै सदीव।।
चौथे पंचम सप्तम जाय। गिरैतो फिर मिथ्यापुर आय।।५।।

सादि मिथ्यात्व जीव जो धरै। पंथ चार ताके विस्तरै।।
तीजै चौथे पंचम जाय। सप्तम पुरलों पहुंचै धाय।।६।।

अब दूजो सासादन नाम। ताके एक गिरनको धाम।।
मिथ्यापुरलों आवै सही। दूजी वाट न याकी कही।।७।।

तीजो मिश्रनाम गुण थान। पंथ दोय याके परमान।।
गिरै तो पहिले पुरके माहिं। चढै तो चौथे थानक जाहिं।।८।।

चौथौ है अव्रतपुर थान। पंथ पंच भाखे भगवान।।
गिरै तो तीजै दूजै जाय। मिथ्यापुरलों पहुँचै आय।।९।।

चढै तो पंचम सप्तम सही। ऐसी महिमा याकी कही।।
पंचम देशविरतपुर जान। पंथ पंच ताके उर आन।।१०।।

गिरै तो चौथे तीजै जाय। अथवा दूजै पहिले भाय।।
चढै तो सप्तम पुरके माहिं। इहि थानक अधिके कछु नाहिं।।११।।

अब षष्टम परमत्त बखान। ताके पंथ छहों पहिचान।।
गिरै तौ पंचम चौ त्रिय जाय। दूजै पहिले धरे सुभाय।।१२।।

चढै तो सप्तम पुरलों आय। ऐसे भेद कहे जिनराय।।
सप्तम अप्रमत्त पुर नाम। पंथ तीन ताके अभिराम।।१३।।

गिरै तो छठे पुरलों जाहिं। चढै तो अष्टम पुरके माहिं।।
मरन करै चौथे पुर आय। ऐसे भेद कहे समुझाय।।१४।।

अष्टम नाम अपूरव करण। शिवलोचन मधि ताकी धरण।।
गिरै तो सप्तम पुरहि अखंड। चढै तो नवमें पुर परचंड।।१५।।

मरन करै तो चौथै जाय। ऐसे कथन कह्यो मुनिराय।।
नवमों नाम अनिव्रतकर्ण। पंथ तीन ताके विस्तर्ण।।१६।।

गिरै तो अष्टम पुरके संग। चढ़ै तो दशमें होय अभंग।।
मरन करै चौथै पुर बीच। तोहू भवथिति रहै नगीच।।१७।।

सूक्ष्म सांपराय दश कहै। पंथ तीन ताके इम लहै।।
गिरै तौ नवमें पुरकी वाट। चढै इकादश उपशम घाट।।१८।।

मरन करै चौथै पुर सही। ऐसी रीति जिनागम कही।।
एकादशम मोह उपशांत। पंथ दोय तिहँ कहै सिद्धांत।।१९।।

गिरै तो दशमें पुर निरधार। मरन करै तो चौथै सार।।
ऐसे भेद जिनागममाहिं। गोमठसार ग्रंथकी छांहि।।२०।।

भाषा करहिं 'भविक' इह हेत। याके पढ़त अर्थ कह देत।।
बाल गुपाल पढ़हिं जे जीव। 'भैया' ते सुख लहहिं सदीव।।११।।

इति एकादशगुणस्थानकथनम्

अथ कालाष्टक लिख्यते।

दोहा

तिहुं पुरके पुरहूत सब, वंदत शीस नवाय।
तिहँ तीर्थंकर देवसों, वचत नाहिं यमराय।।१।।

जिनकी भ्रूके फरकतें, कंपत सुरनरवृन्द।
तेहू काल छिनमें लये, जो योधा सुर इन्द्र।।२।।

जाकी आज्ञामें रहैं, छहों खंडके भूप।।
ता चक्रीधरको ग्रसै, काल महा भयरूप।।३।।

नारायण नरलोकमें, महा शूर बलवंत।।
तीन खंड आज्ञा बहै, तिनैहु काल ग्रसंत।।४।।

औरहु भूप बलिष्ट जे, वसत याहि जगमाहिं।।
तेहु कालकी चालसों, वचत रंच कहुं नाहिं।।५।।

तातैं काल महाबली, करत सबनपै जोर।।
धन धन सिधपरमात्मा, जिहँ कीनों इहि भोर।।६।।

ऐसे काल बलिष्टको, जो जीतै सो देव।।
कहत दास भगवंतको, कीजे ताकी सेव।।७।।

काल वसत जगजालमें, नूतन करत पुरान।।
'भैया' जिहँ जग त्यागियो, नमहु ताहि धर ध्यान।।८।।

इति कालाष्टक

अथ उपदेशपचीसिका लिख्यते।

दोहा

वीतरागके चरनयुग, वंदो शीस नवाय।।
कहुं उपदेशपचीसिका, श्रीगुरुके सुपसाय।।१।।

चौपाई

वसत निगोद काल बहु गये। चेतन सावधान नहिं भये।।
दिन दश निकस बहुर फिर परना। एते पर एता क्या करना।।२।।

अनँत जीवकी एकहि काया। उपजन मरन इकत्र कहाया।।
स्वास उसास अठारह मरना। ऐते पर एता क्या करना।।३।।

अक्षरभाग अनंतम कह्यो। चेतन ज्ञान इहांलों रह्यो।।
कौन सकति कर तहां निकरना। एते पर एता क्या करना।।४।।

पृथिवी अप तेऊ अरु वाय। वनस्पतीमें वसै सुभाय।।
ऐसी गतिमें दुख बहु भरना। एते पर एता क्या करना।।५।।

केतो काल इहां तोहि गयो। निकसि फेर विकलत्रय भयो।।
ताका दुख कछु जाय न वरना। एते पर एता क्या करना।।६।।

पशुपक्षीकी काया पाई। चेतन रहे तहाँ लपटाई।।
बिना विवेक कहो क्यों तरना। एते पर एता क्या करना।।७।।

इम तिरजंच माहिं दुख सहे। सो दुख किनहू जाहि न कहे।।
पाप करमतैं इह गति परना। एते पर एता क्या करना।।८।।

फिरहू परे नरकके माहीं। सो दुख कैसें वरनें जाहीं।।
क्षेत्र गंधतें नाक जु सरना। एते पर एता क्या करना।।९।।

अग्निसमान भूमि जहँ कही। कितहू शील महा वन रही।।
सूरी सेज छिनक नहिं टरना। एते पर एता क्या करना।।१०।।

परम अधर्मी देव कुमारा। छेदन भेदन करहिं अपारा।।
तिनके बसतें नाहिं उबरना। एते पर एता क्या करना।।११।।

रंचक सुख जहँ जियको नाहीं। वसत याहि गति नाहिं अघाहीं।।
देखत दुष्ट महा भय डरना। एते पर एता क्या करना।।१२।।

पुण्ययोग भयो सुर अवतारा। फिरत फिरत इह जगतमझारा।।
आवत काल देख थर हरना। एते पर एता क्या करना।।१३।।

सुरमंदिर अरु सुखसंयोगा। निशदिन सुख संपतिके भोगा।।
छिनइक माहिं तहांते टरना। एते पर एता क्या करना।।१४।।

बहु जन्मांतर पुण्य कमाया। तब कहुं लही मनुष परजाया।।
तामें लग्यो जरा गद मरना। एते पर एता क्या करना।।१५।।

धन जोबन सबही ठकुराई। कर्म योगतैं नौनिधि पाई।।
सो स्वपनांतरकासा बरना। एते पर एता क्या करना।।१६।।

निशदिन विषय भोग लपटाना। समुझै नाहिं कौन गति जाना।।
है छिन काल आयुको चरना। एते पर एता क्या करना।।१७।।

इन विषयन केतो दुख दीनों। तबहूं तू तेही रस भीनों।।
नेक विवेक हृदै नहिं धरना। एते पर एता क्या करना।।१८।।

परसंगति केतो दुख पावै। तबहू तोकों लाज न आवै।।
वासन संग नीर ज्यों जरना। एते पर एता क्या करना।।१९।।

देव धर्म गुरु ग्रंथ न जानें। स्वपरविवेक हृदै नहिं आनें।।
क्यों होवै भवसागर तरना। एते पर एता क्या करना।।२०।।

पांचों इन्द्री अति वटपोरे। परम धर्म धन मूसन हारे।।
खांहिं पियहि एतो दुख भरना। एते पर एता क्या करना।।२१।।

सिद्ध समान न जाने आपा। तातैं तोहि लगत है पापा।।
खोल देख घट पटहिं उघरना। एते पर एता क्या करना।।२२।।

श्री जिनवचन अमल रस वानी। पीवहिं क्यों नहिं मूढ अज्ञानी।।
जातैं जन्म जरा मृत हरना। एते पर एता क्या करना।।२१।।

जो चेतै तो है यह दावो। नाही बैठे मंगल गावो।।
फिर यह नरभव वृक्षन फरना। एते पर एता क्या करना।।२४।।

'भैया' विनवहि वारंवारा। चेतन चेत भलो अवतारा।।
ह्वै दूलह शिव नारी वरना। एते पर एता क्या करना।।२५।।

दोहा

ज्ञानमयी दर्शन नमयी, चारितमयी स्वभाय।
सो परमातम ध्याइये, यहै सु मोक्ष उपाय।।२६।।

सत्रहसो इकतालके, मारगशिर शितपक्ष।
तिथि शंकर गन लीजिये, श्रीरविवार प्रतक्ष।।२७।।

इति उपदेशपचीसिका

अथ नंदीश्वरद्वीपकी जयमाला।

दोहा

वंदों श्रीजिनदेवको, अरु वंदों जिन वैन।
जस प्रसाद इह जीवके, प्रगट होंय निज नैन।।१।।

श्रीनंदीश्वर द्वीपकी, महिमा अगम अपार।
कहू तास जय मालिका, जिनमतके अनुसार।।२।।

चौपाई

एक अरब अरु त्रेसठ कोड़ि। लख चौरासी तापरि जोड़ि।।
एते योजन महा प्रमान। अष्टमद्वीप नंदीश्वर जान।।३।।

तामहि चहुं दिशि शिखरि उतंग। तिनको मान कहुं सरवंग।।
दिशि पूरव गिरि तेरह सही। ताकी उपमा जाय न कही।।४।।

मध्य एक अंजनके रंग। शिखरि उतंग वन्यो सरवंग।।
सहस चौरासी योजन मान। धूपरवत देख्यो भगवान।।५।।

ताके चहुं दिशि परवत चार। उज्ज्वल वरन महा सुखकार।।
चौसठि सहस उतंग जु होय। दधिमुख नाम कहावे सोय।।६।।

इक इक दधि मुखपरवत तास। द्वै द्वै रतिकर अचल निवास।।
इक इक अरुण वरन गिरि मान। सहस चवालिस ऊर्द्ध प्रमान।।७।।

इहविधि तेरह गिरिवर गने। ता परि चैत्य अकृत्रिम बने।।
इक इक गिरिपर इक प्रासाद[१]। ताकी रचना बनी अनाद।।८।।

इक जिनमंदिरको विस्तार। सुनहु भविक परमागम सार।।
गिरिको शिखर वरत तिहिरूप। रत्नमयी प्रासाद अनूप।।९।।

---

१. मंदिर।

इक चैत्यालय विंव प्रमान। इकसो आठ अनूपम जान।।
रत्नमणी सुंदर आकार। धनुष पंचसो ऊर्ध्व उदार।।१०।।

इम तेरह पूरव दिशि कहे। ताके भेद जिनागम लहे।।
छप्पनसो सोरह बिँब सबै। ताकी भावन भाऊँ अवै।।११।।

अनँत ज्ञान जो आतमराम। सो प्रगटहि इह मुद्रा धाम।।
लोक अलीक विलोकन हार। ता परदेशनि यह आकार।।१२।।

अनँत काललों यही स्वरूप। सिद्धालय राजै चिद्रूप।।
सुख अनंत प्रगटै इहि ध्यान। तातैं जिनप्रतिमा परधान।१३।।

जिनप्रतिमा जिनवरणे कही। जिन सादृशमें अंतर नहीं।।
सब सुरवृंद नंदीश्वर जाय। पूजहि तहां विविध धर भाय।।१४।।

'भैया' नितप्रति शीस नवाय। वंदन करहि परम गुण गाय।।
इह ध्यावत निज पावत सही। तौ जयमाल नंदीश्वर कही।।१५।।

इति नंदीश्वरजयमाला।

अथ बारहभावना लिख्यते।

चौपाई

पंच परम पद वंदन करों। मन वच भाव सहित उर धरों।।
बारह भावन पावन जान। भाऊं आतम गुण पहिचान।।१।।

थिर नहिं दीखहि नैननि वस्त। देहादिक अरु रूप समस्त।।
थिर विन नेह कौनसों करों। अथिर देख ममता परिहरों।।२।।

असरन तोहि सरन नहिं कोय। तीन लोकमहिं दृगधर जोय।।
कोऊ न तेरो राखन हार। कर्मनवस चेतन निरधार।।३।।

अरु संसार भावना एह। परद्रव्यनसों कीजे नेह।।
तू चेतन वे जड़ सरवंग। तातैं तजहु परायो संग।।४।।

एक जीव तूं आप त्रिकाल। ऊरध मध्य भवन पाताल।।
दूजो कोऊ न तेरी साथ। सदा अकेलो फिरहि अनाथ।।५।।

भिन्न सदा पुद्गलतैं रहै। भर्मबुद्धितैं जड़ता गहै।।
वे रूपी पुद्गलके खंध। तू चिनमूरत सदा अबंध।।६।।

अशुचि देख देहादिक अंग। कौन कुवस्तु लगी तो संग।।
अस्थी मांस रुधिर गद गेह। मलमूतन लखि तजहु सनेह।।७।।

आस्रव परसों कीजे प्रीत। तातैं बंध बढहि विपरीत।।
पुद्गल तोहि अपनपो नाहिं। तू चेतन वे जड़ सब आंहि।।८।।

संवर परको रोकन भाव। सुख होवेको यही उपाव।।
आवे नहीं नये जहां कर्म। पिछले रुकि प्रगटै निजधर्म।।९।।

थिति पूरी ह्वै खिर खिर जाहिं। निर्जरभाव अधिक अधिकाहिं।।
निर्मल होय चिदानंद आप। मिटै सहज परसंग मिलाप।।१०।।

लोकमांहि तेरो कछु नाहिं। लोक आन तुम आन लखांहिं।।
वह षट दर्शनको सब धाम। तू चिनमूरति आतम राम।।११।।

दुर्लभ पर दर्वनिको भाव। सो तोहि दुर्लभ है सुनि राव।।
जो तेरो है ज्ञान अनंत। सो नहिं दुर्लभ सुनो महंत।।१२।।

धर्म सुआप स्वभावहि जान। आप स्वभाव धर्म सोई मान।।
जब वह धर्म प्रगट तोहि होय। तब परमातम पद लखि सोय।।१३।।

येही बारह भावन सार। तीर्थंकर भावहिं निरधार।।
ह्वै वैराग महाव्रत लेहिं। तब भवभ्रमन जलांजुलि देहिं।।१४।।

'भैया' भावहु भाव अनूप। भावत होहु चरित शिवभूप।।
सुख अनंत विलसहु निशदीस। इम भाख्यो स्वामी जगदीस।।१५।।

इति बारह भावना।

अथ कर्मबंधके दशभेद लिख्यते।

दोहा

श्री जिनचरणाम्बुजप्रतैं, वंदहुं शीस नवाय।
कहूं कर्मके बंधको, भेद भाव समुझाय।।१।।

एक प्रकृति दश विधि बँधै, भिन्नभिन्न तस नाम।
गुण लच्छन बरनन सुनें, जागहिं आतम राम।।२।।

[१]बंधसमुच्चय भेद ये, [२]उत्कर्षण जु बढाय।
[३]शंकरमन औरहि लसै, [४]अपकर्षण घट जाय।।३।।

लावै निकट [५]उदीरणा, [६] सत्ता [७]उदय करंत।
[८]उपसम और [९]निधत्त लखि, कर्म [१०]निकांचित अंत।।४।।

चौपाई

मिथ्या अव्रत योग कषाय। बंध होय चहुं परतैं आय।।
थिति अनु भाग प्रकृति परदेश। ए बंधन विधि भेद विशेश।।५।।

प्रथमहि बंध प्रकृति जो होय। समुचैबंध कहावै सोय।।
दूजो उत्कर्षण बंध एह। थितहिं बढाय करै बहु जेह।।६।।

तीजो संकरमण जु कहाय। औरकी और प्रकृति हो जाय।।
गतिबिन और करमपैं कही। बंध उदय नाना विधि लही।।७।।

चौथो अपकर्षण इम थाय। बंध घटै अथवा गल जाय।।
पंचम करन उदीरण हेर। ल्यावै निकट उदयमें घेर।।८।।

तीजो संकरमण जु कहाय। औरकी और प्रकृति हो जाय।।
गतिबिन और करमपैं कही। बंध उदय नाना विधि लही।।७।।

चौथो अपकर्षण इम थाय। बंध घटै अथवा गल जाय।।
पंचम करन उदीरण हेर। ल्यावै निकट उदयमें घेर।।८।।

सत्ता अपनी लिये वसंत। षष्टम भेद यहै विरतंत।।
सप्तम भेद उदय जे देय। थिति पूरी कर बंध खिरेय।।९।।

अष्टम उपसम नाम कहाय। जहां उदीरन बल न बसाय।।
नवमों भेद निधत्त जु सोय। उदीरन संक्रमणन होय।।१०।।

दशमों बंध निकांचित जहां। थिति नहीं बढै घटै नहिं तहां।।
उदीरण संक्रमणन और। जिम बंध्यो रस दै तिन ठौर।।११।।

ए दश भेद जिनागम लहे। गोमठसार ग्रंथमें कहे।।
समझै धारै जे उर माहिं। तिनके चित्त विकलता नाहिं।।१२।।

गुण थानक पैं जहां जो होय। आगम देख विलोकहु सोय।।
सब संशय जियके मिट जाय। निर्मल होय चिदातमराय।।१३।।

बंध सकल पुद्गल परपंच। चेतन माहिं न दीसै रंच।।
लोक अलोक विलोकनवंत। 'भैया' वह पद प्रगट करंत।।१४।।

दोहा

ये दश भेद लखे लखहिं, चिदानंद भगवान।
जामें सुख सब सास्वते, वेदहु सिद्ध समान।।१५।।

इति कर्मबंधके दशभेदवर्णन।

अथ सप्तभंगीवाणी लिख्यते।

दोहा

बंदों श्रीजिनदेवको, बंदों सिद्ध महंत।
बंदों केवल ज्ञान जो, लोक अलोक लखंत।।१।।

सप्तभंगवाणी कहूं, जिनआगम अनुसार।
जाके समुझत समझिये, नीके भेद विचार।।२।।

चौपाई

अस्ति नास्ति गुण लच्छनवंत। प्रथम दरब यह भेद धरंत।।
ये गुण सिद्ध करनके काज। सप्त भंग भाखे मुनिराज।।३।।

प्रथम द्रव्य अस्ति नय एह। नास्ति कहै दूजी नय जेह।।
तीजी अस्तिनास्ति निहार। चौथी अवक्तव्य नय धार।।४।।

पंचमि अस्तिअवक्तव्य कही। छट्टी नास्तिअक्तव्य लही।।
सप्तमि अस्तिनास्तिअवक्तव्य। इनके भेद कहूं कछु अब्ब।।५।।

अस्ति दरबको मूल स्वभाव। नास्ति परणम निपट निनाव।।
अथवा और दरब सो नाहिं। ताहि उपेक्षा नाम कहाहिं।।६।।

अस्तिनास्ति गुण एकहि माहिं। दुहुगुण द्रवलच्छन ठहिराहिं।।
अस्ति नास्ति विन दर्व न होय। नय साधेतैं भ्रम नहिं कोय।।७।।

द्रव्यगुण वचननि कह्यो न जाय। वचन अगोचर वस्तु स्वभाय।।
जो कहुं एक अस्तिता सही। तौ दूजी नय लागै नहीं।।८।।

जो कहुं नास्तिक गुणदोउ माहिं। तौ अस्तिकता कैसैं नाहिं।।
अस्ति नास्ति दोउ एकहि बेर। कही न जाय वचनको फेर।।९।।

दुहूको एक विचार न होय। इक आगें इक पीछें जोय।।
कोउ गुण आगें पीछें नाहिं। दोउ गुण एक समयके माहिं।।१०।।

तातैं बचन अगोचर दर्व। सातों नय भाखी ए सर्व।।
नय समुझैतैं वस्तु प्रमान। नय समझे जिय सम्यकवान।।११।।

नय नहिं लखै मिथ्याती जीव। तातैं भ्रामक रहै सदीव।।
'भैया' जे नय जानहिं भेद। तिनके मिटहि सकल भ्रमखेद।।१२।।

इति सप्तभंगीवाणी।

अथ सुबुद्धिचौबीसी लिख्यते।

दोहा

चरनकमल जिनदेवके, बंदों शीस नवाय।
कहूं सुबुद्धिचौबीसिके, कछु कवित्त गुण गाय।।१।।

कवित्त

निर्वाण सागर महासाधुसु विमलप्रभ, [१]शुद्धप्रभ श्रीधर जिनेश्वर नमीजिये। सुदत्त अमलप्रभ उद्धर अंगिर सिंधु सन्मति पुष्पांजलिके चर्णचित दीजिये।। शिवगण उत्साह ज्ञानेश्वर परमेश्वर, विमलेश्वर यथार्थ नाम नित लीजिये। यशोधर कृष्ण ज्ञान शुद्धमति सिरीभद्र, अतिक्रांत शांतपद नमस्कार कीजिये।।२।।

महापद्म सुरदेव सुप्रभ जु स्वयंप्रभ, सर्वायुध जयदेव चित्तमें चितारिये। उदैदेव प्रभादेव श्रीउदंक प्रश्नकीर्त्त, जयकीर्त्त पूर्णबुद्धि हिरदै निहारियै।। नि:कषाय विमलप्रभ विपुल निर्मल चित्र, गुप्त समाधिगुप्त नाम नित धारिये। स्वयंभू कंदर्प जयनाथ विमलसु देवपाल अनंतवीर्य चौबीसी आगम जुहारिये।।३।।

पंच पर्म इष्ट सार महामंत्र नमस्कार, जपै जीव लहै पार सागर

---

१. निर्मल है प्रभा जिनकी।

भौ तीरको। रिद्धको भरै भंडार सिद्धको सुपंथ सार, लब्धिको अनोपचार सार शुद्ध हीरको।। कष्टको करै निवारदुष्ट दूर होंहिं छार, पुष्ट पर्म ब्रह्मद्वार सुष्ठु शुद्ध धीरको। पापको करै प्रहार अष्ट कर्म जैतवार, भव्यको यहै अधार ज्ञान बल वीरको।।४।।

महा मंत्र यहै सार पंच पर्म नमस्कार, भौ जल उतारै पार भव्यको अधार है। विघ्नको विनाश करै, पापकर्म नाश करै। आतम प्रकाश करै पूरबको सार है।। दुख चकचूर करै, दुर्जनको दूर करै, सुख भरपूर करै परम उदार है। तिहूं लोक तारनको आत्मा सुधारनको, ज्ञान विस्तारनको यहै नमस्कार है।।५।।

जीवद्रव्य एक देख्यो दूसरो अजीव द्रव्य, गुण परजाय लिये सबै विद्यमान है। देख्यो ज्ञान मधि जिनवर श्री वृषभ नाथ, ताके भेद कहते अनेकही विनान है।। देवनके इन्द्र जिते तिनके समूह मिले, वंदै नित्य भाव धर सदा ये विधान है। ताको सदा हमहू प्रणाम शीस नाय करैं, जाके गुणधारे मोक्ष मारग निदान है।।६।।

अनंगशेखर (३२ वर्ण, लघु गुरुके क्रमसे)

नमानि पंच नामको सुध्याय आप धामको, विडार मोह कामको सुरामकी रटा लई। कुराग दोष टारकें कषायको निवारकें, स्वरूप शुद्ध धारिके निहारकें सुधामई।। अनंत ज्ञान भानसों कि चेतना निधानसों, कि सिद्धकी समानसों सुधार ठीक यों दई। सुबुद्धि ऐसैं आयके अबंधको दिखायके, चटाक चित्त लायकें झटाक झूंठ रव्वै गई।।७।।

प्रकृत्ति आदि सातकी जहां तैं ताहि घातकी, तौ चिंता कौन बातकी मिथ्यात्वकी गढी ढई। लखी सुजात गातकी शरीर सात

धातकी, सुयामें काहु भांतिकी न चेतना कहू् भई।। अंधेरी मेट रातकी सुजानी बात प्रातकी, प्रवानी जीव जातिकी सुआप चेतना मई। सुबुद्धि ऐसैं आयकें अबंधको दिखायकें, चटाकचित्त लायकैं झटाक झूंठ रव्वै गई।।८।।

कटाक कर्म तोरके छटाक गांठि छोरके, पटाक पाप मोरके तटाक दै मृषा गई। चटाक चिह्न जानिके, झटाक हीय आनके नटाकि नृत्य भानके खटाकि नै खरी ठई।। घटाके घोर फारिके, तटाक बंध टारके अटाके राम धारकें रटाक रामकी जई। गटाक शुद्ध पानको हटाकि आन आनको, घटाकि आप थानको सटाक श्यौवधू लाई।।९।।

मनहरण (३१ वर्ण)

केऊ फिरैं कानफटा, केऊ शीस धरैं जटा, केऊ लिये भस्म वटा भूले भटकत हैं। केऊ तज जाहिं अटा, केऊ घेरें चेरी चटा, केऊ पढै पट केऊ धूम गटकत हैं।। केऊ तन किये लटा, केऊ महा दीसैं कटा केऊ, तरतटा केऊ रसा लटकत हैं। भ्रम भावतैं न हटा हिये काम नाही घटा, विषै सुख रटा साथ हाथ पटकत हैं।।१०।।

छप्पय

दुविधि परिग्रह त्याग, त्याग पुनि प्रकृति पंच दश।
गहहिं महा व्रत भार, लहहिं निज सार शुद्ध रस।।
धरहिं सुध्यान प्रधान, ज्ञान अमृत रस चक्खहिं।
सहहिं परीषह जोर, व्रत्त निज नीके रक्खहिं।।
पुनि चढहिं श्रेणि गुण थान पथ, केवल पद प्रापति करहिं।
तस चरण कमल वंदन करत, पाप पुंज पंकति हरहिं।।११।।

कवित्त (मनहरण)

भरमकी रीति भानी परमसों प्रीति ठानी, धरमकी बात जानी ध्यावत घरी घरी। जिनकी बखानी वानी सोई उर नीके आनी, निहचै ठहरानी दृढ ह्वैकें खरी खरी।। निज निधि पहिचानी तव भयौ ब्रह्म ज्ञानी, शिव लोककी निशानी आपमें धरी धरी। भौ थिति विलानी अरि सत्ता जु हठानी, तब भयो शुद्ध प्रानी जिन वैसी जे करी करी।।१२।।

तीनसै तेताल राजु लोकको प्रमान कह्यो, घनाकार गनतीको ऐसो उर आनिये। ऊंचो राजू चवदह देख्यो जिन राज जूने, तामे राजू एक पोलो पवन प्रवानिये।। तामें है निगोद राशि भरी घृतघट जैसें, उभै भेद ताके नित इतर सु जानिये। तामैं सों निकसि व्यवहार राशि चढै जीव, केई होहिं सिद्ध केई जगमें बखानिये।।१३।।

छप्पय

जो जानहिं सो जीव, जीव विन और न जानें।
जो मानहिं सो जीव, जीव विन और न मानें।।
जो देखहि सो जीव, जीव विन और न देखै।
जो जीवहि सो जीव, जीव गुण यहै विसेखै।।
महिमा निधान अनुभूत युत, गुण अनंत निर्मल लसै।
सो जीव द्रव्य पेखंत भवि, सिद्ध खेत सहजहिं बसै।।१४।।

कवित्त

अचेतनकी देहरी न कीजे तासों नेहरी, ओगुनकी गेहरी परम दुख भरी है। याहीके सनेहरी न आवें कर्म छेहरी सु, पावें दुख तेहरी जे याकी प्रीति करी है।। अनादि लगी जेहरी जु देखतही खेहरी तू,

यामें कहा लेहरी कुरोगनकी दरी है। काम गजकेहरी सुराग द्वेषके हरी तू, तामें दृग देहरी जो मिथ्यामति हरी है।।१५।।

सवैया

ज्ञान प्रकाश भयो जिनदेवको, इंद्रसु आय मिले जु तहांई।
रूपसुवर्ण महाद्युति रत्नके, कोट रचे त्रै अनादिकी नाई।।
बीस हजार जु पैड़ी विराजत, तापैं चढ्यो तिरलोक गुसांई।
देखके लोक कहै अवनीपर, सिंधु चढ्यो असमानके तांई।।१६।।

नीव धरै शिवमंदिरकी, उरमें कितनी उकतैं उपजावै।
ज्ञानप्रकाश करै अति निर्मल, ऊरधकी मति यों चित लावै।।
इन्द्रिन जीतकें प्रीति करै, परमेश्वरसों मन चाह लगावे।
देखै निहार विचार यहै, करमें करनी महाराज कहावै।।१७।।

तोहि इहां रहिबो कहु केतक, पंथमे प्रीति किये सुख स्वै है।
पोषत जाहिं पियारीसु जानकें, सो तौ नियारीये होतन छै है।।
तू इम जानत है तनही मम, सो भ्रम दूर करो दुख द्वैहै।
देह सनेह करै मत हंस, गई कर जाहिं निवाहन ह्वै है।।१८।।

कवित्त

मृग मीन सुजनसों अकारन वैर करै, ऐसे जगमाहिं जीव विधना बनाये हैं। काननमें तृन खांहिं दूर जल पीन जांहिं, बसै बनमाहिं ताहि मारनको धाये हैं।। जल माहिं मीन रहै काहूसों न कछू कहै, ताको जाय पापी जीव नाहक सताये हैं। सज्जन संतोष धरै काहूसों न बैर करै, ताको देख दुष्ट जीव क्रोध उपजाये हैं।।१९।।

अहिक्षितिपार्श्वनाथ की स्तुति कवित्त

आनंदको कंद किधों पूनमको चंद किधों, देखिये दिनंद ऐसो

नंद अश्वसेनको। करमको हरै फंद भ्रमको करै निकंद, चूरै दुख द्वंद सुख पूरै महा चैनको।। सेवत सुरिंद गुनगावत नरिंद भैया, ध्यावत मुनिंद तेहू पावैं सुख ऐनको। ऐसो जिन चंद करै छिनमें सुछंद सुतौ, ऐक्षितको इंद पार्श्व पूजों प्रभु जैनको।।२०।।

कोऊ[१] कहैं सूरसोमदेव है प्रत्यक्ष दोऊ, कोउ कहै रामचंद्र राखै आवागौनसों। कोऊ कहै ब्रह्मा बडो सृष्टिको करैया यहै, कोऊ कहै महादेव उपज्यो न जोनसों।। कोऊ कहै कृष्ण सब जीव प्रतिपाल करै, कोउ लागि रहे हैं भवानीजीके भौनसों। वही उपख्यान साचो देखिये जहाँन वीचि, वेश्याघर पूत भयो बाप कहै कौनसों।।२१।।

वीतराग नामसेती काम सब होंहि नीके, वीतराग नामसेती धामधन भरिये। वीतराग नामसेती विघन विलाय जाँय, वीतराग नामसेती भवसिंधु तरिये।। वीतराग नामसेती परम पवित्र हूजे, वीतराग नामसेती शिववधू वरिये। वीतराग नामसम हितू नाहिं दूजो कोऊ, वीतराग नाम नित हिरदैमें धरिये।।२२।।

श्रीराणापुर मंदिर का वर्णन–

देख जिनमुद्रा निजरूपको स्वरूप गहै, रागद्वेषमोहको बहाय डारै पलमें। लोकालोकव्यापी ब्रह्म कर्मसों अबंध वेद, सिद्धको स्वभाव सीख ध्यावे शुद्ध थलमें।। ऐसे वीतरागजूके बिंब हैं विराजमान,

---

१. यह कवित्त आगे सुपंथ कुपंथ पचीसी में भी आया है। इसका कारण ऐसा मालूम होता है कि इस सुबुद्धि चौबीसी के आदि में भूतभविष्यत दो चौबीसी के नमस्कार के दो कवित्त हैं। इनके बीच में वर्तमान चौबीसी को नमस्कार करने का कवित्त भी भैयाजी ने अवश्य बनाया होगा परन्तु लेखकों की भूल से कदाचित छूट जाने से किसी एक महात्मा ने यह २१वाँ कवित्त रखकर २४ की संख्या पूरी की होगी। अन्यथा दो जगह एक ही कवित्त का होना असंभव है।

भव्यजीव लहै ज्ञान चेतनके दलमें। मांझनी ओ मंडपकी रचना अनूप बनी, राणापुर रत्न सम देख्यो पुण्य फलमें।।२३।।

सुबुधि प्रकाशमें सु आतम विलासमें सु, थिरता अभ्यासमें सुज्ञानको निवास है। ऊरधकी रीतिमें प्रतीतिमें जिनेशकी सु, कर्मनकी जीतमें अनेक सुख भास है।। चिदानंद ध्यावतही निज पद पावतही, द्रव्यके लखावतही देख्यो सब पास है। वीतराग वानी कहै सदा ब्रह्म ऐसें भास, सुखमें सदा निवास पूरन प्रकाश है।।२४।।

दोहा

यह सुबुद्धि चौवीसिका, रची भगवतीदास।
जे नर पढहिं विवेकसों, तो पावहिं शिववास।।२५।।

इति श्रीसुबुद्धि चौबीसी

अथ अकृत्रिमचैत्यालयकी जयमाला।

चौपाई

प्रणमहु परम देवके पाय। मन वच भाव सहित शिरनाय।।
अकृत्रिम जिनमंदिर जहां। नितप्रति वंदन कीजे तहां।।१।।

प्रथम पताल लोकविस्तार। दश जातिनके देव कुमार।।
तिनके भवन भवन प्रति जोय। एक एक जिनमंदिर होय।।२।।

असुर कुमारनके परमान। चौसठ लाख चैत्य भगवान।।
नाग कुमारनके इम भाख। जिनमंदिर चौरासी लाख।।३।।

हेम कुमारनके परतक्ष। जिनमंदिर हैं वहत्तर लक्ष।।
विदुत कुमारनके भवनाल। लक्ष छिहत्तर नमूं त्रिकाल।।४।।

सुपर्ण कुमारनके सब जान। लक्ष बहत्तर चैत्य प्रमान।।
अगनि कुमारनके प्रासाद। लक्ष छिहत्तर बने अनाद।।५।।

बात कुमार भवन जिनगेह। लक्ष छिहत्तर बंदहु तेह।।
उदधि कुमार अनोपमधाम। लक्ष छिहत्तर करूं प्रणाम।।६।।

दीप कुमार देवके नांव। लक्ष छिहत्तर नमुं तिहँ ठांव।।
लक्ष छ्यानवें दिक्क कुमार। जिनमंदिर सो है जैकार।।७।।

ये दश भवन कोटि जहँ सात। लक्ष बहत्तर कहे विख्यात।।
तिन जिनमंदिरको त्रैकाल। वंदन करूं भवन पाताल।।८।।

मध्य लोक जिन चैत्य प्रमान। तिनप्रति बंदों मनधर ध्यान।।
पंचमेरु अस्सी जिन भौन। तिनकी महिमा बरने कौन।।९।।

बीस बहुर गजदंत निहार। तहां नमूं जिन चैत्य चितार।।
तीस कुलाचल पर्वत शीस। जिन मंदिर वंदों निशदीस।।१०।।

विजयारध पर्वतपर कहे। जिन मंदिर सौशत्तर लहे।।
शुरद्रुमन दश चैत्य प्रमान। वंदन करों जोर जुगपान।।११।।

श्रीवक्षार गिरहिं उर धरों। चैत्य असी नित वंदन करों।।
मनुषोत्तर परबत चहु ओर। नमहू चार चैत्य करजोर।।१२।।

और कहू जिनमंदिर थान। इक्ष्वाकारहिं चार प्रमान।।
कुंडलगिरिकी महिमा सार। चैत्य जु चार नमूं निरधार।।१३।।

रुचिकनाम गिरिमहा बखान। चैत्य जु चार नमूं उर आन।।
नंदीश्वर बावन गिरराव। बावन चैत्य नमहु धरभाव।।१४।।

मध्यलोक भविके मन भावन। चैत्य चारसौ और अठावन।।
तिन जिन मंदिरको निशदीस। वंदन करों नाय निज शीस।।१५।।

व्यंतर जाति असंखित देव। चैत्य असंख्य नमहुं इह भेव।।
ज्योतिष संख्यातैं अधिकाय। चैत्य असंख्य नमूं चितलाय।।१६।।

अब सुरलोक कहूं परकाश। जाके नमत जाहिं अघनाश।।
प्रथम स्वर्ग सौधर्म विमान। लाख बतीस नमूं तिहँ थान।।१७।।

दूजो उत्तर श्रेणि इशान। लक्ष्य अठाइस चैत्य निधान।।
तीजो सनत कुमार कहाय। बारह लाख नमूं धर भाय।।१८।।

चौथो स्वर्ग महेन्द्र सुठामि। लाख आठ जिन चैत्य नमामि।।
ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर दोय। लाख च्यार जिन मंदिर होय।।१९।।

लांतव और कहूं कापिष्ट। सहस पचास नमूं उत किष्ट।।
शुक्ररु महा शुक्र अभिराम। चालिस सहँसनि करूं प्रणाम।।२०।।

सतार सहस्रार सुर लोक। षट सहस्र चरनन द्यों धोक।।
आनत प्राण आरण अच्युत्त। चार स्वर्गसे सात संयुत्त।।२१।।

प्रथमहि ग्रैव चैत्य जिन देव। इकसो ग्यारह कीजे सेव।।
मध्यग्रैव एक सो सात। ताकी महिमा जग विख्यात।।२२।।

उपरि ग्रैव निब्बै अरु एक। ताहि नमूं धर परम विवेक।।
नव नव उत्तर नव प्रासाद। ताहि नमूं तजिके परमाद।।२३।।

सबके ऊपर पंच विमान। तहँ जिनचैत्य नमूं धर ध्यान।।
सब सुरलोकनकी मरजाद। कही कथन जिन वचन अनाद।।२४।।

लख चौरासी मंदिर दीस। सहस सत्याणव अरु तेईस।।
तीन लोक जिन भवन निहार। तिनकी ठीक कहूं उरधार।।२५।।

आठ कोड अरु छप्पन लाख। सहस सत्याणव ऊपर भाख।।
चहुंसे इक्यासी जिन भौन। ताहि नमूं करिकें चिन्तौन।।२६।।

धनुष पंचसो बिंबप्रमान। इकसौ आठ चैत्य प्रति जान।।
नव अरब्ब अरु कोटि पचीस। त्रेपन लाख अधिक पुनिदीस।।२७।।

सहस सताईस नवसे मान। अरु अडतालीस बिंब प्रमान।।
एती जिन प्रतिमा गन लीजे। तिनको नमस्कार नित कीजे।।२८।।

जिनप्रतिमा जिनवरके भेश। रंचक फेर न कह्यो जिनेश।।
जो जिनप्रतिमा सो जिनदेव। यहै विचार करै भवि सेव।।२९।।

अनँत चतुष्टय आदि अपार। गुण प्रगटै इहि रूप मझार।।
तातैं भविजन शीस नवाय। वंदन करहिं योग त्रयलाय।।३०।।

अकृत्रिम अरु कृत्रिम दोय। जिन प्रतिमा वंदो नित सोय।।
बारंबार शीस निज नाय। वंदन करहुं जिनेश्वर पाय।।३१।।

सत्रहसै पैंतालीस सार। भादों सुदि चउदश गुरुवार।।
रचना कही जिनागम पाय। जैजैजै त्रिभुवनपतिराय।।३२।।

दोहा

दक्षलीन गुनको निरख, मूरख मीठे वैन।
'भैया' जिनवानी सुने, होत सबनको चैन।।३३।।

इति श्रीअकृत्रिम चैत्यालयोंकी जयमाला

अथ चवदहगुणस्थानवर्त्तिजीवसंख्यावर्णन लिख्यते।

दोहा

वीतरागके चरनयुग, वंदों दोउ करजोर।
कहूं जीव गुणथानके, अष्टकर्म दलभोर।।१।।

जिहँ चलवो जिहँ पंथको, सो ढूंढै बहु साथ।
तैसें पंथिक मोक्षके, ढूंढ लेहिं जिननाथ।।२।।

चौपाई

चौदह गुण थानक परमान। जियकी संख्या कहौं बखान।।
इहि मगचलै मुकत सो होय। रहै अर्द्ध पुद्गललों कोय।।३।।

प्रथम मिथ्यात्व नाम गुणथान। जीव अनंतानंत प्रमान।।
तिनके पंच भेद विस्तार। वरनों जिन आगम अनुसार।।४।।

एक पक्ष जो गहिकैं रहैं। दूजी नय नाहीं सरदहैं।।
वो मिथ्याती मूरख जीव। ज्ञानहीन ते कहैं सदीव।।५।।

जिन आगमके शब्द उथाप। थापै निजमति वचन अलाप।।
सुजस हेत गुरुतर मनधरै। सो विपरीती भवदुख भरै।।६।।

देव कुदेव न जाने भेव। सुगुरु कुगुरुकी एकहि सेव।।
नमैं भगतिसों बिना विवेक। विनय मिथ्याती जीव अनेक।।७।।

भांति भांतिके विकलप गहै। जीव तत्त्व नाहीं सरदहै।।
शून्य हिये डोलै हैरान। सो मिथ्याती संशयवान।।८।।

गहल रूप वरतै परिणाम। दुखित महान न पावै धाम।।
जाको सुरति होय नहिं रंच। ज्ञानहीन मिथ्याती पंच।।९।।

दोहा

इनहि पंच मिथ्यात्व वश, जीव बसै जगमाहिं।
इनहिं त्याग ऊपर चढै, ते शिवपथिक कहाहिं।।१०।।

सासादन गुन थानसों, अरु अयोग परजंत।
उत्कृष्टी संख्या कहूं, भाखी श्रीभगवन्त।।११।।

चौपाई

सासादन गुणथानक नाम। बावन कोटि जीव तिहँ ठाम।।
एक अरब अरु कोटि जु चार। मिश्रनाम तीजै उरधार।।१२।।

अव्रत है चौथो गुणवंत। सात अरब जिय तहां बसंत।।
पंचम देशविरतपुर कहे। तेरह कोटि जीव जहँ लहे।।१३।।

पंच कोटि अरु त्राणवलाख। सहस अठ्याणवें ऊपरि भाख।।
द्वयसो छह जिय छट्ठे थान। परमादी मुनि कहे बखान।।१४।।

अप्रमत्त सप्तम परतक्ष। कोटि दोय अरु छयानव लक्ष।।
सहस निन्याणव इकसो तीन। एते मुनि संयम परवीन।।१५।।

उपसम श्रेणी चढै गुणवान। अष्टम नवम दशम गुण थान।।
द्वै द्वै सौ निन्याणव कहे। अठ सत्ताणव सब सरदहे।।१६।।

अष्टम क्षपक पंथ जिय कोय। शतक पंच अठ्ठाणव होय।।
नवमें गुण थानक जिय जवै। शतक पंच अठ्ठाणव सबैं।।१७।।

दशमें गुण थानक मुनिराय। शतक पंच अठ्ठाणव थाय।।
एकादश श्रेणी उपशंत। द्वैसौ अरु निन्याणव तंत।।१८।।

द्वादशमों गुण क्षीण कषाय। पंच अठाणव सब मुनिराय।।
अब तेरहमें केवल ज्ञान। तिनकी संख्या कहू् बखान।।१९।।

लाख आठ केवलि जिन सुनो। सहस अठाणव ऊपर गुनो।।
शतक पंच अरु ऊपर दोय। एते श्री केवलि जिन होय।।२०।।

अब चौदम अयोग गुण थान। पंच अठवाण सब निर्वान।।
तेरह गुण थानक जिय लहूं। सबकी संख्या एकहि कहूं।।२१।।

आठ अरब सतहत्तर कोड़। लाख निन्याणव ऊपर जोड़।।
सहस निन्याणव नव सौ जान। अरु सत्याणव सब परमान।।२२।।

जब लों जिय इह थानक माहिं। तब लों जिय जग वासि कहांहिं।।
इनहि उलंघि मुकतिमें जांहिं। काल अनंतहि तहां रहाहिं।।२३।।

सुख अनंत विलसहिं तिहँ थान। इहि विधि भाख्यो श्रीभगवान।।
भैया सिद्ध समान निहार। निजघट मांहि बहै पद धार।।२४।।

संवत सत्रह सैंतालीस। मारगसिर दशमी शुभ दीस।।
मंगल करन महा सुखधाम। सब सिद्धनप्रति करूं प्रणाम।।२५।।

इति श्रीशिवपंथ पचीसिका।

अथ पन्द्रह पात्रकी चौपाई लिख्यते।

दोहा

नमहुं देव अरहंतको, नमहुं सिद्ध शिवराय।
नमहुं साधुके चरनको, योग त्रिविधिके लाय।।१।।

पात्र कुपात्र अपात्रके, पंद्रह भेद विचार।
ताकी कछु रचना कहूं, जिन आगम अनुसार।।२।।

तीन पात्र उत्तम महा, मध्यम तीन बखान।
तीन पात्र पुनि जघन हैं, ते लीजे पहिचान।।३।।

तीन कुपात्र प्रसिद्ध हैं, अरु अपात्र पुनि तीन।
ये सब पन्द्रह भेद हैं, जानहु ज्ञान प्रवीन।।४।।

चौपाई

उत्तम माहिं महा अरु श्रेष्ठ। तीर्थंकर कहिये उत्कृष्ट।।
मुनि मुद्रामें लेहिं अहार। वह दातार लहै भव पार।।५।।

उत्तम माहिं मध्यके अंग। श्रीगणधर वरने सरबंग।।
चार ज्ञान संयुक्त प्रधान। द्वादशांगके करहिं बखान।।६।।

उत्तम माहि जघन्य जु होय। सामान्यहि मुनि बरने सोय।।
दर्वित भावित शुद्ध अनूप। परम दयाल दिगम्बर रूप।।७।।

मध्यम पात्र अणुव्रत धार। तिनके तीन भेद विस्तार।।
दर्वित भावित गुण संयुक्त। रहै पाप किरियासों मुक्त।।८।।

उत्तम ऐलक श्रावक पास। एक लंगोटी परिग्रह जास।।
मठ मंडपमें करहि निवास। एकादशम प्रतिज्ञा भास।।९।।

दूजो श्रावक क्षुल्लक नाम। कुछ अधिको परिग्रह जिहि ठाम।।
पीछी और कमंडल धरै। मध्यम पात्र यही गुण वरै।।१०।।

अरु दश प्रतिमा धारी जेह। लघु पात्रनमें बरने तेह।।
इह विधि यह पंचम गुण थान। मध्यम पात्र भेद परवान।।११।।

अब लघु पात्र कहूं समुझाय। उत्तम मध्यम जघन कहाय।।
उत्तम क्षायिक समकितवंत। जिनके भावनको नहिं अंत।।१२।।

मध्यम पात्र सु उपसम धार। जिनकी महिमा अगम अपार।।
वेदक समिकत जाकै होय। लघुपात्रनमें कहिये सोय।।१३।।

तीन कुपात्र मिथ्याती जीव। द्रव्यलिंग जो धरहिं सदीव।।
ज्ञान बिना करनी बहु करै। भ्रमि भ्रमि भवसागरमें परै।।१४।।

मुनिकी सम मुद्रा निरधार। सहै परीसह बहु परकर।।
जीव स्वरूप न जाने भेव। द्रव्य लिंगी मुनि उत्तम एव।।१५।।

मध्यम पात्र सु श्रावक भेष। दर्वित किरिया करै विशेष।।
अंतर शून्य न आतम ज्ञान। मानत है निजको गुणवान।।१६।।

जघन्य कुपात्र कहूं विख्यात। जाके उर बरतै मिथ्यात।।
समकितकीसी ऊपर रीति। अंतर सत्य नहीं परतीति।।१७।।

कहूं अपात्र दुहूं विधि भ्रष्ट। दर्वित भावित क्रिया अनिष्ट।।
परिग्रहवंत कहावै साधु। मिथ्यामत भाखै अपराध।।१८।।

श्रावक आप कहै जगमाहिं। श्रावकके गुण एकहु नाहिं।।
भक्ष्याभक्ष्य न जाने भेद। मध्य अपात्र करै बहु खेद।।१९।।

जघन्य अपात्र यहै विरतंत। कहै आपको समकितवंत।।
निहचै अरु नाहीं व्यवहार। दर्वित भावित दुहुं विधि छार।।२०।।

दर्वित गुण समकितके जेह। ग्रंथनमें बहु बरने तेह।।
तिहँ माफिक नाही जिहँ चाल। ते मिथ्याती जीव त्रिकाल।।२१।।

भावित समकित जीव सुभाय। सो निहचै जानै मुनिराय।।
कै जानै जो वेदै जीव। ऐसें गणधर कहैं सदीव।।२२।।

दोहा

इहविधि पन्द्रह पात्रके, गुण निरखै गुणवंत।
यथा अवस्थित जानके, धारहिं हिरदै संत।।२३।।

निज स्वभाव रसलीन जे, ते पहुँचे शिव ओर।
मिथ्याती भटकत फिरैं, विनवें दास किशोर।।२४।।

इति पंद्रह पात्रकी चौपाई

अथ ब्रह्मा ब्रह्म निर्णय चतुर्दशी लिख्यते।

दोहा

असिआउसा जु पंचपद, वंदों शीस नवाय।
कछु ब्रह्मा अरु ब्रह्मकी, कहूं कथा गुणगाय।।१।।

ब्रह्मा ब्रह्मा सब कहै, ब्रह्मा और न कोय।
ज्ञान दृष्टि धर देखिये, यह जिय ब्रह्मा होय।।२।।

ब्रह्माके मुखचार हैं, याहूके मुख चार।।
आँख नाक रसना श्रवण, देखहु हिये विचार।।३।।

आँख रूपको देखकर, ग्रहण करै निरधार।
रागीद्वेषी आतमा, सबको स्वादनहार।।४।।

नाक सुवास, कुवासको, जानत है सब भेद।
राचै विरचै आतमा, यों मुखबोलें वेद।।५।।

रसना पटरस भुंजती, परी रहै मुख मांहि।
रीझै खीजै आतमा, मुख यातैं ठहराहिं।।६।।

श्रवण शब्दके ग्रहणको, इष्ट अनिष्ट निवास।
मुख तो सोही प्रगट है, सुखदुख चाखै तास।।७।।

येही चारों मुख बने, चहुं मुख लेय अहार।
तातैं ब्रह्मा देव यह, यही सृष्टि करतार।।८।।

हृदय कमलपर बैठिकें, करत विविधि परिणाम।
कर्त्ता नाही कर्मको, ब्रह्मा आतम राम।।९।।

चार वेद ब्रह्मा रचे, इनहू तजे कषाय।।
शुद्ध अवस्था ये भये, यह[1] बिन शुद्धि कहाय।।१०।।

नाना रूप रचें नये, ब्रह्मा विदित कहान।
नाम कर्मजिय संगलै, करत अनेक बिनान।।११।।

ब्रह्मा सोई ब्रह्म[2] है, यामें फेर न रंच।
रचना सब याकी करी, तातैं कह्यो विरंच[3]।।१२।।

जेते लक्षण ब्रह्मके, ते ते ब्रह्मा माहि।
ब्रह्मा ब्रह्म न अंतरो, यों निश्चय ठहराहि।।१३।।

जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह बात।
'भैया' थोरे कथनमें, कही कथा विख्यात।।१४।।

इति ब्रह्मा ब्रह्म निर्णय चतुर्दशी

-----

१. ब्रह्मा। २. जीव। ३. ब्रह्मा।

अथ अनित्य पचीसिका लिख्यते।

कवित्त

नर लोकनको ईश नाग लोकनके ईश, सुरलोकहूके ईश जाको ध्यान ध्यावही। नाय नाय शीस जाहि वंदत मुनीश नित, अतिशै चौतीस ओ अनंत गुण गावही।। कौन करै जाकी रीस कर्म अरि डारै पीस, लोकालोक जाहि दीस पंथको बतावही। ताके चर्ण निश दीश वंदै भविनाय शीस, ऐसे जगदीश पुण्यवंत जीव पावही।।१।।

दोहा

पर्‍यो कालके गालमें, मूरख करै गुमान।
देहै छिनमें दाव जो, निकस जांहिंगे प्रान।।२।।

कवित्त

मिथ्यामत नासवेको ज्ञानके प्रकाशवेको, आपापर भासवेको भानसी बखानी है। छहों द्रव्य जानवेको बंधविधि भानवेको, आपापर ठानवेको परम प्रमानी है।। अनुभो बतायवेको जीवके जतायवेको काहु न सतायवेको भव्य उर आनी है। जहाँ तहाँ तारवेको पारके उतारवेको, सुख विस्तारवेको यहै जिनवानी है।।३।।

आज काल जम लेत है, तू जोरत है दाम।
लक्ष कोटि जो धर चलै, ऐहै कौनै काम।।४।।

कवित्त

पंच वर्ण वसनसो पंच वर्ण धूलि शाल, मान थंभ सत्य वैन देखे मान नाश है। दयाको निवास सोही वेदीको प्रकाश लशै, रूपेको जु कोट सु तौ नो करम भास है।। द्रव्य कर्म नाम हेम कोट मध्य राजत है, रतनको कोट भाव कर्मको विलास है। ताके मध्य चेतन सु आप

जगदीस लसै, समोसर्न ज्ञानवान देखै निजपास है।।५।।

लागो है जम जीवको, बोलत ऐसें गाजि।
आज कालमें लेत हूं, कहाँ जाहुगे भाजि।।६।।

देखहुरे दच्छ एक बात परतच्छ नयी, अच्छनकी संगति विचच्छन भुलानो है। वस्तु जो अभच्छ ताहि भच्छत है रैन दिन, पोषवेको पच्छ करे मच्छ ज्यों लुभानो है।। विनाशीक लच्छ ताहि चच्छुसों विलोकै थिर, वहै जाय गच्छ तब फिरै ज्यों दिवानो है। स्वच्छ निज अच्छको विलच्छकै न देखै पास, मोह जच्छ लागे वच्छ ऐसो भरमानो है।।७।।

जगहिं चलाचल देखिये, कोउ सांझ कोउ भोर।
लाद लाद कृत कर्मको, ना जानों किहि ओर।।८।।

नरदेह पाये कहा पंडित कहाये कहा, तीरथके न्हाये कहा तीर तो न जैहै रे। लच्छिके कमाये कहा अच्छके अघाये कहा, छत्रके धराये कहा छीनता न ऐहै रे।। केशके मुंडाये कहा भेषके बनाये कहा, जोबनके आये कहा जराहू न खैहै रे। भ्रमको विलास कहा दुर्जनमें वास कहा, आतम प्रकाश बिन पीछें पछितैहै रे।।९।।

दु:खित सब संसार है, सुखी लसै नहिं कोय।
एक सुखित जिन धर्म है, जिहँ घट परगट होय।।१०।।

नरदेह पाये कहो कहा सिद्धि भई तोहि, विषै सुख सेयें सब सुकृत गमायो है। पंच इन्द्रि दुष्ट तिन्हें पुष्टकर पोष राखै, आय गई जरा तब जोर विललायो है।। क्रोध मान माया लोभ चारों चित रोक बैठे, नरक निगोदको संदेसो वेग आयो है। खाय चल्यो गांठको कमाई कोडी एक नाहिं, तोसो मूढ दूसरो न ढूंढ्यो कहू पायो है।।११।।

जाके परिग्रह बहुत है, सो बहु दुखके माहिं।
विन परिग्रहके त्यागतैं, परसों छूटै नाहिं।।१२।।

थानी ह्वैके मानी तुम थिरता विशेष इहां, चलवेकी चिंता कछू है कि तोहि नाहिने। जोरत हो लच्छ बहु पाप कर रैन दिन, सो तो परतच्छ पांय चलवो उवाहिने।। घरीकी खबर नाहिं सामो सौ बरप कीजै, कौन परवीनता विचार देखो काहिने। आतमके काज बिना रज सम राज सुख, सुनो महाराज कर कान किन? दाहिने।।१३।।

शयन करत है रयनको, कोटिध्वज अरु रंक।
सुपनेमें दोऊ एकसे, वरतें सदा निशंक।।१४।।

मात्रिक कवित्त

नटपुर नाव नगर इक सुंदर, तामें नृत्य होंहिं चहुं ओर।
नायक मोह नचावत सबको, ल्यावत स्वांग नये नित जोर।।
उछरत गिरत फिरत फिरकी दै, करत नृत्य नानाविधि घोर।
इहि विधि जगत जीव सब नाचत, राचत नाहिं तहां सु किशोर।।१५।।

कर्मनके वस जीव है, जहँ खैंचे तहँ जाय।
ज्यों हि नचावे त्यों नचे, देख्यो त्रिभुवनराय।।१६।।

मात्रिक कवित्त

इंद्र हरे जिहँ चन्द्र हरे, सुरवृन्द्र हरे असुरादिक जोय।
ईश हरे अवनीस हरे, चक्रीश हरे बलि केशव दोय।।
शेष हरे पुर देश हरे सब, भेस हरे थितिकी गत खोय।
दास कहै शिवरास बिना, इहि काल बलीसों बली नहिं कोय।।१७।।

एक धर्म जिनदेवको, बसै जासु उर माहिं।
ताकी सरबर जगतमें, और दूसरो नाहिं।।१८।।

कवित्त

पूरवही पुण्य कहूं किये हैं अनेक विधि, ताके फल उदै आज नर देही पाई है। इहां आय विषै रस लाग्यो अति नीको तोहि, ताके संग केलि करै यहै निधि पाई है।। आगें अब कहा गति ह्वै है चिदानंद राय, चलवेकी थिति सांझ भोर माहि आई है। साथ कौन संबल न सत्तू कछु लेत मूढ, आगें कहा तोहि सुख सेज ले बिछाई है।।१९।।

द्वै द्वै लोचन सब धरै, मणि नहिं मोल कराहिं।
सम्यकदृष्टी जोंहरी, विरले इहि जगमाहिं।।२०।।

कवित्त

वर्ष सौ पचास माहिं एते सब मरजाहिं, जे जे तेरी दृष्टिविषै देखतु है बाबरे। इनमेंको कोऊ नाहिं बचवेको काल पाँहिं, राजा रंक क्षत्री और शाह उमराव रे।। जमहीकी जमा मांहि घरी पल चले जांहिं, घटै तेरी आव कछु नाहिं को उपावरे। आज काल्हि तोहूको समेट काल गाल माहिं, चाबि जैहै चेत देख पीछें नाहिं दावरे।।२१।।

जो वानी सर्वज्ञकी, तामें फेर न सार।
कल्पित जो काहू कही, तामें दोष अपार।।२२।।

जाके होय क्रोध ताके बोध को न लेश कहूं, जाके उर मान ताके गुरु को न ज्ञान है। जाके मुख माया वसै ताके पाप केई लशै, लोभके धरैया ताको आरतको ध्यान है।। चारों ये कषाय सु तौ दुर्गति ले जाये 'भैया', इहां न वसाय कछु जोर बल प्रान है। आतम अधार एक सम्यक प्रकार लशै, याहीतैं उधार निज थान दरम्यान है।।२३।।

आप निकट निज दृगनितैं, विकट चर्म दृग दोय।
जाके दृग जैसें खुलै, तैसो देखै सोय।।२४।।

अरे भव्य प्रानी जो तैं जाति निज जानी तो तू, लखि जिनवानी जामें मोक्षकी निसानी है। काहूले कुबुद्धि सानी यामें विपरीत आनी, ताहि जो पिछानी तो तू भयो ब्रह्म ज्ञानी है। जाके नांव और ठानी द्वादशांगकै बखानी, बपुरे अज्ञानी ताकी बुद्धि भरमानी है। ठौर ठौर कानी जामै रहै नाहिं सत्य पानी, कूरनके मनमानी कलिकी कहानी है।।२५।।

दोहा

यह अनित्यपच्चीसिके, दोहा कवित निहार।
भैया चेतहु आपको, जिनवानी उर धार।।२६।।

इति अनित्यपचीसिका

अथ अष्टकर्मकी चौपई लिख्यते।

दोहा

नमो देव सर्वज्ञको, वीतराग जस नाम।
मन वच शीस नवाइकें, करों त्रिविधिपरणाम।।१।।

चौपाई

एक जीव गुण धरै अनंत। ताको कछु कहिये विरतंत।।
सब गुण कर्म अछादित रहै। कैसें भिन्न भिन्न तिहँ कहैं।।२।।

तामें आठ मुख्य गुन कहे। तापें आठ कर्म लगि रहे।।
तिन कर्मनकी अकथ कहान। निहचै तो जाने भगवान।।३।।

कछु व्यवहार जिनागम साख। वर्णन करों यथारथ भाख।।
ज्ञानावरन कर्म जब जाय। तब निज ज्ञान प्रगट सब थाय।।४।।

ताके पंच भेद विस्तार। तथा अनंतानंत अपार।।
जैसें कर्म घटहि जिहँ थान। तैसो तहाँ प्रगट ह्वै ज्ञान।।५।।

जैसो ज्ञान प्रगट ह्वै जहाँ। तैसी कछु जानै जिय तहाँ।।
दूजो दर्शआवरण और। गये जीव देखहिं सब ठौर।।६।।

ताकी नौ प्रकृती सब कही। तामें शक्ति सबहि दबि रही।।
जैसो घटै आवरन जोय। तैसो तहँ देखै जिय सोय।।७।।

निराबाध गुण तीजो अहै। ताहि वेदनी ढांके रहै।।
साता और असाता नाम। तामहि गर्भित चेतन राम।।८।।

जैसी द्वै प्रकृती घट जाय। तैसी तहँ निर्मलता थाय।।
जबहि वेदनी सब खिर जाय। तब पंचमि गति पहुंचै आय।।९।।

चौथो महा मोह परधान। सब कर्मनमें जो बलवान।।
समकित अरु चारित गुणसार। ताहि ढकै नाना परकार।।१०।।

जहँ जिम घटहि मोहकी चाल। तहँ तिम प्रगट होय गुणमाल।।
ज्यों ज्यों घटै मोह जियपास। त्यों त्यों होय सत्य गुणवास।।११।।

ताकी बीस आठ विधि कही। यथा योग्य थानक सरदही।।
जगमें जंतु बसै चिरकाल। सो सब मोह अछादित बाल।।१२।।

मोह गये सब जानै मर्म। मोह गये प्रगटै निजधर्म।।
मोह गये केवलिपद होय। मोह गये चिर रहै न कोय।।१३।।

पंचम आयुकर्म जिन कहै। अवगाहन गुण रोके रहै।।
जब वे प्रकृति आवरण जाहिं। तब अवगाहन थिर ठहराहिं।।१४।।

ताकी चार प्रकृति जगनाम। जाके गये लहै शिवधाम।।
नाम कर्म षष्ठम विरतंत। करहि जीवको मूरतिवंत।।१५।।

अमूरतीक गुण जीव अनूप। तापै लगी प्रकृति जड़रूप।।
पुद्गल लगै कहावें जीव। एकेंद्र्यादिक पंच सदीव।।१६।।

उदय योग नाना परकार। चेतन वसै शरीरमझार।।
जैसें तनमें करहि निवास। तैसो नाम लहै जिय तास।।१७।।

तनकी संगति कष्ट अपार। सहै जीव संकट बहु बार।।
जामन मरन अनंता करै। ताके दुख कहु को उच्चरै।।१८।।

प्रकृति त्राणवें ताकी कही। जगत मूल येही बनि रही।।
जब ये प्रकृति सबहि खिरजाहिं। तबहि अरूपी हंस कहाहिं।।१९।।

सप्तम गोत करम जिय जान। ऊंच नीच जिय यही बखान।।
गुण जु अगुरु लघु ढाँके रहै। तातैं ऊंचनीच सब कहै।।२०।।

जब ये दोउ आवरन जांहिं। तब पहुंचै पंचमिगतिमाहिं।।
अष्टम अन्तराय अरि नाम। बल अनंत ढाँकै अभिराम।।२१।।

शकति अनंती जीव सुभाय। जाके उदै न परगट थाय।।
ज्यों ज्यों घटहि आवरण कही। त्यों त्यों प्रगट होय गुण सही।।२२।।

पांच जातिके विकट पहार। याकी ओट सबै सुख सार।।
इन बिन गये न पावै मूल। इन बिन गये रह्यो जिय भूल।।२३।।

ये सबही सुखके दरबान। येही सबके आगेवान।।
जब ये अंतराय मिट जाहिं। तब चेतन सब सुखके माहिं।।२४।।

दोहा

येही आठों कर्ममल, इनमें गर्भित हंस।।
इनकी शकति विनाशकै, प्रगट करहि निज वंस।।२५।।

इहिविधि जीव अनंत सब, बसत यही जगमाहिं।।
इनहिँ त्याग निर्मल भये, ते शिवरूप कहाहिं।।२६।।

'भैया' महिमा ब्रह्मकी, ऐसे बनी अनाद।।
यथा शक्ति कछु वरणयी, जिन आगम परसाद।।२७।।

इति अष्टकर्मकी चौपई।

अथ सुपंथकुपंथपचीसिका लिख्यते।

दोहा

केवल ज्ञान स्वरूपमें, राजत श्री जिनराय।।
तास चरन वंदन करहुं, मन वच शीस नवाय।।१।।

कहूं सुपंथ कुपंथ के, कवित पचीस बखान।।
जाके समुझत समझिये, पंथ कुपंथ निदान।।२।।

कवित्त

तेरा नाम कल्पवृच्छ इच्छाको न राखै उर, तेरो नाम कामधेनु कामना हरत है। तेरो नाम चिन्तामन चिन्ताको न राखै पास, तेरो नाम पारस सो दारिद डरत है।। तेरो नाम अम्रत पियेतैं जरा रोग जाय, तेरो नाम सुखमूल दुःखको दरत है। तेरो नाम वीतराग धरै उर वीतरागा, भव्य तोहि पाय भवसागर तरत है।।३।।

सुन जिनवानी जिहँ प्रानी तज्यो राग द्वेष, तेई धन्य धन्य जिन आगममें गाये हैं। अमृतसमानी यह जिहँ नाहिं उर आनी, तेई मूढ प्रानी भवभाँवरि भ्रमाये हैं।। याही जिनवानीको सवाद सुख चाखो जिन, तेही महाराज भये करम नसाये हैं। तातैं दृग खोल 'भैया' लेहु जिनवानी लखि, सुखके समूह सब याहीमें बताये हैं।।४।।

अपने स्वरूपको न जानै आप चिदानंद, बहै भ्रम भूलि वहै मिथ्या नाम पावै है। देव गुरु ग्रंथ पंथ सांचको न जाने भेद, जहाँ तहाँ झूठे देख मान शीस नावै है।। चेतन अचेतन द्वै हिंसा करै ठौर ठौर, बापुरे विचारे जीव नाहक सतावै है। जलके न थलके न पौन अग्नि फलके न, त्रसनि विराधि मूढ मिथ्याती कहावै है।।५।।

केई भये शाह केई पातशाह पहुमिपैं, केई भये मीर केई बडे ही फकीर हैं। केई भये राव केई रंक भये विललात, केई भये कायर औ केई भये धीर हैं।। केई भये इन्द्र केई चन्द्र छविवंत लसै, केई भये पौन अरु केई भये नीर हैं। एक चिदानंद केई स्वांगमें कलोल करै, धन्य तेही जीव जे भये तमासगीर हैं।।६।।

सवैया

परमान सबै विधि जानत है, अरु मानत है मत जे छह रे।
किरिया कर कर्मनि जोरत है, नहिं छोरत है भ्रमजे पहरे।।
उपदेश करै व्रत नेम धरै, परभावनको उर नाहिं हरे।
निज आतमको अनुभौ न करै, ते परे भवसागरमें गहरे।।७।।

सवैया मात्रिक

दुर्भर पेट भरनके कारन, देखत हो नर क्यों विललाय।
झूंठ सांच बोलत याके हित, पाप करत नहिं नेक डराय।।
भक्ष्य अभक्ष्य कछू न विचारत, दिन अरु रात मिलै सो खाय।
उत्तम नरभव पाय अकारथ, खोवत वादि जनम सब आय।।८।।

कवित्त

करता सबनके करमको कुलाल जिम, जाके उपजाये जीव जगतमें जे भये। सुर तिरजंच नर नारकी सकल जंतु, रच्यो ब्रह्मांड

सब रूपके नये नये।। तासों बैर करवेको प्रगटे कहांसों आय, ऐसे महा वली जिहँ खातिरमें ना लये। ढूंढै चहुं ओर नहिं पावै कहूं ताको ठोर, ब्रह्माजूकी सृष्टिको चुराय चोर लै गये।।९।।

चौपरके खेलमें तमासो एक नयो दीसै, जगतकी रीति सब याहीमें बनाई है। चारों गति चारों दाव फिरबो दशा विभाव, कर्मवर्ती जीव सार मिल बिछुराई है।। तीनो योग पांसे परै ताके तैसे दाव परे, शुभ जो अशुभ कर्म हार जीत गाई है। फिरवो न रह्यो जब कर्म खप जांहिं सब, पंचमि गति पावै ये 'भैया' प्रभुताई है।।१०।।

देहके पवित्र किये आतमा पवित्र होय, ऐसे मूढ भूल रहे मिथ्याके भरममें। कुलके आचारको विचारै सोई जानै धर्म, कंद मूल खाये पुण्य पापके करममें।। मूंडके मुंडाये गति देहके दगाये गति, रातनके खाये गति मानत धरममें। शस्त्रके धरैया देव शास्त्रको न जानै भेव, ऐसे हैं अवेव अरु मानत परम मैं।।११।।

नदीके निहारतही आतमा निहारयो जाय, जो पै कोउ ज्ञानवंत देखै दृष्टि धरकें। एक नीर नयो आय एक आगें चल्यो जाय, इहां थिर ठहराय रह्यो पूर भरकें।। ताहूमें कलोल कई भांतिकी तरंग उठै, विनसै पुनि ताहूमें अनेकधा उछरिकें। तैसें इह आतममें कई परिणाम होय, ऐसे परवान है अनंत शक्ति करकें।।१२।।

जगतकै जीवन जिवावै जगदीश कोउ, वाकी इच्छा आवै तब मार डारियतु है। वाहीके हुकुम सेती काज सब करै जीव, विना वाके हुकम न तृण डारियतु है।। करता सबनके करमनको वही आप, भोगता दुहूमें कौन जो विचारियतु है। करता सो भोगता कि करै और भुंजै और, याको कछु उत्तर न सूधो धारियतु है।।१३।।

जोलों यह जीवके मिथ्यात्व दृष्टि लगि रही, तौलों सांच झूंठ सूझै झूंठ सूझै सांच है। राग द्वेष विना देव ताहि कहै रागी देव, जीवको न जाने भेव, मानै तत्त्व पांच है।। वस्तुके स्वभावको न जान्यो यह सांचो धर्म, किरियाको धर्म मानै मदिराकी मांच है। सत्यारथ वानी सरवज्ञने पिछानी 'भैया', ताहि न पिछानी तोलों नाचे कर्म नाच है।।१४।।

कोऊ कहै सूर सोम देव हैं प्रत्यक्ष दोऊ, कोउ कहै रामचन्द्र राखै आवागौनसों। कोउ कहै ब्रह्मा बडो सृष्टिको करैया अहै, कोउ कहै महादेव उपज्यो न जौनसों।। कोउ कहै कृष्ण सब जीव प्रतिपाल करै, कोउ लगि रहे हैं भवानी जू के भौनसों। वही उपाख्यान सांचो देखिये जहांन बीचि, वेश्याघर पूत भयो बाप कहै कौनसों।।१५।।

सवैया इकतुकिया

निश द्यौस यहै मन लाग्यो रहै, सु मुनिन्द्रके पांय कबैं परसों। जिन देवके देखनकी रटनाजु, कहों किम जाहुं विना परसों।। कबधों शिवलोकमें जाय बसों, सुख संधि लहों सजिकें परसों।। कब जोग मिलै इम इच्छित है भवि, आजकै काल्हि किधों परसों।।१६।।

कवित्त

जाके कुल धर्म मांहिं सरवज्ञ देव नाहिं, पूछत ते कौन पांहि हिरदैकी बातको। संशै उर पूरि रहै ज्ञान गुण दूर रहै, महातम भूरि रहै लखै सार गातको।। मिथ्याकी लहरि आवै सांच कौ न पंथ पावै, जहां तहां भूलि धावै करै जीव घातको। झूठो ही पुरान मानै झूठे देव देव ठानै, जैसें जन्म अन्ध नर देखै ना प्रभातको।।१७।।

राजाके परजा सब बेटा बेटीकी समान, यह तो प्रत्यक्ष बात

लोकमें कहान है। आप जगदीस अवतार धर्‍यो धरनी पैं, कुंजनिमें केल करी जाको नाम कान्ह है।। परमेश्वर करै पर वधूसों अनाचार, कहते न आवै लाज ऐसो ही पुरान है। अहो महाराज यह कौन काज मत कीनो, जगतके डोबिवेको ऐसो सरधान है।।१८।।

स्त्रीरूपवर्णन–मात्रिक कवित्त[1]

बडी नीत लघु नीत करत है, बाय सरत बदबोय भरी।
फोडा बहुत फुनगणी मंडित, सकल देह मनु रोग दरी।।
शोणित हाड मांस मय मूरत, तापर रीझत घरी घरी।
ऐसी नारि निरखिकर केशव? 'रसिकप्रिया' तुम कहा करी।।१९।।

सवैया (मत्तगयन्द)

जो जगको सब देखत है–तुम, ताहि विलोकिकें काहे न देखो।
जो जगको सब जानतु है, तुम ताहि जु जानो तो सूधो है लेखो।।
जो जगमें थिर ह्वै सुखमानत, सो सुख वेदत कौन विशेखो।
है घटमें प्रगटै तबही, जबही तुम आप निहारके पेखो।।२०।।

कुपंथ वर्णनकवित्त

सोई तो कुपंथ जहां द्रव्यको न जाने भेद, सोईतो कुपंथ जहां लागि रहे परसैं। सोई तो कुपंथ जहां हिंसामें बखाने धर्म, सोई तो कुपंथ जहाँ कहै मोक्ष घरसें।। सोई तो कुपंथ जो [2]कुशीलीपशु देव कहै, सोई तो कुपंथ जो कुलिंगी पूजै डरसें। सोई तो कुपंथ जो सुपंथ पंथ जानै नाहिँ, बिना पंथ पाये मूढ कैसें मोक्ष दरसै।।२१।।

---

१. दंतकथा में प्रसिद्ध है कि केशवदासजी कवि जो किसी स्त्रीपर मोहित थे उन्होंने उसके प्रसन्नार्थ 'रसिकप्रिया' नामका ग्रंथ बनाया। वह ग्रंथ समालोचनार्थ 'भैया' भगोतीदासजी के पास भेजा तो उसकी समालोचना में यह कवित्त रसिकप्रियाके पृष्ठपर लिखकर के वापिस भेज दिया था।
२. गौ आदिक कुशीली पशुओं को देव मानते हैं।

झूठो पंथ सोई जहां झूठे देव देव कहै, झूठे पंथ सोई जहां झूठे गुरु मानिये। झूठो पंथ सोई जहां ग्रंथ सब झूंठे बचें, झूठो पंथ सोई जहां भ्रमको बखानिये।। झूठो पंथ सोई जहां दयाको न जाने भेद, झूंठो पंथ सोई जहां हिंसाको प्रमानिये। झूठे पंथ चले तब कैसें मोक्ष पावें अरु, बिना मोक्षपाये 'भैया' सुखी कैसें जानिये।।२२।।

सुपंथवर्णन सवैया।

पंथ वहै सरवज्ञ जहां प्रभु, जीव अजीवके भेद बतैये।
पंथ वहै जु निग्रन्थ महामुनि, देखत रूप महासुख पैये।।
पंथ वहै जहँ ग्रंथ विरोध न, आदि ओ अंतलों एक लखैये।
पंथ वहै जहाँ जीवदयावृष, कर्म खपाइकैं सिद्धमें जैये।।२३।।

पंथ वहै जहँ साधु चलै, सब चेतनकी चरचा चित लैये।
पंथ वहै जहँ आप विराजत, लोक अलोकके ईश जु गैये।।
पंथ वहै परमान चिदानंद, जाके चलै भव भूल न ऐये।
पंथ वहै जहँ मोक्षको मारग, सूधे चले शिवलोकमें जैये।।२४।।

कवित्त

केवलीके ज्ञानमें प्रमाण आन सब भासै, लोक ओ अलोकन की जेती कछु बात है। अतीत काल भई है अनागतमें होयगी; वर्तमान समैकी विदित यों विख्यात है।। चेतन अचेतनके भाव विद्यमान सबै, एक ही समैमें जो अनंत होत जात है। ऐसी कछु ज्ञानकी विशुद्धता विशेष बनी, ताको धनी यहै हंस कैसें विललात है।।२५।।

छयानवें हजार नार छिनकमें दीनी छार, अरे मन ता निहार काहे तू डरत है। छहों खंडकी विभूति छाडत न बेर कीन्ही, चमू चतुरंगनसों

नेह न धरत है।। नौ निधान आदि जे चउदह रतन त्याग, देह सेती नेह तोर वन विचरत है। ऐसी विभो त्यागत विलंब जिन कीन्हों नाहिं, तेरे कहो केती निधि सोच क्यों करत है।।२६।।

दोहा

यहै सुपंथ कुपंथके, कवित पचीस प्रसिद्ध।
'भैया' पढत विवेकसों, लहिये आतमरिद्ध।।२७।।

इति सुपंथकुपंथपचीसिका।

अथ मोहभ्रमाष्टक लिख्यते।

दोहा

परम पूज्य सर्वज्ञ है, तारन तरन त्रिकाल।
तासु चरन वंदन करों, छांडि सु आल जँजाल।।१।।

एक मोहकी मगनसों, भ्रमत सबहि संसार।
देखै अरु समझै नहीं, ऐसो गहल गँवार।।२।।

कवित्त

मोहके भरमसों करम सब करै जीव, मोहकी गहलमें जगत सब गाइये। मोह धरै देह परनेह परसों जु करै, भरमकी भूलमें धरम कहां पाइये।। चरमकी दृष्टिसों परम कहू पेखियत, मोहहीकी भूल यह भरम भ्रमाइये। चेतन अचेतनकी जाति दोऊ भिन्न भिन्न, मोह एकमेक लखै 'भैया' यों बताइये।।३।।

ब्रह्मा अरु विष्णु महादेव तीनों एक रूप, कहै परमेश्वरके अंशके बनाये हैं। विरंचि औ शंकरने आपुसमें युद्ध कीनो, खरशीस छेदन सु ग्रंथनिमें गाये हैं।। विष्णु आप आय अवतार लीनों जलमाहिं,

जल कहो काहे पैं हो काहु न बताये हैं। सृष्टि रची पीछेंकर पहिले पौन पानी होंहिं, इतनोहू ज्ञान नाहिं ऐसे भरमाये हैं।।४।।

कान्ह करी कुंजनमें केलि परनारिनसों, ऐसे व्यभिचारिन को ईश कैसें कहिये। महादेव नागे होय नाचैं सो प्रसिद्ध बात, तऊ न लजात कहै ईश अंश लहिये।। ब्रह्माने तिलोत्तमाको देख मुख चार कीन्हे, इतनों विचार नाहीं इन्है ऐसी चहिये। कहत है ईश जगदीश ए बनाये आप, इनहीकें चरण त्रिकाल गहि रहिये।।५।।

अर्जुनको तीनों लोक मुखमें दिखाये जिन, प्रद्युमन हरे सुधि कहूं न लहत हैं। शंकर जु शीस काट ढूंढत गणेशहू को, तीन लोक मैं न कहूं गज ले गहत हैं।। ब्रह्मा जू की सृष्टिको चुराय जब गये चोर, तीन लोक करे तापैं ढूंढत रहत हैं। रामचंद्र सीता सुधि पूछै पशुपक्षीनपैं, ताको लोक जगतके ईश्वर कहते हैं।।६।।

मच्छको स्वरूप धर गये जो पताल माहिं, चारों वेद चोर पास आन यहां धरे हैं। कच्छ ह्वै अठासी लक्ष योजनकी देह धरी, छोटेसे समुद्रमें मथान पीठ करे हैं।। पृथ्वीको पताल तैं लै आये आप सूअर ह्वै, सिंहको स्वरूप धार हिर्णांकुश हरे हैं। परमेश पर्मगुरु अविनाशी जोतरूप, ताहि कहैं पशु देह आय अवतरे हैं।।७।।

राम औ परशुराम आपुसमें युद्ध कीनों, दोऊ अवतारी अंश ईश्वरके लरे हैं। कृष्ण अवतार माहिं तीन लोक राखत है, द्वारका न राखसके जादों सब जरे हैं।। बौद्ध ह्वै विचारे मूढ मांस भक्षी कीने सब, पापपिंड भर भर नर्क माहिं परे हैं। बावन ह्वै जाच्यो बलि ईश्वर ह्वै लीन्हों छलि, अजहूं पातालद्वारपाल भये खरे हैं।।८।।

मात्रिक कवित्त

पंचम गुण थानक जो श्रावक, उतकृष्टी प्रतिमा धर होय।
सचित त्याग ताको जिन बोलत, एक सु पट परिग्रहमें जोय।।
साधु चतुर्दश परिग्रह राखहिं, पचखानन महिं एक न दोय।
तीर्थंकर लहि उड़द बाकुले, कहत लाज नहिं आवै लोय।।९।।

कवित्त

वापुरे विचारे मिथ्यादृष्टि जीव कहा जानै, कौन जीव कौन कर्म कैसेंके मिलाप है। सदा काल कर्मनसों एकमेक होय रहे। भिन्नता न भासी कौन कर्म कौन आप है।। यह तो सर्वज्ञ देव देख्यो भिन्न भिन्न रूप, चिदानंद ज्ञानमयी कर्म जड़ व्याप है। तिहँ भाति मोह हीन जानै सरधानवान, जैसो सर्वज्ञ देखो तै सोही प्रताप है।।१०।।

दोहा

मोहभ्रमाष्टक कवितके, दोष न लीज्यो मित्त।
'भैया' हृदय विवेकधर, कीज्यो निर्मल चित्त।।११।।

इति मोहभ्रमाष्टक

अथ आश्चर्यचतुर्दशी लिख्यते।

दोहा

नमों पदारथ सारको, निज अनुभूति प्रकाश।
सर्व द्रव्य व्यापी प्रभू, केवल ज्ञान प्रकाश।।१।।

कवित्त

देहधारी भगवान करै नाहीं खान पान, रहै कोटि पूरवलों जगमें प्रसिधि है। बोलत अमोल बोल जीभ होठ हालै नाहिं, देखै अरु

जानै सब इन्द्री न अवधि है। डोलत फिरत रहै डग न भरत कहै, परसंग त्यागी संग देखो केती रिधि है। ऐसी अचरज बात मिथ्या[१] उर कैसें मात, जानै सांची दृष्टिवारो जाके ज्ञाननिधि है।।२।।

देखत जिनंदजूको देखत स्वरूप निज, देखत है लोकालोक ज्ञान उपजायके। बोलत है बोल ऐसे बोलत न कोउ ऐसें, तीन लोक कथनको देत है बतायके।। छहों काय राखिवेकी सत्य वैन भाखिवेकी, पर द्रव्य नाखिवेकी कहै समुझायके। करम नसायवेकी आप निधि पायबेकी, सुखसों अघायवेकी रिद्धि दै लखायके।।३।।

बहिर्लापिका – छप्पय

कहा सरसुतिके कंध? कहो छिन भंगुर को है?।
काननको कहा नाम? बहुतसों कहियत जो है?।।
भूपतिके संग कहा? साधु राजै किहँ थानक?।
लच्छिय विरथी कहाँ? कहा रेसम सम वानक?।।
श्रेयांस राय कीन्हों कहा? सो कीजे भविजन ददा।
सब अर्थ अंत यह तंत सुन, वीतराग सेवहु सदा।।४।।

भावार्थ – सु न वी त रा ग से व हो स दा – इसके तीसरे और दूसरे अक्षर से बीन, चौथे और दूसरे से तन, पांचवें दूसरे से रान, छटवें दूसरे से गन, सातवें दूसरे से सेन, आठवें दूसरे से वन, नवमें दूसरे से हो न, दशवें दूसरे से सन, और ग्याहरवें दूसरे से दान, बनकर सब प्रश्नों के उत्तर निकलते हैं।

अन्तर्लापिका – छप्पय

कहो धर्म कब करै? सदा चितमें क्या धरिये?।
प्रभु प्रति कीजे कहा? दानको कहा उचरिये?।।

---

१. मिथ्याती के।

आस्रव सों किम जीत? पंच पदकों कहा गहिये?।।
गुरु शिक्षा किम रहै? इन्द्र जिनको कहा कहिये।।
सब प्रश्न वेद उत्तर कहत, जिन स्वरूप मनमें धरो।
'भैया' सुविचक्षन भविक जन, सदा दया पूजा करो।।५।।

भावार्थ - सदा दया पूजा करो - इस पद के चार शब्दों में तो पहिले चार प्रश्नों का उत्तर मिलता है। जैसे धर्म कब करै? **सदा,** चित्त में सदा क्या रक्खें? **दया** आदि, और अन्त के चार प्रश्नों का उत्तर इन्हीं चार शब्दों को उलटें पढ़नें से **(रोक, जापु, याद, दास)** से निकलता है।

अन्तर्लापिका छप्पय

मन्दिर बनवावो? मूर्ति, लाव-? सैना सिंगारहु?।
अम्बु आन? वासर प्रमाण? पहुँची नग धारहु?।।
मिश्री मंगवा? कुमुद, लाव? सरसी तन पिक्खहु?।
तौल लेहु? दत लच्छि, देहु? मुनि मुद्रा सिक्खहु?।।
सब अर्थ भेद भैया कहत, दिव्य दृष्टि देखहु खरी।
आकृत्रिम प्रतिमा निरखतसु, करि न घरी न भरी धरी।।

भावार्थ - प्रथम द्वितीय और तृतीय प्रश्न के उत्तर 'करी न' इस शब्द के तीन अर्थ करने से निकलते हैं (१. कड़ी नहीं है, २. बनवाई नहीं, ३. हाथी नहीं) दूसरे पाद के चौथे पांचवें छठवें प्रश्न के उत्तर 'घरी न' इस शब्द के तीन अर्थ (१. घड़ा नहीं, घड़ी (वाच) नहीं, ३. बनी नहीं)। इस प्रकार करने से निकलते हैं तृतीय पाद के तीन प्रश्नों का उत्तर 'भरी न' के तीन अर्थ (१. भरी नहीं गई, २. भरी नहीं, ३. जल से भरी नहीं) से निकलता है। और चतुर्थ पाद के प्रश्नों का उत्तर 'धरी न' के तीन अर्थ (१. पंसेरी

नहीं, २. रक्खी नहीं है, ३. धारण नहीं की), निकालने से मिलता है।।६।।

प्रश्न दोहा

पूछत है जन जैनको, चिदानंदसों बात।
आये हो किस देशतैं, कहो कहां को जात।।७।।

देश तो प्रसिद्ध है निगोद नाम सिंधुमहा, तीनसे तेताल राजु जाको परमान है। तहांके वसैया हम चेतनके बसवारे, बसत अनादिकाल वीत्यो बिन ज्ञान है।। तहांतैं निकस कोऊ कर्म शुभ जोग पाय, आये हम इहां सुने पुरुष प्रधान है। ताके पाँय परवेको महाव्रत धरवेको, शिष्य संग करवेको चलिवो निदान है।।८।।

एक दिन एक ठौर मिले ज्ञान चारितसों, पूछी निज बात कहां रावरो निवास है। बोले ज्ञान सत्यरूप चिदानंद नाम भूप, असंख्यात परदेश ताके पुरवास है।। एक एक देशमें अनंत गुण ग्राम बसै, तहांके बसैया हम चरणोंके दास हैं। तूहू चल मेरे संग दोऊं मिलि लूटैं सुख, मेरे आँख तेरे पांय मिलो योग खास है।।९।।

लाल वस्त्र पहिरेसों देह तो न लाल होय, लाल देह भये हंस लाल तौ न मानिये। वस्त्रके पुराने भये देह न पुरानी होय, देहके पुराने जीव जीरन न जानिये।। वसनके नाश भये देहको न नाश होय, देहके न नाश हंस नाश न बखानिये। देह दर्व पुद्गलकी चिदानंद ज्ञानमयी, दोऊ भिन्न भिन्न रूप 'भैया' उर आनिये।।१०।।

मात्रिक कवित्त

ग्यारह अंग पढै नव पूरब, मिथ्या बल जिय करहिं बखान।
दे उपदेश भव्य समुझावत, ते पावत पदवी निर्वान।।
अपने उरमें मोह गहलता, नहिं उपजै सत्यारथ ज्ञान।
ऐसे दरवश्रुतके पाठी, फिरहिं जगत भाखें भगवान।।११।।

प्रश्न कवित्त (अर्द्धाली)

दर्शन भ्रष्ट भ्रष्ट सोई चेतन, दर्शन भ्रष्ट मुक्त नहिं होय।।
चारित भ्रष्ट तरे भवसागर, यह अचरज पूछत शिशु कोय।।१२।।

उत्तर चौपाई

तेरह विधि चारित जो धरै। तिहँ विन तजे न भवदधि तरै।।
जब ये भाव करहिं उर नाश। तब जिय लहै मोक्षपद वास।।१३।।

कवित्त

मांस हाड़ लोहू सानि पूतरी बनाई काहु, चामसों लपेट तामें रोम केश लाये हैं। तामैं मलमूत भर कृमि केई कोटि धर, रोग संचै कर कर लोकमें ले आये हैं।। बोलै वह खाउं खाउं खाये बिना गिर जाऊं, आगेंको न धरों पाउं ताही पै लुभाये हैं। ऐसे भ्रम मोहने अनादिके भ्रमाये जीव, देखै परतक्ष तोउ चक्षु मानो छाये हैं।।१४।।

यह आश्चर्य चतुर्दशी, पढत अचंभो होय।।
भैया लोचन ज्ञानके, खुलत लखै सब कोय।।१५।।

इति आश्चर्यचतुर्दशी

अथ रागादिनिर्णयाष्टक लिख्यते।

दोहा

सर्व ज्ञेय ज्ञायक परम, केवल ज्ञान जिनंद।
तासु चरन वंदन करों, मन धर परमानंद।।१।।

मात्रिक कवित्त

रागद्वेष मोहकी परणति, है अनादि नहिं मूल स्वभाव।
चेतन शुभ्र फटिक मणि जैसें, रागादिक ज्यों रंग लगाव।।

वाही रंग सकल जग मोहत, सो मिथ्यामति नाम कहाव।
समदृष्टी सो लखै दुहूं दल, यथायोग्य वरतै कर न्याव।।२।।

दोहा

जो रागादिक जीवके, ह्वै कहुं मूल स्वभाव।
तो होते शिव लोकमें, देख चतुर कर न्याव।।३।।

सबहि कर्मतैं भिन्न हैं, जीव जगतके माहिं।
निश्चय नयसों देखिये, फरक रंच कहुं नाहिं।।४।।

रागादिकसों भिन्न जब, जीव भयो जिहँ काल।
तब तिहँ पायो मुकति पद, तोरि कर्मके जाल।।५।।

ये हि कर्मके मूल हैं, राग द्वेष परिणाम।
इनहीसें सब होत हैं, कर्म बन्धके काम।।६।।

चान्द्रायण छन्द (२५ मात्रा)

रागी बांधै करम भरमकी भरनसों।
वैरागी निर्वद्य स्वरूपाचरनसों।।
यहै बंध अरु मोक्ष कही समुझायके।
देखो चतुर सुजान ज्ञान उपजायके।।७।।

कवित्त

राग रु द्वेष मोहकी परणति, लगी अनादि जीव कहँ दोय।
तिनको निमित पाय परमाणू, बंध होय वसु भेदहिं सोय।।
तिनतैं होय देह अरु इन्द्रिय, तहाँ विषै रस भुंजत लोय।
तिनमें राग द्वेष जो उपजत, तिहँ संसारचक्र फिर होय।।८।।

दोहा

रागादिक निर्णय कह्यो, थोरेमें समुझाय।।
'भैया' सम्यक नैनतैं, लीज्यो सबहि लखाय।।९।।

इति रागादिकनिर्णयाष्टक

अथ पुण्यपापजगमूलपचीसिका लिख्यते।

दोहा

परमातम परतक्ष है, सिद्ध सकल अरहंत।
नितप्रति वंदों भावधर, कहूं जगत विरतंत।।१।।

कवित्त

स्वामी श्रीमंधरजीके पाय पर ध्यान धर, वीनती करत भवि दोऊ कर जोरकें। तुम जगदीश जग ईश तिहुं लोकनके, भक्त जन संग किन लेहु अघ तोरकें।। देव सरवज्ञ सब जीवोंकी करत रक्षा, जीवनकी जाति हम कहैं मद छोरकें। सेव इहिविधि करैं नाम हिरदैमें धरैं, जपैं जिनदेव जिनदेव बल फोरकें।।२।।

आगे मद माते गज पीछें फोज रही सज, देखें अरि जाय भज बसै बन बनमें। ऐसे बल जाके संग रूप तो बन्यो अनंग, चमू चतुरंग लखि कहै धन धन मैं।। पुण्य जब खिस जाय पर्‍यो पर्‍यो विललाय, पेट हू न भर्‍यो जाय पाप उदै तनमें। ऐसी ऐसी भांतिकी अवस्था कई धरै जीव, जगतके वासी देखे हांसी आवै मनमें।।३।।

चामके शरीर माहिं वसत लजात नाहिं, देखत अशुचि तोउ लीन होय तनमें। नारि बनी काहे की विचार कछू करै नाहिं, रीझि रीझि मोह रहै चामके वदनमें।। लछमीके काज महाराज पद छांड

देत, डोलत है रंक जैसें लोभकी लगनमें। तनकसी आयुपै उपाय कई कोटि करै, जगतके वासी देखे हांसी आवै मनमें।।४।।

छप्पय

पुण्य उदय जब होय, जीव नर देही पावै।
पुण्य उदय जब होय, तबहिं घर लछमी आवै।।
पुण्य उदय जब होय, सवै जिय हुकुम चलावै।
पुण्य उदय जब होय, तवै शिर छत्र धरावै।।
जब पुण्य उदय खिस जाय अरु, पाप उदय आवै निकट।
तब परै नरकमें जीव यह, सहै घोर संकट विकट।।५।।

पाप उदय परतच्छ, इच्छ नहिं पूजै मनकी।
पाप उदय परतच्छ, विथा वहु बाढ़ै तनकी।।
पाप उदय परतच्छ, लच्छ घरमें नहिं आवै।
पाप उदय परतच्छ, जीव बहु संकट पावै।।
जब पाप उदय मिट जाय अरु, पुण्य उदय आवै प्रबल।
तब वही जीव सुख भोगवै, उथल पथल इम जगत थल।।६।।

कवित्त

पापके कियेसों हंस मलिन निकृष्ट होय, यह तौ न बूझै कोई पाप ही करत हैं। जल थल जीवमयी कहै वेद स्मृति माहिं पाँय तल जीव वसै छूयेतैं मरत हैं।। छोटे बड़े देहधारी सबमें विराजै विष्णु, ताके तौ विनासे पाप कैसे न भरत हैं। इतनों विचार नाहिं पाप किये मुक्ति जाँय, ताहीतैं अज्ञानी जीव नर्कमें परत हैं।।७।।

नागरिन[१] संग केई सागरन केलि करी, राग रंग नाटक सों तोऊ

१. देवांगनावों के।

न अघाये हो।। नर देह पाय तुम आयु पल्य तीन पाई, तहांहू विषै किलोल नानाभाँति गाये हो।। जहां गये तहां तुम विषैसों विनोद कीन्हों, ताहीतैं नरकमें अनेक दुख पाये हो। अजहू सम्हारि विषै डार क्यों न चिदानंद, जाके संग दुःख होय ताहीसों लुभाये हो।।८।।

जहां तोहि चलवो है साथ तू तहां को ढूंढि, इहां कहां लोगनसों रह्यो तू लुभाय रे। संग तेरे कौन चलै देख तू विचार हिये, पुत्र कै कलत्र धन धान्य यह काय रे।। जाके काज पाप कर भरत है पिंड निज, ह्वै है को सहाय तेरे नर्क जब जाय रे। जहां तौ अकेलो तूही पाप पुण्य साथी दोय, तामें भलो होय सोई कीजे हंसराय रे।।९।।

जौलों तेरे ज्ञान नैन खुले नाहिं चिदानंद, तौलों तुम मोह वश सूरदास[१] ह्वै रहे। हरके पराये प्रान पोषत हो देह निज, कहो यह कौन धर्म कौन पंथ लै रहे।। पापके कियेसों कछु पुण्य नाही ह्वै है तोहि, एतो हू विचार नाही ऐसे ज्ञान ख्वै रहे। नर्कमें परैगो कौन? संकट सहैगो कौन, अजहूं सम्हारो क्यों न कौन नींद स्वै रहे।।१०।।

सरवज्ञ देवजूकी सेव करै सब इन्द्र, तिनहूके कवला अहार नाहीं लीजिये। मुनि होंय लब्धिधारी ते चलें अकाश माहिँ, केवलीको भूमचारी ऐसे क्यों कहीजिये।। जाके देखे वैरभाव जाहिं सब जीवनके, ताके आगें साधु जरै कैसें के पतीजिये। ऐसो मिथ्यावन्तने बनाय कहू तन्त लिखो, संत ह्वै सचेत यों विवेक हिये कीजिये।।११।।

पंचमें जो गुण थान भाव जो विशुद्ध होंय, चढै जिय सातवें प्रसिद्ध यह बात है। छट्टो गुण थानक जा तियको न होय कहूं, नगन न रहि सकै लज्जावंत गात है।। मनपर्जय ज्ञान हू, मनै कियो सरवज्ञ,

१. अंध।

ध्यानहूको योग नाहीं चढि कैसें जात है। तासों कहै तीर्थंकर पद पाय मुक्ति भई, ऐसे मिथ्यावादिनसों कैसेंके बसता है।।१२।।

सोवत अनादि काल वीत्यो तोहि चिदानंद, अजहू सम्हार किन मोह नींद खोयकें। सोयो तू निगोद मांहि ज्ञान नैन मूंद आप, सोयो पंच थावरमें शक्तिको समोयके[१]।। विकलत्रै देह पाय तहां तूही सोय रह्यो, सोयो न प्रमान धर वाही रूप होयके।। पंच इन्द्री विषै माहिं मग्न होय सोय रह्यो, खोयो तैं अनंतो काल याही भाँति सोय कैं।।१३।।

[२]चाद्रायण छंद

पुण्यपापको खेल, जगतमें वनि रह्यो।
इनहीके परसाद, सुखी दुखिया कह्यो।।
दोउ जगतके मूल, विनाशी जानिये।
इनहीतें जो भिन्न, सुखी सो मानिये।।१४।।

मोह मगन संसार, विषय सुखमें रहै।
करै न आप सम्हार, परिग्रह संग्रहै।।
जाने यह थिर वास, नाश नहिं होयगो।
पाके मानुष जन्म, अकारथ खोयगो।।१५।।

देवधर्म परतीति, परीक्षा सांच की।
सीखै नाहिं सुदृष्टि, रतन अरु कांचकी।।
जन्म अकारथ जाय, सुनो मन बावरे।
पीछें फिर पछताय, बहुर नहिं दावरे।।१६।।

---

१. संकोचकें। २. न जानें सब प्रतियों में इसको 'अरिल्ल' क्यों लिखा है। अरिल्ल १६ मात्रा का होता है और इसमें २१ मात्रा हैं, इसे 'तिलोकी' भी कहते हैं।

पुण्य पाप परतक्ष, दोउ जगमूल है।
इनहीसें संसार, भरमकी भूल है।।
केवल शुद्ध स्वभाव, लखै नहिं हंसको।
ताही तैं द्रुम होय, करमके वंशको।।१७।।

शुद्ध निरंजन देव, सदा निज पास है।
ताको अनुभव करो, यही अरदास है।।
कबहू भूल न जाहु, पुण्य अरु पापमें।
केवल ज्ञान प्रकाश, लहोगे आपमें।।१८।।

पुण्य पाप विन जीव, न कोई पाइये।
औरनकी कहा चली, जिनेश्वर गाइये।।
येही जगके मूल, कहे समुझायके।
जो इनसेती भिन्न, वसै शिव जायके।।१९।।

कवित्त

कर्मन के हाथ ये विकाये जग जीव सवैं, कर्म जोई करै सोई इनके प्रमान है। वैक्रिय शरीर पाय देव आप मान रहे, देवनकी रीति करै सुनै गीत गान है।। औदारिक देह पाय नर नारी रूप भये, कीन्हीं वह रीति मानों पिये मद पान है। नरकमें गये तहां नारकी कहाये आप, ऐसे चिदानंद भैया देख्यो ज्ञानवान है।।२०।।

दोहा

राम श्याम कित होत है, सो गति लहै न गूढ़।
धोय चामकी देहको, शुचि मानत है मूढ़।।२१।।

कहा चर्मकी देहमें, परम परे हो आन।
देखो धर्म संभारिकें, छांड भरमकी वान।।२२।।

करम करत है भरमतैं, धरम तुम्हारो नाहिं।
परम परीक्षा कीजिये, शरम कहा इहि माहिं।।२३।।

करन[१] भरनतें होयगो, परन नरकके माहिं।
ज्ञान चरनके धरन बिन, तरन तुम्हारो नाहिं।।२४।।

सरन सदा ढूंढत रहै, मरन बचावहि कोय।
डरन प्रान निकसे परें, तरन कहांसों होय।।२५।।

जीव कौन पुद्गल कहा, को गुण को परजाय।
जो इतनो समुझै नहीं, सो मूरख शिरराय।।२६।।

पुण्य पाप वश जीव सब, वसत जगतमें जान।
'भैया' इनतैं भिन्न जो, ते सब सिद्ध समान।।२७।।

इति पुण्यपापजगमूलपचीसिका

अथ बावीस परीसहनके कवित्त लिख्यते।

दोहा

पंच परम पद प्रणमिके, प्रणमों जिनवर वानि।
कहों परीसह साधुकी, विंशति दोय वखानि।।१।।

कवित्त

धूप सीत क्षुधाजीत तृषा डंस भयभीत, भूमिसैन बधवंध सहै सावधान है। पंथत्रास तृणफांस दुरगंध रोगभास, नगनकी लाज रति जीते ज्ञानवान है।। तीय मानअपमान थिर कुवच नबान, अजाची अज्ञान प्रज्ञा सहित सुजान है। अदर्शन अलाभ ये परीसह हैं वीस द्वै, इन्है जीतै सोई साधु भाखे भगवान है।।२।।

---

१. इन्द्रिय।

१. ग्रीष्मपरीसह

ग्रीषमकी ऋतुमाहिं जलथल सूख जांहिं, परतप्रचंड धूप आगिसी बरत है। दावाकीसी ज्वाल माल वहज बयार अति, लागत लपट कोऊ धीर न धरत है।। धरती तपत मानों तवासी तपाय राखी, बड़वा अनल सम शैल जो जरत है। ताके शृंग शिलापर जोर जुग पांव धर, करत तपस्या मुनि करम हरत है।।३।।

२. शीतपरीसह

शीतकी सहाय पाय पानी जहां जम जाय, परत तुषार आय हरे वृक्ष झाढ़े हैं। महा कारी निशा माहिं घोर घन गरजाहिं, चपलाहू चमकाहिं तहां दृग गाढ़े हैं।। पौनकी झकोर चलै पाथ रहैं तेहू हिलै, ओरानके ढेर लगे तामें ध्यान बाढ़े हैं। कहां लों बखान कहों हेमाचलकी समान, तहां मुनिराय पांय जोर दृढ़ ठाढ़े हैं।।४।।

जोग देके जोगीश्वर जंगल में ठाढ़े भये, वेदनीके उदैतैं परीसहै सहत हैं। कारी घन घटा लागै भारी भयानक अति, गाज विज्जु देखे धीर कोऊ न गहत हैं।। मेहकी भरन परै मूसरसी धार मानो, पानैकी झकोर किधों तीर से बहत हैं। ऐसी ऋतु पावसमें पावत अनेक दु:ख, तऊ तहाँ सुख वेद आनंद लहत हैं।।५।।

३. क्षुधापरीसह

जगतके जीव जिहँ जोर जीतराखे अरु, जाके जोर आगें सब जोरावर हारे हैं। मारत मरोरे नहिं छोरे राजारंक कहूं, आंखिन अंधेरी ज्वर सब दे पधारे हैं। दावाकीसी ज्वाला जो जराय डारै छाती छवि, देबनको लागे पशुपंछी को विचारे हैं। ऐसी क्षुधा जोर भैया कहित कहां लों और, ताहि जीत मुनिराज ध्यान थिर धारे हैं।।६।।

४. तृषापरीसह

धूप की धखनि परै आगसो शरीर जरै, उपचार कौन करै दहै द्वार आनके। पानीकी पियास जेती कहै को बखान तेती, तीनों जोग थिरसेती सहै कष्ट जानके।। एक छिन चाह नाहिं पानीके परीसे माहिं, प्रान किन नाश जाहिं रहै सुख मानके। ऐसी प्यास मुनि सहै तब जाय सुख लहै, 'भैया' इहिभाँति कहै बंदिये पिछानके।।७।।

५. डाँस मस्कादिपरीसह

सिंह सांप ससा स्याल सूअर ओ स्वान भालु, बाघ वीछी वा नर सु बाजने सताये हैं। चीता चील्ह चरख चिरैया चूहा चेंटी चैंटा, गज गोह गाय जो गिलहरी बताये हैं।। मृग मोर मांकरी सु मच्छर ओ मांखी मिल, भौंरा भौंरी देख कै खजूरा खरे धाये हैं। ऐसे डंस मसकादि जीव हैं अनेक दुष्ट, तिनकी परीसे जीते साधुजू कहाये हैं।।८।।

६. शय्यापरीसह

शुद्ध भूमि देख रहै दिनसेती योग गहै, आसन सु एक लहै धरै यह टेक है। कैसो किन कष्ट परै ध्यानसेती नाहिं टरै, देहको ममत्व हरै हिरदै विवेक है।। तीनों योग थिरसेती सहत परीसे जेती, कहै को बखान तेती होंय जे अनेक हैं। ऐसे निशि शैन करै अचल सु अंग धरै, भव्य ताकें पाँय परै धन्य मुनि एक हैं।।९।।

७. वधबंधपरीसह

कोऊ बांधो कोऊ मारो कोऊ किन गहडारो, सबनके संकट सुबोधतैं सहतु है। कोऊ शिर आग धरो कोऊ पील प्रान हरो, कोऊ काट टूक करो द्वेष न गहतु है।। कोऊ जल माहिं बोरो कोऊ लेके अंग तोरो, कोऊ कह चोर मोरो दुख दे दहतु है। ऐसे बधबंधके

परीसहको जीतै साधु, 'भैया' ताहि बार बार वंदना कहतु है।।१०।।

८. चर्यापरीसह – छप्पय

जब मुनि करहिं विहार, पंथ पग धरहिं परक्खत।
ऊठ[१] हाथ परवान, दृष्टि जुग भूमि परक्खत।।
चलत ईरज्या समिति, पंच इन्द्रिय वश कीनें।
दशहु दिशा मन रोक, एक करुणारस भीनें।।
इम चलत पूज्य मुनिराज जब, होय खेद संकट विकट।
तिहँ सहहिं भाव थिर राखके, तव धावें भव उदधितट।।११।।

९. तृणफांसपरीसह – छप्पय

परत आंखि महँ कछुक, काढि नहिं डारत तिनको।
चुभत फांस तन मांहि, सार नहिं करते जिनको।।
लागत चोट प्रचंड, खेद नहिं कहू जनावत।
बाणादिक बहु शस्त्र, कहत कहु पार न आव।।
इम सहत सकल दुख देह दमि, रागादिक नहिं धरत मन।
भैया त्रिकाल वंदत चरन, धन्य धन्य जग साधु धन।।१२।।

१०. ग्लानिपरीसह – छप्पय

लगत देहमें मैल, धोय नहिं तिनको झारत।
देहादिकतैं भिन्न, शुद्ध निज रूप विचारत।।
जल थल सब जिय जंत, संत ह्वै काहि सताऊं।
सबही मोहि समान, देत दुख मैं दुख पाऊं।।
इम जान सहत दुरगंध दुख, तब गिलान विजयी भवत।
'भैया' त्रिकाल तिहँ साधु के, इंद्रादिक चरनन नमत।।१३।।

---

१. साढ़े तीन हाथ।

११. रोगपरीसह – छप्पय

वात पित्त कफ कुष्ट, स्वास अरु खाँस खैण गनि।
शीत ताप शिरवाय, पेट पीड़ा जु शूल भनि।।
अतीसार अधशीस, अरश जो होय जलंधर।
एकांतर अरु रुधिर, बहुत फोड़ा जु भगंदर।।
इम रोग अनेक शरीरमहिं, कहत पार नहिं पाइये।
मुनिराज सबन जीते रहैं, औषधि भाव न भाइये।।१४।।

दोहा

ये एकादश वेदिनी, कर्म परीसह जान।
मोहसहित बलवान हैं, मोह गये बलहान।।१५।।

१२. नग्नपरीसह – कवित्त

नगनके रहिवेको महा कष्ट सहवेको, कर्मवन दहवेको बड़े महाराज हैं। देह नेह तोरवेको लोक लाज छोरवेको, पर्म प्रीति जोरवेको जाको जोर काज हैं।। धर्म थिर राखवेको परभाव नाखवेको, सुधारस चाखवेको ध्यानकी समाज हैं। अंबरके त्यागेसों दिगम्बर कहाये साधु, छहों कायके आराध यातैं शिरताज हैं।।१६।।

१३. रतिअरतिपरीसह – कवित्त

आंखनिकी रति मान दीपक पतंग परै, नासिकाकी रतिमान भ्रमर भुलाने हैं। काननकी रतिमृग खोवत है प्राण निज, फरसकी रति गज भये जो दिवाने हैं।। रसनाकी रति सब जगत सहत दुख, जानत है यह सुख ऐसें भरमाने हैं।। इँद्रिनकी रति मान गति सब खोटी करै, ताहि मुनिराज जीत आप सुख माने हैं।।१७।।

छप्पय

प्रकृति विरोध अहार, मिले मुनि जो दुख पावै।
सोहि अरति परिणाम, तहाँ समता रस भावै।।
औरहु परसंयोग, होत दुख उपजै तनमें।
तहां अरति परनाम, त्याग थिरता धरै मनमें।।
इम सहत साधु दुख पुंज बहु, तबहु क्षमा नहिं उर टरत।
'भैया' त्रिकाल मुनिराज सो अरतिजीत शिवपद वरत।।१८।।

१४. स्त्रीपरीसह – कवित्त

नारिके निहारत विचार सब भूलि जांय, नारीके निहारे परिणाम फिरे जात हैं। नारिके निहारत अज्ञान भाव आय झुकै, नारिके निहारत ही शील गुणघात हैं।। नारिके निहारत न सूरवीर धीर धरै, लोहनके मार जे अडिग ठहरात हैं। ऐसी नारि नागनिके नैनको निमेष जीत, भये हैं अजीत मुनि जगत विख्यात हैं।।१९।।

१५. मानअपमान परीसह – कवित्त

जहाँ होय मान तहाँ मानत महान सुख, अपमान होय तहाँ मृत्युके समान है। मानके गुमान आप महाराज मान रहे, होत अपमान मूढ हरै दशों प्रान हैं। मानहीकी लाज जग सहत अनेक दुख, अपमान होत धरै नरक निदान है।। ऐसे मान अपमान दोऊ दुष्ट भाव तज, गनत समान मुनि रहै सावधान है।।२०।।

१६. थिरपरीसह – छप्पय

जब थिर होहिं मुनिंद, एक आसन दृढ धरई।
जब थिर होहिं मुनिंद, अंग एको नहिं टरई।।
जब थिर होहिं मुनिंद, कष्ट किन आवहिं केते।
जब थिर होहिं मुनिंद, भावसों सहै जु तेते।।

इम सहत कष्ट मुनिराज अति, रोगदोष नहिं धरत मन।
उतकृष्ट होहिं इक बेर जो, सब उनईस परीस भन।।२१।।

१७. कुवचनपरीसह – छप्पय

कुवचन बान समान, लगै तिहिं मार गिरावहिं।
कुवचन अगनि समान, पैठि गुन पुंज जलावहिं।।
कुवचन बज्र विशाल, भाव गिरि ढाहैं पलमें।
कुवचन विषकी झाल, मोह दुख दै बहु कलमें।।
कुवचन महान दुख पुंज यह, लगे बचैं नहिं जगत जन।
'भैया' त्रिकाल मुनिराज तिहँ, जीत लहै निज अखय ध्यान।।२२।।

१८. अजाचीपरीसह घनाक्षरी (३२ वर्ण)

अजाची धरत व्रत जाचना करत नाहिं, इंद्री उमंग हरत महा संतोष करकें। रागादि टरत भाव क्रोधादिबंध गरत, वरत स्वभाव शुद्ध मनोविकार हरकें।। मरनसों डरत न करत तपस्या जोर, दरत अनेक कष्ट क्षमा खड्ग धरकें। दया भंडार भरत वरत सु साधु ऐसें, 'भैया' प्रणाम करत त्रिकाल पांय परकें।।२३।।

१९. अज्ञानपरीसह – छप्पय

सम्यक ज्ञान प्रमान, होहिं मुनि कोय तुच्छ मति।
सुनहिं जिनेश्वर वैन, याद नहिं रहै हृदय अति।।
ज्ञानावरण प्रसाद, बुद्धि नहिं प्रगटै जाकी।
पूरब भव थिति बंध, इहाँ कछु चलत न ताकी।।
इम सहत कष्ट मुनि ज्ञानके, होहिं परीसह प्रबलजिय।
तिहँ जीत प्रीति निजरूपसों, लहत शुद्ध अनुभूत हिय।।२४।।

२०. प्रज्ञापरीसह – छप्पय

प्रज्ञा वल नहिं होय, तहाँ विद्या नहिं आवै।
प्रज्ञा वल नहिं होय, तहाँ नहिं पढै पढावै।।
प्रज्ञा प्रबल न होय, तहाँ चर्चा नहिं सूझै।
प्रज्ञा प्रबल न होय, तहाँ कछु अर्थ न बूझै।।
इम बुद्धि विशेष न होय जित, तित अनेक परिसह सहत।
'भैया' त्रिकाल मुनिराज तिहँ, जीत शुद्ध अनुभौ लहत।।२५।।

२१. अदर्शनपरीसह – छप्पय

समय प्रकृति मिथ्यात, जासु उरतैं नहि टरई।
सो जिय है गुनवंत, तथा वेदक पद धरई।।
दर्शन निर्मल नाहिं, मोहकी प्रकृति लखावै।
वहै अदर्शन कष्ट, कहत कैसें बन आवै।।
परिणाम खोद बहुविधि करत, तौ हू निर्मल होय नहिं।
'भैया' त्रिकाल मुनिराज तिहँ, जीत रहै निज आप महिं।।२६।।

२२. अलाभपरीसह – कवित्त

अंतराय कर्मके उदैतैं जो अलाभ होय, ताके भेद दोय कहे निश्चै व्यवहार है। निश्चै तो स्वरूपमें न थिरता विशेष रहै, वह अंतराय जो रहै न एक सार है।। व्यवहार अंतराय मिलै न अहार योग, और हू अनेक भेद अकथ अपार है। ऐसें तौ अलाभ की परीसहको जीत साधु, भये हैं अतीत 'भैया' वंदै निरधार।।२७।।

बाईसपरीसहविजयी मुनिराजकी स्तुति

कुंडलिया।

महा परीसह बीस द्वय, तिहँ जीतनको धीर।
धन्य साधु संसार में, बड़े सूरवर वीर।।

बडे सूरवर वीर, भीर भवकी जिहँ टारी।
कर्म शत्रु को जीत, भये शिवके अधिकारी।।
धारी निजनिधि संच, पंच पदकोजिहँ लहा।
'भैया' करहि प्रणाम, परीसह विजयी सु महा।।२८।।

छप्पय

सत्रहसे उनचास मास, फागुण सुख कारी।
सुदि बारस गुरुवार, सार मुनि कथा सवाँरी।।
विकट परीसह जीत, होत जे शिवपदगामी।
ते त्रिभुवनके नाथ, प्रगट जग अंतरजामी।।
तिहँ चरन नमत हिरदै हरखि, कहत गुननकी माल यह।
कवि भैया द्वैकर जोरके, बंदन करहिं त्रिकाल लह।।२९।।

हृदयराम उपदेशतैं, भये कवित्त ये सार।
मुनिके गुण जे सरदहैं, ते पावहिं भव पार।।३०।।

इति बाईस परीषह कवित्तबंध

अथ मुनिके छियालीसदोषवर्जित आहारविधिवर्णन लिख्यते।

दोहा

अरहँत सिद्ध चितारचित, आचारज उवझाय।
साधुसहित वंदन करों, मनवच शीस नवाय।।१।।

दोष छियालिस टारकें, मुनि जो लेहिं अहार।
नाम कथन ताके कहूं, जिन आगम अनुसार।।२।।

चौपाई

अस्थि चर्म सूखे अरु हरे। दृष्टि देख भोजन परिहरे।।
उखली खोटै चक्की चलै। शिलापिसंती देखत टलै।।३।।

गोबर थापै माटी छुवै। कोरे वस्त्र भींट जो हुवै।।
चूल्हो जरतो नयन निहार। ता घर मुनि नहिं लेहिं अहार।।४।।

शिरहिं नहाती दीखै कोय। सीस कंघही करती होय।।
कच्चे पानी परसै अंग। ता घरतें मुनि फिरहिं अभंग।।५।।

करवो खांडो दीसै कहीं। छन्नो फाटो ह्वै जो तहीं।।
देत बुहारी दृष्टिहि परै। ताघर मुनि आयेतें फिरै।।६।।

अन्नादिक सूकनको धरै। मिथ्याती भेटैं तिहँ घरै।।
ओंटे कोय कपास निहार। ताघर मुनि फिर जाहिं विचार।।७।।

भींटै पाक स्वान मंजार। रोमकँबल परसन परिहार।।
अग्निदाह जो दृष्टिहि परै। रोवत सुनै अहार न करै।।८।।

प्रतिमा भंग सुनै जे कान। शास्त्र जरै इम सुनै सुजान।।
प्रतिमा हरी भयो भयजोर। ता घर आये फिरहिं किशोर।।९।।

विनधोये पट पहिरे होय। पड़िगाहैं श्रावक जो कोय।।
ता कर लेय अहार न साध। अशुचिदोष लागै अपराध।।१०।।

कर्कश वचन सुनहिं विकराल। विनयहीन जो हो अदयाल।।
लागै चोट ललाटहिं पेख। फिरहिं साधु छर्दित नर देख।।११।।

विकलत्रय आवै तिहँ ठौर। नख केशादि अपावन और।।
पानी बूंद परै आकास। ता घर मुनि फिरजाहिं विमास।।१२।।

खाज सहित रोगी नर देख। पीव बहत पीड़ित पुनि पेख।।
लोहू दृष्टि परै जो कहीं। तो मुनि असन लेनके नहीं।।१३।।

मांसादिक मल दृष्टिहि परै। कंद रु मूल मृतक परिहरै।।
फल अरु बीज होंय तिहँ ठौर। तो मुनिलेहि न एको कौर।।१४।।

बिना बीज ऊगो जो डार। ता निरखत नहिं लेय अहार।।
ऐसे दोष छियालिस हीन। तजहिं ताहि संयमि परवीन।।१५।।

उत्तम कुल श्रावकको जान। द्वारापेखन शुद्ध प्रमान।।
विनयवंत प्राशुक कर नीर। बोलै तिष्ठ स्वामि जगवीर।।१६।।

ताघर दृष्टि विलोकहिं साध। यहां न कोड लागै अपराध।।
तब तिहँ मंदिरमें अनुसरै। प्राशुक भूमि निरख पग धरै।।१७।।

श्रावक जो प्राशुक आहार। कीन्हों दोष छियालिस टार।।
निजहित पोषनको परवार। ता महितें कछु भिन्न निकार।।१८।।

द्वै करजोर मुनीश्वर लेहिं। श्रावक निजकरसों तिहँ देहिं।।
पुनि कर फेर नीरको धरै। प्राशुकजल तिहँ करमें करै।।१९।।

लेय अहार नीर तिहँ ठौर। जिनकल्पी उत्तम शिरमौर।।
थिवरकल्पिकी हू यह चाल। दोऊं मुनिवर दीनदयाल।।२०।।

दोऊं वनवासी निर्ग्रंथ। दोऊं चलहिं जिनेश्वर पंथ।।
दोऊं जपतप किरिया करैं। दोऊं अनुभव हिरदै धरैं।।२१।।

जिनकल्पी एकाकी रहै। थिवरकल्पि शिष्यशाखा गहै।।
अठ्ठाईस मूलगुण सार। आपसाधु पालहिं निरधार।।२२।।

षष्टम अरु सप्तम गुण थान। दोऊं रहैं परम परधान।।
पूरव कोटि वरष वसु घाट। उतकृष्टै वरतै यह बाट।।२३।।

केवलज्ञान दोऊं उपजाय। पंचमि गतिमें पहुंचें जाय।।
सुख अनंत विलसै तिहँ ठौर। तातैं कहैं जगत शिरमौर।।२४।।

संवत सत्रहसै पंचास। जेठशुदी पंचमि परकाश।।
भैया वंदत मनहुल्लास। जयजय मुकतिपंथ सुखवास।।२५।।

इति छियालीसदोषरहित आहारशुद्धि चौपई।

अथ जिनधर्मपचीसिका लिख्यते।

दोहा

प्रगट देव परमातमा, चिदानंद भगवान।
वंदत हों तिनके चरन, नाय शीस धर ध्यान।।१।।

छप्पय

धन्य धन्य जिनधर्म, जासुमें दया उभयविधि।
धन्य धन्य जिनधर्म, जासुमहिं लखै आपनिधि।।
धन्य धन्य जिनधर्म, पंथशिवको दरसावै।
धन्य धन्य जिनधर्म, जहाँ केवल पद पावै।।
पुनि धन्य धन्य जिनधर्म यह, सुख अनंत जहाँ पाइये।
'भैया' त्रिकाल निजघटविषै, शुद्ध दृष्टि धर ध्याइये।।२।।

जैनधर्म को मर्म, दृष्टि समकिततैं सूझै।
जैनधर्म को मर्म, मूढ कैसें कर बूझै।।
जैनधर्म को मर्म, जीव शिवगामी पावै।
जैनधर्म को मर्म, नाथ त्रिभुवन को गावै।।
यह जैनधर्म जग में प्रगट, दया दुहू जग पेखिये।
'भैया' सुविचक्षन भविक जन, जैनधर्म निज लेखिये।।३।।

जैनधर्म जयवंत, अंत जाको नहिं कबहू।
जैनधर्म जयवंत, संत प्राणी हैं अबहू।।

जैनधर्म जयवंत, जंत सबको सुखकारी।
जैनधर्म जयवंत, तंत सबको अधिकारी।।
सत जैनधर्म जयवंत जग, प्रगट परम पद पेखिये।
'भैया' त्रिकाल जिनधर्मतैं, सुख अनंत सब लेखिये।।४।।

कल्पवृक्ष जिनधर्म, इच्छ सब पूरै मनकी।
चिंतामन जिनधर्म, चिंत सब टारै जनकी।।
पारस सो जिनधर्म, करै लोहादिक कंचन।
काम धेनु जिनधर्म, कामना रहती रंच न।।
जिनधर्म परमपद एक लख, सुख अनंत जहां पाइये।
'भैया' त्रिकाल जिनधर्मतें, मुक्तिनाथ तोहि गाइये।।५।।

उदित तेजपरताप, होत दिनदिन जयकारी।
तम अज्ञान विनाश, आश निज पर अधिकारी।।
सबको शीतल करै, उष्ण क्रोधादिक टारै।
सदा अमिय वरषंत, शांत रस अति विस्तारै।।
'भैया' चकोर अंबुज भविक, सब प्राणिनको सुख करै।
सो जैनधर्म जग चंद सम, सेवत दुख संकट टरै।।६।।

जैनधर्म विन जीव! जीत ह्वै है नहिं तेरी।
जैनधर्म विन जीव! रीत किन करै घनेरी।।
जैनधर्म विन जीव! ज्ञान चारित कहुँ नाहीं।
जैनधर्म विन जीव! प्रकृति पर जाह न गाही।।
इहि जैनधर्म विन जीव! तुहै, दया उभय सूझै न दृग।
'भैया' निहार निज घट विषै, जैनधर्म सोई मोक्षमग।।७।।

जैनधर्म विन जीव! तोहि शिवपंथ न सूझै।
जैनधर्म विन जीव! आप परको नहिं बूझै।।

जैनधर्म विन जीव! मर्म निजको नहिं पावै।
जैनधर्म विन जीव! कर्मगति दृष्टि न आवै।।
इहि जैनधर्म विन जीव तुहै, केवलपद कितहू नहीं।
अजहू संभारि चिरकाल भयो, चिदानंद! चेतौ कहीं।।८।।

जैनधर्म को जीव, आप परको सब जानै।
जैनधर्म को जीव, बंध अरु मोक्ष प्रमानै।।
जैनधर्म को जीव, स्यादवादी परत्यागी।
जैनधर्म को जीव, होय निश्चय वैरागी।।
इहि जैनधर्म को जीव जग, अजरामरपदवी लहै।
'भैया' अनंत सुख भोगवै, आचारज इहविधि कहै।।९।।

कवित्त

पापनके कूट जे अटूट भरे घट माहिं, होते चिरकालनके सबै निघटत है। लागे जो मिथ्यातभाव भूलिके सुभावनिज, तिनहूके पटल प्रभात ज्यों फटत हैं।। अपनी सुदृष्टि होत प्रगटै प्रकाश ज्योत, तिहू लोकमें उद्योत सत्य प्रगटत है। ऐसो जिनधर्मके प्रसादतें प्रकाश होय, अज हू संभार भैया काहेको रटत है।।१०।।

छप्पय

जो अरहंत सुजीव, जीव सब सिद्ध भणिज्जे।
आचारज पुन जीव, जीव उवझाय गणिज्जे।।
साधु पुरुष सब जीव, जीव चेतन पद राजै।
सो तेरे घट निकट, देख निज शुद्ध विराजै।।
सब जीव द्रव्यनय एकसे, केवलज्ञान स्वरूप मय।
तस ध्यान करहु हो भव्यजन, जो पावहु पदवी अखय।।११।।

सवैया

जो जिनदेवकी सेव करै जग, ताजिनदेवसो आप निहारै।
जो शिवलोक बसै परमात्म, तासम आतम शुद्ध विचारै।।
आपमें आप लखै अपनो पद, पाप रु पुण्य दुहू निरवारै।
सो जिनदेवको सेवक है जिय, जो इहि भांति क्रिया करतारै।।१२।।

कवित्त

एक जीवद्रव्यमें अनंत गुण विद्यमान, एक एक गुणमें अनंत शक्ति देखिये। ज्ञानको निहारिये तो पार याको कहू नाहिं, लोक जो अलोक सब याहीमें विशेखिये।। दर्शनकी ओर जो विलोकिये तो वहै जोर, छहों द्रव्य भिन्न भिन्न विद्यमान पेखिये। चारितसों थिरता अनंतकाल थिररूप, ऐसेही अनंत गुण भैया सब लेखिये।।१३।।

छप्पय

राग दोष अरु मोहि, नाहिं निजमाहिं निरक्खत।
दर्शन ज्ञान चरित्र, शुद्ध आतम रस चक्खत।।
परद्रव्यनसों भिन्न, चिह्न चेतनपद मंडित।
वेदत सिद्ध समान, शुद्ध निज रूप अखंडित।।
सुख अनंत जिहि पदवसत, सो निहचै सम्यक महत।
'भैया' सुविचक्षन भविक जन, श्रीजिनंद इहि विधि कहत।।१४।।

व्यवहार सम्यक लक्षण। छप्पय

छहों द्रव्य नव तत्त्व, भेद जाके सब जानै।
दोष अठारह रहित, देव ताको परमानै।।
संयम सहित सुसाधु, होय निरग्रंथ निरागी।
मति अविरोधी ग्रंथ, ताहि मानै परत्यागी।।

वरकेवल भाषित धर्मधर, गुण थानक बूझै मरम।
'भैया' निहार व्यवहार यह, सम्यक लक्षण जिन धरम।।१५।।

व्यवहार निश्चयनय वर्णन – मात्रिक कवित्त

जाके निहचै प्रगट भये गुण, सम्यक दर्शन आदि अपार।
ताके हिरदै गई विकलता, प्रगट रही करनी व्यवहार।।
जहँ व्यवहार होय तहँ निहचै, होय न होय उभय परकार।
जहँ व्यवहार प्रगट नहिं दीखै, तहां न निश्चय गुण निरधार।।१६।।

कवित्त

आंख देखै रूप जहां दौड़ तूही लागै तहां, सुने जहां कान तहां तूही सुनै बात है। जीभ रस स्वाद धरै ताको तू विचार करै, नाक सूंघै बास तहाँ तू ही विरमात है।। फर्सकी जु आठ जाति तहां कहो कौन भांति, जहां तहाँ तेरो नांव प्रगट विख्यात है। याही देह देवलमें केवलि स्वरूपदेव, ताकी कर सेव मन कहाँ दौड़े जात है।।१७।।

जासों कहै घर तामै डर तौ कईक तोहि, सबन विसार हंस विषैरस लाग्यो है। गिरवेको डर अरु डर आगि पानीहूको, वस्तु राखवेको डर चौर डर जाग्यो है।। पेट भरवेको डर रोग शोक महाडर, लोकनिकी लाज डर राजडर पाग्यो है। डर जमराजहूको डारि तूं निशंक भयो, जैसें मोह राजाने निवाज तोहि दाग्यो है।।१८।।

रागी द्वेषी देख देव ताकी नित करै सेव, ऐसो है अबेव ताको कैसें पाप खपनो?। राग रोग क्रीड़ा संग विषैकी उठै तरंग, ताही में अभंग रैन दिना करै जपनो।। आरति ओ रौद्र ध्यान दोऊ किये आगेवान, एतेपैं चहै कल्यान दैके दृष्टि ढपनो। अरे मिथ्या चारी तैं बिगारी मति गति दोऊ, हाथ ले कुल्हारी पाँय मारत है अपनो।।१९।।

छप्पय

जन्म जरा अरु मरन, पाप संताप विनासै।
रोग शोक दुख हरै, सर्व चिंता भय नासै।।
ऋद्धि सिद्धि अनुसरै, विविध विद्या परकासै।
निजनिधि लहै प्रकाश, ज्ञान प्रभुता गुण भासै।।
अरु कर्म शत्रु सब जीतके, केवलि पद महिमा बरै।
सो जैनधर्म जयवंत जग, जास हृदय ध्रुव संचरै।।२०।।

जैनधर्म परसाद, जीव मिथ्यामति खंडै।
जैनधर्म परसाद, प्रकृति उर सात विहंडै।।
जैनधर्म परसाद, द्रव्यषटको पहिचानै।
जैनधर्म परसाद, आप परको ध्रुव ठानै।।
जैनधर्म परसाद लहि, निजस्वरूप अनुभव करै।
'भैया' अनंत सुख भोगवै, जैनधर्म जो मन धरै।।२१।।

जैनधर्म परसाद, जीव सब कर्म खपावै।
जैनधर्म परसाद, जीव पंचमि गति पावै।।
जैनधर्म परसाद, बहुरि भवमें नहिं आवै।
जैनधर्म परसाद, आप परब्रह्म कहावै।।
श्री जैनधर्म परसादतैं, सुख अनंत विलसंत ध्रुव।
सो जैनधर्म जयवंत जग, भैया जिहँ घट प्रगट हुव।।२२।।

कवित्त

सुन मेरे मीत तू निचिंत ह्वैके कहा बैठो, तेरे पीछे काम शत्रु लागे अति जोर हैं। छिन छिन ज्ञान निधि लेत अति छीन तेरी, डारत अंधेरी भैया किये जात भोर हैं।। जागवो तो जाग अब कहत पुकारें तोहि, ज्ञान नैन खोल देख पास तेरे चोर हैं। फोरके शकति निज चोरको मरोर बांधि, तोसे बलवान आगें चोर ह्वैकै को रहैं।।२३।।

छप्पय

चहुं गतिमें नर वड़े, वड़े तिनमें समदृष्टी।
समदृष्टीतैं वड़े, साधुपदवी उतकृष्टी।।
साधुनतैं पुन वड़े, नाथ उवझाय कहावें।
उवझायनतैं वड़े, पंच आचार बतावें।।
नित आचार्यनतैं जिन वड़े, वीतराग तारन तरन।
तिन कह्यो जैनवृष जगतमें, भैया तस वंदत चरन।।२४।।

दोहा

जैनधर्म सब धर्म पें, शोभत मुकुर समान।
जाके सेवत भव्यजन, पावत पद निर्वान।।२५।।

ज्यों दीपक संयोगतैं, वत्ती करै उदोत।
त्यों ध्यावत परमातमा, जिय परमातम होत।।२६।।

श्री जिनधर्म उदोत है, तिहू लोक परसिद्ध।
'भैया' जे सेवहिं सदा, ते पावहिं निजरिद्ध।।२७।।

सत्रहसै पंचासके, उत्तम भादव मास।
सुदि पूनम रचना कही, जैजिनधर्मप्रकाश।।२८।।

इति जिनधर्मपचीसिका

अथ अनादिबत्तीसिका लिख्यते।

दोहा

अष्टकर्म अरि जीतकें, भये निरंजन देव।
मन वच शीस नवायके, कीजे ताकी सेव।।१।।

छहों सु द्रव्य अनादिके, जगत माहि जयवंत।
को किस ही कर्त्ता नहीं, यों भाखै भगवंत।।२।।

अपने गुण परजायमें, वरतै सब निरधार।
को काहू भेटै नहीं, यह अनादि विस्तार।।३।।

द्रव्य एक आकाश है, गुण जाको अवकास।
परणामी पूरन भर्‍यो, अंत न वरण्यों जास।।४।।

दूजो पुद्गल द्रव्य है, वर्ण गन्ध रस फांस।
छाया आकृति तेज द्युति, ये सब जास विलास।।५।।

तीजो धर्म सुद्रव्य है, चलत सहायी होय।
पुद्गल अरु पुन जीवको, शुद्ध स्वभावी जोय।।६।।

चौथो द्रव्य अधर्म है, जब थिर तबहिं सहाय।
देय जीव पुद्गलनको, लोक हद्दलों भाय।।७।।

पंचम काल प्रसिद्ध है, वर्त्तन जासु स्वभाय।
समय महूरत जाहि जो, सो कहिये परजाय।।८।।

षष्ठम चेतन द्रव्य है, दर्शन ज्ञान स्वभाय।
परणामी परयोगसों, शुद्ध अशुद्ध कहाय।।९।।

है अनादि ब्रह्मण्ड यह, छहों द्रवयको वास।
लोकहद्द इनतें भई, आगें एक अकास।।१०।।

सूर चंद निशदिन फिरैं, तारागण बहु संग।
यही अनादि स्वभाव है, छिन्न इक होय न भंग।।११।।

कहा ज्ञान है नाज पैं, ऋतुविन उपजै नाहिं।
सबहि अनादि स्वभाव है, समुझ देख मनमाहिं।।१२।।

बोवत है जिहँ बीजको, उपजत ताको वृक्ष।
ताहीको रस बढत है, यहै बात परतक्ष।।१३।।

को बोवत वन वृक्षको, को सींचत नित जाय।
फलफूलनिकर लहलहे, यहै अनादि स्वभाय।।१४।।

वनस्पती फूलै फलै, ऋतु वसंतके होत।
को सिखवत है वृक्षको, इहि दिन करो उदोत।।१५।।

वर्षत है जल धरनिपर, उपजत सब बनराय।
अपने अपने रस बढैं, यहै अनादि स्वभाय।।१६।।

जो पहिले कहो वृक्ष है, तौ न बनै यह बात।
बिना बीज उपजै नहीं, यह तो प्रगट विख्यात।।१७।।

जो पहिले कहो बीज है, बीज भयो किहँ ठौर।
यहै बात नहिं संभवै, है अनादि की दौर।।१८।।

को सिखवत है नीरको, नीचेको ढर जाय।
अग्निशिखा ऊंची चलै, यहै अनादि स्वभाय।।१९।।

कहो मीनके बालकों, को शिखवत है वीर!।
जन्मत ही तिरवो तहां, महा उदधिके नीर।।२०।।

कौन सिखावत बालको, लागत मा तन धाय।
क्षुद्धित पेट भरै सदा, यहै अनादि स्वभाय।।२१।।

पंछी चलै अकाशमें, कौन सिखावन हार।
यहै अनादि स्वभाव है, वन्यों जगत विस्तार।।२२।।

कौन सांपके वदनमें, विष उपजावत वीर!।
यहै अनादि स्वभाव है, देखो गुण गंभीर।।२३।।

कहो सिंहके बालको, सूरपनो कब होत।
कोटि गजनके पुंजको, मार भगावै पोत।।२४।।

पृथिवी पानी पैन पुन, अग्नि अन्न आकास।
है अनादि इहि जगतमें, सर्व द्रव्यको वास।।२५।।

अपने अपने सहज सब, उपजत विनशत वस्त।
है अनादिको जगत यह, इहि परकार समस्त।।२६।।

चेतन अरु पुद्गल मिले, उपजे कई विकार।
तासों विन समुझे कहैं, रच्यो किनहिं संसार।।२७।।

यह संसार अनादिको, यही भांत चल आय।
उपजै विनशै थिर रहै, सो सब वस्तु स्वभाय।।२८।।

को काहू कर्त्ता नहीं, करता भुगता आप।
यहै जीव अज्ञानमें, करै पुण्य अरु पाप।।२९।।

पुण्य पाप जग बीज है, याहीतैं विस्तार।
जन्म मरन सुखदुख सहै, 'भैया' सब संसार।।३०।।

पुण्यपापको त्याग जे, भये शुद्ध भगवान।
अजरामर पदवी लई, सुख अनंत जिहँ थान।।३१।।

इहि अनादि वत्तीसिमें, बरनी बात अनादि।।
'भैया' आप निहारिये, और बात सब वादि।।३२।।

सत्रहसै पंचासके, आश्विन पहिला पक्ष।
तिथि तेरस रविवारको, कही अनादि प्रत्यक्ष।।३३।।

इति अनादिबत्तीसी

अथ समुद्धातस्वरूप लिख्यते।

दोहा

चरन जुगल जिनदेवके, वंदत हों कर जोर।
जिहँ प्रसाद निजसंपदा, लहै कर्म दल मोर।।१।।

समुद्घात जे सात हैं, तिनको कछु विस्तार।
कहू जिनागम शाखतें, जिय परदेश विचार।।२।।

उदयकषाय प्रचंड ह्वै, निकसत जियपरदेश।
दमि दुर्जनकी देहको, बहुरि न करत प्रवेश।।३।।

रोगादिक संयोगसों, औषध परसन काज।
निकश जाय परदेश जो, आवत करै इलाज।।४।।

केवल ज्ञानी आतमा, लोक हद्दलों जाय।
परदेशन पूरित करै, उदै न कछू बसाय।।५।।

मरन समय जिहँ जीवको, समुदघात थिर होय।
प्रथम परस गति आयकें, बहुर जात है सोय।।६।।

षष्टम गुण थानीनको, उपजै कहुं संदेह।
प्रश्न करत जिनदेवको, निकसत अद्भुत देह।।७।।

सुर मनुष्य कर वैक्रिया, नाना ठौर रमाहिं।
सब थानक परदेशजिय, निकसै आवै जाहिं।।८।।

तैजस वपु मुनिरायके, निकसत उभय प्रकार।
अशुभ शुभनके काजको, समुदघात तिहँ बार।।९।।

तंतू सब लागे रहैं, सुख दुख बेवे आप।
देहादिकके प्रसरते, परदेशनिमें व्याप।।१०।।

'भैया' बात अगम्य है, कहन सुननकी नाहिं।
जानत हैं जिन केवली, जे लच्छन जिय पाहिं।।११।।

इति समुद्धातस्वरूप

अथ मूढाष्टक लिख्यते।

दोहा

चिन्मूरत चिंता हरन, पूरन वांछित आश।
अश्वसेन अंगज निलौ[1], नमूं जिनेश्वर पाश[2]।।१।।

अपने शुद्ध स्वभावसों, करै न कबहू प्रीति।
लगे फिरहिं परद्रव्यसों, यह मूढनकी रीति।।२।।

चौपाई (१६ मात्रा)

मूरख कहै ग्रन्थ पहिचानों। सांच झूठको भेद न जानों।।
जो कुछ लिख्यो सोई मै मानों। मेरे हृदय यहै ठहरानो।।३।।

धूप मांहि जो कहै अन्धेरा। सूरज अथवत[3] होय सवेरा।।
हिंसा करत पुण्य बहु होई। ऐसौ लिख्यो सत्य मुहि सोई।।४।।

मा कहिकैं जो बांझ बखाने। कर्म न होय प्रकृति परमाने।।
जो मोको उपदेशहि ऐसो। तो मैं कहू सत्य सब तैसो।।५।।

सांच त्याग जो झूठ अलापै। झूठे वचन सत्य कहि थापै।।
हिरदै सून्य सुन्यों मैं सबही। नैक विवेक धरों नहिं कबही।।६।।

ऐसे शून्य हिये जे प्रानी। ते कलियुगकी बनी निशानी।।
तिनको देख दया मन धरिये। वाद विवाद कछू नहिं करिये।।७।।

---

१. मणि। २. पार्श्वनाथ। ३.डुबते।

दोहा

ज्ञानवंत सुन वीनती, परसों नाही काम।
अनुभव आतम रामको, 'भैया' लख निजधाम।।८।।

इति मूढाष्टकं

अथ सम्यक्त्वपचीसिका लिख्यते।

दोहा

सम्यक[1] आदि अनंत गुण, सहित सु आतम राम।
प्रगट भये जिहँ कर्म तज, ताहि करों परणाम।।१।।

उपशम वेदक क्षायकी, सम्यक तीन प्रकार।
ताहीके नव भेद हैं, कहों ग्रंथ अनुसार।।२।।

चौपाई (१५ मात्रा)

उपसम समकित कहिये सोय। सात प्रकृति उपसम जहँ होय।।
दर्शन मोह तीन परकार। अनंतानुबंधीकी चार।।३।।

क्षय उपसमके तीन प्रकार। तिनके नाम कहूं निरधार।।
अनंतानुबंधी चौकरी। जिहँ जिय शक्ति फोरकें खरी।।४।।

महा मिथ्यात मिश्र मिथ्यात। समै[2] प्रकृति उपशम विख्यात।।
क्षय उपशम समकित तस नाम। अब दूजो वरनों इहि ठाम।।५।।

अनंतानु जे चार कषाय। महा मिथ्यात्व मिले क्षय जाय।।
दोय प्रकृति उपसम ह्वै रहै। तासों क्षय उपसम पुनि कहै।।६।।

क्षयषट् जाहिं प्रकृति जिहँ ठाम। समै प्रकृति उपसम तिहँ नाम।।
ये क्षय उपशम तिहुँ विधि कहे। अब वेदक बरनों सरदहै।।७।।

---

१. सम्यक् वा सम्यग्दर्शन। २. सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व।

जहाँ चार प्रकृति खप रहै। द्वै उपशम इक वेदक[१] लहै।।
क्षयउपसमवेदक तिहँ नाव। कहे ग्रंथमें हैं बहु ठांव।।८।।

पांच खपै उपशम ह्वै एक। समैप्रकृति वेदै गहि टेक।।
दूजो भेद यहै सिरदार। अब तीजैको सुनहु विचार।।९।।

छहों प्रकृति जामे क्षय जाहिं। समै मिथ्यात्व मिटै तहँ नाहिं।।
क्षायक वेदक लच्छन एह। कहे ग्रंथमें नहिं संदेह।।१०।।

उपशमवेदक कहिये तहाँ। छह उपशम इक वेदै जहां।।
क्षायक समकित तब जिय लहै। सातों प्रकृति मूलसों दहै।।११।।

जब लग ये प्रकृति नहिं जाती। तब लग कहिये जीव मिथ्याती।।
तिनके दूर कियेतैं जीव। सम्यक दृष्टी कहे सदीव।।१२।।

उनकी थिति पूरी जब होय। तब वे खिरैं फिरैं नहिं सोय।।
खिरकें निजगुण परगट लहै। सो गुण काल अनन्तो रहै।।१३।।

जे गुण प्रगट भये तज कर्म। ते सब जानो जियको धर्म।।
जैसो प्रभु देखौ भगवान। तैसो है इनके सरधान।।१४।।

सम्यकवंत जीव बैरागी। भावन सों सबही का त्यागी।।
निव्रत पख करै व्रत नाही। अप्रत्याख्यान उदै घटमाही।।१५।।

मनवचकाय जोग त्रिक डोलै। लखै आपनी कर्म कलोलैं।।
जितनी कर्म प्रकृति क्षय गई। तितनी कछु निर्मलता भई।।१६।।

प्रकटी शक्ति ताहि पहिचानै। अरु जिनवरकी आज्ञा मानै।।
अक्षर एक विरोधै कोय। ताको भ्रमन बहुत जग होय।।१७।।

तातैं व्रत पचखान न करै। जिनवरकी आज्ञासों डरै।।
लेकैं व्रत जो भंजै जीव। ते महा पापी कहे सदीव।।१८।।

---

१. उदयरूप।

अप्रत्याख्यान जाय नहिं जहाँ। व्रत पचखान पलै नहिं तहाँ।।
सम्यकदृष्टी परम सुजान। धरहिं शुद्ध अनुभवको ध्यान।।१९।।

अनुभवमें आतमरस लसै। आतमरसमें शिव सुख बसै।।
आतम ध्यान धर्‍यो जिनदेव। तातैं भये मुक्ति स्वयमेव।।२०।।

मुक्ति होनको बीज निहार। आतम ध्यान धरै अरिटार।।
ज्यों ज्यों कर्म विलयको जाहिं। त्यों त्यों सुख प्रगटै घट माहिं।।२१।।

प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान। कर चकचूर चढहिं गुण थान।।
आगें महा ध्यान धर धीर। कर्म शत्रु जीतै बल वीर।।२२।।

प्रगट करै निज केवल ज्ञान। सुख अनंत विलसै तिहँ थान।।
लोक अलोक सबहि झलकंत। तातैं सब भाखै भगवंत।।२३।।

चारों कर्म अघाती हार। तब वे पहुँचै मुकति मँझार।।
काल अनंतहि ध्रुव ह्वै रहै। तास चरन भवि वंदन कहै।।२४।।

सुख अनंत की नीव यह, सम्यक दर्शन जान।
याहीतें शिवपद मिलै, 'भैया' लेहु पिछान।।२५।।

सत्रहसै पंचासके, मारगसिर सित पक्ष।।
तिथि लच्छन [1]मुनिधर्मकी, मृगपति[2] वार प्रत्यक्ष।।२६।।

इति सम्यक्त्वपचीसिका।

अथ वैराग्यपचीसिका लिख्यते।

दोहा

रागादिक दूषण तजे, वैरागी जिनदेव।
मन वच शीस नवायकैं, कीजे तिनकी सेव।।१।।

---

१. दशमीं। २. सोमवार।

जगत मूल यह राग है, मुक्ति मूल वैराग।
मूल दुहुनको यह कह्यो, जाग सकै तो जाग।।२।।

क्रोधमान माया धरत, लोभ सहित परिणाम।
येही तेरे शत्रु हैं, समुझो आतमराम।।३।।

इनही च्यारों शत्रुको, जो जीतै जगमाहिं।
सो पावहि पथ मोक्षको, यामें धोखो नाहिं।।४।।

जा लच्छीके काज तू, खोवत है निजधर्म।
सो लच्छी संग ना चलै, काहे भूलत भर्म।।५।।

जा कुटुंबके हेत तू, करत अनेक उपाय।
सो कुटंब अगनी लगा, तोकों देत जराय।।६।।

पोषत है जा देहको, जोग त्रिविधिके लाय।
सो तोकों छिन एकमें, दगा देय खिर जाय।।७।।

लच्छी साथ न अनुसरै, देह चलै नहिं संग।
काढ़ काढ़ सुजनहि करै, देख जगतके रंग।।८।।

दुर्लभ दश दृष्टान्त सम, सो नरभव तुम पाय।
विषय सुखनके कारनें, सर्वस चले गमाय।।९।।

जगहिं फिरत कइ युग भये, सो कछु कियो विचार।
चेतन अब किन चेतहू, नरभव लहि अतिसार।।१०।।

ऐसें मित विभ्रम भई, विषयनि लागत धाय।
कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय।।११।।

पीतो सुधा स्वभाव की, जी! तो कहू सुनाय।
तू रीतो क्यों जातु है, बीतो नरभव जाय।।१२।।

मिथ्यादृष्टि निकृष्ट अति, लखै न इष्ट अनिष्ट।
भ्रष्ट करत है सिष्टको, शुद्ध दृष्टि दै पिष्ट।।१३।।
चेतन कर्म उपाधि तज, राग द्वेषको संग।
ज्यों प्रगटै परमातमा, शिव सुख होय अभंग।।१४।।
ब्रह्म कहूं तो मैं नहीं, क्षत्री हू पुनि नाहिं।
वैश्य शूद्र दोऊ नहीं, चिदानंद हूं माहिं।।१५।।
जो देखै इहि नैनसों, सो सब विनस्यो जाय।
तासों जो अपनो कहै, सो मूरख शिरराय।।१६।।
पुद्‌गलको जो रूप है, उपजै विनसै सोय।
जो अविनाशी आतमा, सो कछु और न होय।।१७।।
देख अवस्था गर्भकी, कौन कौन दुख होंहि।
बहुर मगन संसारमें, सौ लानत है तोहि।।१८।।
अधो शीस ऊरध चरन, कौन अशुचि आहार।
थोरे दिनकी बात यह, भूलि जात संसार।।१९।।
अस्थि चर्म मलमूत्रमें, रैन दिनाको वास।
देखें दृष्टि घिनावनो, तऊ न होय उदास।।२०।।
रोगादिक पीड़ित रहै, महाकष्ट जो होय।
तबहू मूरख जीव यह, धर्म न चिन्तै कोय।।२१।।
मरन समय विललात है, कोऊ लेहु बचाय।
जानै ज्यों त्यों जीजिये, जोर न कछू बसाय।।२२।।
फिर नरभव मिलिबो नहीं, किये हु कोट उपाय।
तातैं बेगहि चेत हू, अहो जगतके राय।।२३।।

भैयाकी यह वीनती, चेतन चितहि विचार।
ज्ञानदर्श चारित्रमें, आपो लेहु निहार।।२४।।

एक सात पंचासके, संवत्सर सुखकार।
पक्ष शुकल तिथि धर्मकी, जै जै निशिपतिबार।।२५।।

इति वैराग्यपचीसी

अथ परमात्माछत्तीसी लिख्यते।

दोहा

परम देव परमातमा, परम ज्योति जगदीश।
परम भाव उर आनके, प्रणमत हों नमि शीश।।१।।

एक जु चेतन द्रव्य है, तिनमें तीन प्रकार।
बहिरातम अन्तर तथा, परमातम पदसार।।२।।

बहिरातम ताको कहै, लखै न ब्रह्म स्वरूप।
मग्न रहै परद्रव्यमें, मिथ्यावंत अनूप।।३।।

अंतर आतम जीव सो, सम्यग्दृष्टी होय।
चौथे अरु पुनि बारवें, गुणथानक लों सोय।।४।।

परमातम पद ब्रह्मको, प्रगट्यो शुद्ध स्वभाय।
लोकालोक प्रमान सब, झलकै जिनमें आय।।५।।

बहिरातमास्वभाव तज, अंतरातमा होय।
परमातम पद भजत है, परमातम ह्वै सोय।।६।।

परमातम सो आतमा, और न दूजो कोय।
परमातमको ध्यावते, यह परमातम होय।।७।।

परमातम यह ब्रह्म है, परम ज्योति जगदीश।
परसों भिन्न निहारिये, जोइ अलख सोइ ईश।।८।।

जो परमातम सिद्धमें, सो ही या तन माहिं।
मोह मैल दृग लगि रह्यो, तातैं सूझै नाहिं।।९।।

मोह मैल रागादिको, जा छिन कीजे नाश।
ता छिन यह परमातमा, आपहि लहै प्रकाश।।१०।।

आतम सो परमातमा, परमातम सो सिद्ध।
बीचकी दुविधा मिट गई, प्रगट भई निज रिद्ध।।११।।

मैंहि सिद्ध परमातमा, मैं ही आतमराम।
मैं ही ज्ञाता ज्ञेयको, चेतन मेरो नाम।।१२।।

मैं अनंत सुखको धनी, सुखमय मोर स्वभाय।
अविनाशी आनंदमय, सो हों त्रिभुवन राय।।१३।।

शुद्ध हमारो रूप है, शोभित सिद्ध समान।
गुण अनंतकर संजुगत चिदानंद भगवान।।१४।।

जैसो शिव खेतहि बसै, तैसो या तनमाहिं।
निश्चय दृष्टि निहारतें, फेर रंच कहुँ नाहिं।।१५।।

कर्मनके संयोगतें, भये तीन परकार।
एक आतमा द्रव्यको, कर्म नचावन हार।।१६।।

कर्म संघाती आदिके, जोर न कछू बसाय।
पाई कला विवेककी, राग द्वेष बिन जाय।।१७।।

कर्मनकी जर राग है, राग जरें जर जाय।
प्रगट होत परमातमा, भैया सुगम उपाय।।१८।।

काहे को भटकत फिरै, सिद्ध होनके काज।
राग द्वेष को त्यागदे, 'भैया' सुगम इलाज।।१९।।

परमातम पदको धनी, रंक भयो विललाय।
राग द्वेषकी प्रीतिसों, जनम अकारथ जाय।।२०।।

राग द्वेषकी प्रीति तुम, भूलि करो जिन रंच।
परमातम पद ढांकके, तुमहिं किये तिरजंच।।२१।।

जप तप संयम सब भलो, राग द्वेष जो नाहिं।
राग द्वेषके जागते, ये सब सोये जांहिं।।२२।।

राग द्वेषके नाशतें, परमातम परकाश।
राग द्वेषके भासतें, परमातम पद नाश।।२३।।

जो परमातम पद चहै, तो तू राग निवार।
देख सयोगी स्वामिको, अपने हिये विचार।।२४।।

लाख बातकी बात यह, तोकों दई बताय।
जो परमातम पद चहै, राग द्वेष तज भाय।।२५।।

राग द्वेषके त्याग बिन, परमातम पद नाहिं।
कोटि कोटि जपतप करो, सबहि अकारथ जाहिं।।२६।।

दोष आतमाको यहै, राग द्वेषके संग।
जैसें पास मजीठके, वस्त्र और ही रंग।।२७।।

तैसें आतम द्रव्यको, राग द्वेषके पास।
कर्म रंग लागत रहै, कैसें लहै प्रकाश।।२८।।

इन कर्मनको जीतिबो, कठिन बात है मीत।
जड़ खोदै बिन नहिं मिटै, दुष्टजाति विपरीत।।२९।।

[१]लल्लोपत्तो के किये, ये मिटवेके नाहिं।
ध्यान अग्नि परकाशकें, होम देहु तिहि माहिं।।३०।।

ज्यों दारूके [२]गंजको, नर नहिं सकै उठाय।
तनक आग संयोगतैं , छिन इकमें उड़ि जाय।।३१।।

देह सहित परमातमा, यह अचरज की बात।
राग द्वेषके त्यागतैं, कर्म शक्ति जर जात।।३२।।

परमातमके भेद द्वय, निकल सकल परमान।
सुख अनंतमें एकसे, कहिवेको द्वय थान।।३३।।

भैया वह परमातमा, सो ही तुममें आहि।
अपनी शक्ति सम्हारिके, लखो वेग ही ताहि।।३४।।

राग द्वेषको त्यागके, धर परमातम ध्यान।
ज्यों पावे सुख संपदा, भैया इम कल्यान।।३५।।

संबत विक्रम भूपको, सत्रहसे पंचास।
मार्गशीर्ष रचना करी, प्रथम पक्ष दुति जास।।३६।।

इति परमात्माछत्तीसी

अथ नाटकपचीसी लिख्यते।

कर्म नाट नृत तोरके, भये जगत जिन देव।
नाम निरंजन पद लह्यो, करूं त्रिविधि तिहिं सेव।।१।।

कर्मनके नाटक नटत, जीव जगतके माहिं।
तिनके कछु लच्छन कहूं, जिन आगमकी छाहिं।।२।।

---

१. टालटूल। २. ढेर को।

तीन लोक नाटक भवन, मोह नचावनहार।
नाचत है जिय स्वांगधर, करकर नृत्य अपार।।३।।

नाचत है जिय जगतमें, नाना स्वांग बनाय।
देव नर्क तिरजंचमें, अरु मनुष्य गति आय।।४।।

स्वांग धरै जब देवको, मानत है निज देव।
वही स्वांग नाचत रहै, ये अज्ञानकी टेव।।५।।

औरनसों औरहि कहै, आप कहै हम देव।
गहिके स्वांग शरीरको, नाचत है स्वयमेव।।६।।

भये नरकमें नारकी, लागे करन पुकार।
छेदन भेदन दुख सहै, यही नाच निरधार।।७।।

मान आपको नारकी, त्राहि त्राहि नित होय।
यहै स्वांग निर्वाह है, भूलपरो मति कोय।।८।।

नित निगोदके स्वांगकी, आदि न जानै जीव।
नाचत है चिरकालके, भव्य अभव्य सदीव।।९।।

इत्तर नाम निगोद है, तहाँ बसत जे हंस।
ते सब स्वांगहि खेलकैं, बहुर धरयो यह वंस।।१०।।

उछरि उछरिकें गिरपरै, ते आवै इहि ठौर।
मिथ्यादृष्टि स्वभाव धर, यहै स्वांग शिरमौर।।११।।

कबहू पृथिवी कायमें, कबहू अग्नि स्वरूप।
कबहू पानी पौन ह्वै, नाचत स्वांग अनूप।।१२।।

वनस्पतीके भेद बहु, स्वास अठारह बार।
तामें नाच्यो जीव यह, धर धर जन्म अपार।।१३।।

विकलत्रयके स्वांगमें, नाचे चेतन राय।
उसीरूप ह्वै परणये, वरनें कैसें जाय।।१४।।

उपजे आय मनुष्यमें, धरै पँचेंद्री स्वांग।
अष्ट मदनि मातो रहै, मानो खाई भांग।।१५।।

पुण्य योग भूपति भये, पापयोग भये रंक।
सुख दुख आपहि मानिके, नाचत फिर निशंक।।१६।।

नारि नपुंसक नर भये, नाना स्वांग रमाहिं।
चेतनसों परिचय नहीं, नाच नाच खिर जाहिं।।१७।।

ऐसे काल अनंत हुव, चेतन नाचत तोहि।
अजहूं आप संभारिये, सावधान किन! होहि।।१८।।

सावधान जे जिय भये, ते पहुंचे शिव लोक।
नाचभाव सब त्यागके, विलसत सुखके थोक।।१९।।

नाचत हैं जग जीव जे, नाना स्वांग रमंत।
देखत हैं तिह नृत्यको, सुख अनंत विलसंत।।२०।।

जो सुख देखत होत है, सो सुख नाचत नाहिं।
नाचनमें सब दु:ख है, सुख निजदेखन माहिं।।२१।।

नाटकमें सब नृत्य है, सारवस्तु कछु नाहिं।
ताहि विलोको कौन है, नाचन हारे माहिं।।२२।।

देखै ताको देखिये, जानै ताको जान।
जो तोको शिव चाहिये, तो ताको पहचान।।२३।।

प्रगट होत परमातमा, ज्ञान दृष्टिके देत।
लोकालोक प्रमान सब, छिन इकमें लखलेत।।२४।।

'भैया' नाटक कर्मतें, नाचत सब संसार।
नाटक तज न्यारे भये, ते पहुंचे भव पार।।२५।।

इति नाटकपचीसी

अथ उपादाननिमित्तका संवाद लिख्यते।

दोहा

पाद प्रणमि जिनदेवके, एक उक्ति उपजाय।
उपादान अरु निमितको, कहुं संवाद बनाय।।१।।

पूछत है कोऊ तहाँ, उपादान किह नाम।
कहो निमित्त कहिये कहा, कबके हैं इह ठाम।।२।।

उपादान निजशक्ति है, जियको मूल स्वभाव।
है निमित्त परयोगतें, बन्यो अनादि बनाव।।३।।

निमित्त कहै मोको सबै, जानत हैं जग लोय।
तेरो नाव न जानहीं, उपादान को होय।।४।।

उपादान कहै रे निमित, तू कहा करै गुमान।
मोकों जाने जीव वे, जो हैं सम्यकवान।।५।।

कहै जीव सब जगतके, जो निमित्त सोइ होय।
उपादानकी बातको, पूछै नाहीं कोय।।६।।

उपादान विन निमित तू, कर न सकै इक काज।
कहा भयो जग ना लखै, जानत हैं जिनराज।।७।।

देव जिनेश्वर गुरु यती, अरु जिन आगम सार।
इहि निमित्ततें जीव सब, पावत हैं भवपार।।८।।

यह निमित्त इह जीवको, मिल्यो अनंती बार।
उपादान पलट्यो नहीं, तौ भटक्यो संसार।।९।।

कै केवली कै साधु कै, निकट भव्य जो होय।
सो क्षायक सम्यक लहै, यह निमित्तबल जोय।।१०।।

केवलि अरु मुनिराजके, पास रहैं बहु लोय।
पै जाको सुलट्यो धनी, क्षायक ताको होय।।११।।

हिंसादिक पापन किये, जीव नर्कमें जाहिं।
जो निमित्त नहिं कामको, तो इम काहे कहाहिं।।१२।।

हिंसामें उपयोग जिहँ, रहै ब्रह्मके राच।
तेई नर्कमें जात हैं, मुनि नहिं जाहिं कदाच।।१३।।

दया दान पूजा किये, जीव सुखी जग होय।
जो निमित्त झूंठो कहो, यह क्यों मानै लोय।।१४।।

दया दान पूजा भली, जगतमाहिं सुखकार।
जहँ अनुभवको आचरन, तहँ यह बंध विचार।।१५।।

यह तो बात प्रसिद्ध है, शोच देख उरमाहिं।
नरदेहीके निमितविन, जिय क्यों मुक्ति न जाहिं।।१६।।

देह पींजरा जीवको, रोकै शिवपुर जात।
उपादानकी शक्तिसों, मुक्ति होत रे भ्रात।।१७।।

उपादान सब जीवपै, रोकन हारो कौन।
जाते क्यों नहिं मुक्तिमें, विन निमित्तके होन।।१८।।

उपादान सु अनादिको, उलट रह्यो जगमाहिं।
सुलटतही सूधे चले, सिद्ध लोकको जाहिं।।१९।।

कहुं अनादि विन निमितही, उलट रह्यो उपयोग।
ऐसी बात न संभवै, उपादान तुम जोग।।२०।।

उपादान कहै रे निमित, हमपै कही न जाय।
ऐसे ही जिन केवली, देखै त्रिभुवन राय।।२१।।

जो देख्यो भगवान ने, सोही सांचो आहि।
हम तुम संग अनादिके, बली कहोगे काहि।।२२।।

उपादान कहै वह बली, जाको नाश न होय।
जो उपजत विनशत रहै, बली कहांतें सोय।।२३।।

उपादान तुम जोर हो, तो क्यों लेत अहार।
परनिमित्तके योगसों, जीवत सब संसार।।२४।।

जो अहारके जोगसों, जीवत है जगमाहिं।
तो वासी संसारके, मरते कोऊ नाहिं।।२५।।

सूर सोम मणि अंगिनके, निमित लखैं ये नैन।
अंधकारमें कित गयो, उपादान दृग दैन।।२६।।

सूर सोम मणि अग्नि जो, करैं अनेक प्रकाश।
नैन शक्ति विन ना लखै, अंधकार सम भास।।२७।।

कहै निमित्त वे जीव को? मो विन जगके माहिं।
सबै हमारे वश परे, हम विन मुक्ति न जाहिं।।२८।।

उपादान कहै रे निमित्त, ऐसे बोल न बोल।
तोको तज निज भजत हैं, तेही करैं किलोल।।२९।।

कहै निमित्त हमको तजे, ते कैसें शिव जात।
पंचमहाव्रत प्रगट हैं, और हु क्रिया विख्यात।।३०।।

पंचमहाव्रत जोग त्रय, और सकल व्यवहार।
परको निमित्त खपायके, तब पहुंचें भवपार।।३१।।

कहै निमित्त जग मैं बडो, मोतैं बडो न कोय।
तीन लोकके नाथ सब, मो प्रसादतैं होय।।३२।।

उपादान कहै तू कहा, चहुं गतिमें ले जाय।
तो प्रसादतैं जीव सब, दुखी होहिं रे भाय।।३३।।

कहै निमित्त जो दुख सहै, सो तुम हमहि लगाय।
सुखी कौन तैं होत है, ताको देहु बताय।।३४।।

जा सुखको तू सुख कहै, सो सुख तो सुख नाहिं।
ये सुख, दुखके मूल हैं, सुख अविनाशी माहिं।।३५।।

अविनाशी घट घट बसे, सुख क्यों विलसत नाहिं?।
शुभनिमित्तके योगविन, परे परे विललाहिं।।३६।।

शुभनिमित्त इह जीवको, मिल्यो कई भवसार।
पै इक सम्यक दर्श विन, भटकत फिर्‍यो गँवार।।३७।।

सम्यक दर्श भये कहा, त्वरित मुकतिमें जाहिं।
आगें ध्यान निमित्त हैं, ते शिवको पहुँचाहिं।।३८।।

छोर ध्यानकी धारना, मोर योगकी रीति।
तोर कर्मके जालको, जोर लई शिवप्रीति।।३९।।

तब निमित्त हार्‍यो तहाँ, अब नहिं जोर बसाय।
उपादान शिव लोकमें, पहुँच्यो कर्म खपाय।।४०।।

उपादान जीत्यो तहाँ, निजबल कर परकास।
सुख अनंत ध्रुव भोगवै, अंत न बरन्यो तास।।४१।।

उपादान अरु निमित्त ये, सब जीवनपै वीर।
जो निजशक्ति संभारहीं, सो पहुँचें भवतीर।।४२।।

भैया महिमा ब्रह्मकी, कैसे बरनी जाय।
वचनअगोचर वस्तु है, कहिवो वचन बनाय।।४३।।

उपादान अरु निमितको, सरस बन्यो संवाद।
समदृष्टीको सुगम है, मूरखको बकवाद।।४४।।

जो जानै गुण ब्रह्मके, सो जानै यह भेद।
साख जिनागमसों मिलै, तो मत कीज्यो खेद।।४५।।

नगर आगरो अग्र है, जैनी जनको बास।
तिहँ थानक रचनाकरी, 'भैया' स्वमति प्रकास।।४६।।

संवत विक्रम भूप को, सत्रहसै पंचास।
फाल्गुण पहिले पक्षमें, दशों दिशा परकाश।।४७।।

इति उपादाननिमित्तसंवाद।

अथ चतुर्विंशतितीर्थंकरजयमाला लिख्यते।

दोहा

वीस चार जगदीशको, बंदों शीस नवाय।
कहूं तास जयमालिका, नामकथन गुण गाय।।१।।

पद्धरिछन्द (१६ मात्रा)

जय जय प्रभु ऋषभ जिनेन्द्रदेव। जय जय त्रिभुवनपति करहिं सेव।। जय जय श्री अजित अनंत जोर। जय जय जिहँ कर्म हरे कठोर।।२।। जय जय प्रभु संभव शिवसरूप। जय जय शिवनायक गुण

अनूप।। जय जय अभिनंदन निर्विकार। जय जय जिहिं कर्म किये निवार।।३।। जय जय श्री सुमति सुमति प्रकाश। जय जय सब कर्म निकर्म नाश।। जय जय पदमप्रभ पदम जेम। जय जय रागादि अलिप्त नेम।।४।। जय जय जिनदेव सुपार्श्व पास। जय जय गुणपुंज कहै निवास।। जय जय चंद्रप्रभ चन्द्रक्रांति। जय जय तिहुं पुरजन हरन भ्रांति।।५।। जय जय पुफदंत महंत देव। जय जय षट द्रव्यनि कहन भेव।। जय जय जिन शीतल शीलमूल। जय जय मनमथ मृग शारदूल।।६।। जय जय श्रेयांस अनंत बच्छ। जय जय परमेश्वर हो प्रतच्छ।। जय जय श्री जिनवर वासुपूज। जय जय पूज्यनके पूज्य तूज[1]।।७।। जय जय प्रभु विमल विमल महंत। जय जय सुख दायक हो अनंत।। जय जय जिनवर श्री अनंत नाथ। जय जय शिवरमणी ग्रहण हाथ।।८।।

जय जय श्री धर्म जिनेन्द्र धन्न। जय जय जिन निश्चल करन मन्न।। जय जय श्रीजिनवर शांतिदेव। जय जय चक्री तीर्थंकरेव।।९।। जय जय श्रीकुंथु कृपानिधान। जय जय मिथ्यातमहरन भान।। जय जय अरिजीतन अरहनाथ। जय जय भवि जीवन मुक्ति साथ।।१०।। जय जय मलि नाथ महा अभीत। जय जय जिन मोहनरेन्द्र जीत।। जय जय मुनिसुव्रत तुम सुज्ञान। जय जय त्रिभुवनमें दीप भान।।११।। जय जय नमिनाथ निवास सुक्ख। जय जय तिहुं भवननि हरन दुःख। जय जय श्री नेम कुमारचंद। जय जय अज्ञानतमके निकंद।।१२।। जय जय श्रीपार्श्व प्रसिद्ध नाम। जय जय भविदायक मुक्तिधाम। जय जय जिनवर श्रीवर्द्धमान। जय जय अनंत सुखके निधान।।१३।। जय जय अतीत जिन भये जेह। जय जय सु अनागत ह्वै हैं तेह।। जय जय जिन हैं जे विद्यमान।। जय जय तिन बंदों धर सु ध्यान।।१४।। जय

१. तू ही।

जय जिनप्रतिमा जिन स्वरूप। जय जयसु अनंत चतुष्ट भूप।। जय जय मन वच निज सीसनाय। जय जय जय 'भैया' नमै सुभाय।।१५।।

घत्ता

जिनरूप निहारे आप विचारे, फेर न रंचक भेद कहै।
'भैया' इम वंदै ते चिरनंदै, सुख अनंत निजमाहिं लहै।।१६।।

दोहा

रागभाव छूट्यो नहीं, मिट्यो न अंतर दोख।
संतति वाढै बंधकी, होय कहांसों मोख।।१७।।

इति चतुर्विंशतितीर्थंकरजयमाला

———————

अथ पंचेन्द्रियसंवाद लिख्यते।

दोहा

प्रथम प्रणमि जिनदेवको, बहुरि प्रणमि शिवराय।
साधु सकलके चरनको, प्रणमों सीस नवाय।।१।।

नमहुं जिनेश्वर वैनको, जगत जीव सुखकार।
जस प्रसाद घटपट खुलै, लहिये बुद्धि अपार।।२।।

इक दिन इक उद्यानमें, बैठे श्री मुनिराज।
धर्म देशना देत हैं, भवि जीवनके काज।।३।।

समदृष्टी श्रावक तहां, और मिले बहु लोक।
विद्याधर क्रीड़ा करत, आय गये बहु थोक।।४।।

चली बात व्याख्यानमें, पांचों इन्द्रिय दुष्ट।
त्यों त्यों ये दुख देत है, ज्यों ज्यों कीजे पुष्ट।।५।।

विद्याधर बोले तहाँ, कर इन्द्रिनको पक्ष।
स्वामी हम क्यों दुष्ट हैं, देखो बात प्रत्यक्ष।।६।।

हमहीतैं सब जगलखै, यह चेतन यह नाउं।
इक इन्द्रिय आदिक सबै, पंच कहे जिहँ ठाउं।।७।।

हमतैं जप तप होत है, हमतैं क्रिया अनेक।
हमहीतैं संयम पलै, हम बिन होय न एक।।८।।

रागी द्वेषी होय जिय, दोष हमहि किम देहु।
न्याव हमारो कीजिये, यह विनती सुन लेहु।।९।।

हम तीर्थंकर देव पैं, पांचों हैं परतच्छ।
कहो मुक्ति क्यों जात हैं, निजभावन कर स्वच्छ।।१०।।

स्वामि कहै तुम पांच हो, तुममें को सिरदार।
तिनसों चर्चा कीजिये, कहो अर्थ निरधार।।११।।

नाक कान नैना कहै, रसना फरस विख्यात।
हम काहू रोकैं नही, मुक्ति लोकको जात।।१२।।

नाक कहै प्रभु मैं बडो, मोतैं बडो न कोय।
तीन लोक रक्षा करै, नाक कमी जिन[१] होय।।१३।।

नाक रहेतैं सब रह्यो, नाक गये सब जाय।
नाक बरोबर जगतमें, और न वडो कहाय।।१४।।

प्रथम बदन पर देखिये, नाक नवल आकार।
सुंदर महा सुहावनो, मोहै लोक अपार।।१५।।

सीस नवत जगदीसको, प्रथम नवत है नाक।
तौही तिलक विराजतो, सत्यारथ जग वाक।।१६।।

---
१. मत।

ढाल ''दान सुपात्रन दीजिये'' एदेशी भाषा गुजराती।

नाक कहै जग हूं वडो, बात सुनो सब कोई रे।
नाक रहे पत[१] लोकमें, नाक गये पत खोईरे, नाक०।।१७।।

नाक रखनेके कारणे, बाहूबलि बलवंतौ रे।
देश तज्यो दीक्षा ग्रही, पण न नम्यों चक्रवंतो रे, नाक०।।१८।।

नारक रहनेके कारनै, रामचन्द्र जुध कीधो रे।
सीता आणी बलकरी, बलि ते संयम लीधो रे, नाक०।।१९।।

नाक राखण सीता सती, अगनी कुंडमें पैठी रे।
सिंहासन देवन रच्यो, तिहँ ऊपर जा बैठीरे, नाक०।।२०।।

दशार्णभद्र महा मुनि, नाक राखण व्रत लीधो रे।
इन्द्र नम्यो चरणे तिहाँ, मान सकल तज दीधोरे, नाक०।।२१।।

सगर थयो सौरो धणी, छलथी दीक्षा लीधीरे।
नाक तणी लज्जा करी, फिर नवि मनसा कीधीरे, नाक०।।२२।।

अभय कुंवर श्रेणिक तणों, वेटो आज्ञाकारीरे।
तूंकारो तातहि दियो, ततछिन दीक्षा धारी रे, नाक०।।२३।।

नाम कहूं केता तणां, जीव तरया जगमाहीरे।
नाक तणे परसादथी, शिव संपति विलसाईरे, नाक०।।२४।।

सुख विलसै संसारना, ते सहु मुझ परसादैरे।
नाना वृक्ष सुगंधता, नाक सकल आस्वादैरे, नाक कहै०।।२५।।

तीर्थंकर त्रिभुवन धणी, तेहना तनमां वासोरे।
परम सुगंधो घणी लसै, ते सुख नाक निवासोरे, नाक कहै०।।२६।।

---
१. इज्जत।

और सुगंधो अनेक छै, ते सब नाकज जाणैरे।
आनंदमां सुख भोगवे, 'भैया' एम वखाणैरे, नाक कहै०।।२७।।

दोहा

कान कहै रे नाक सुन, तू कहा करै गुमान।
जो चाकर आगें चलै, तो नहिं भूप समान।।२८।।

नाक सुरनि पानी झरै, बहै सलेष्म अपार।
गूंघनि कर पूरित रहै, लाजै नही गँवार।।२९।।

तेरी छींक सुनै जिते, करै न उत्तम काज।
मूदै तुह दुर्गंधमें, तऊ न आवै लाज।।३०।।

वृषभ ऊंट नारी निरख, और जीव जग माहिं।
जित तित तोको छेदिये, तौऊ लजानो नाहिं।।३१।।

कान कहे जिन बैनको, सुनै सदाचित लाय।
जस प्रसाद इह जीवको, सम्यग्दर्शन थाय।।३२।।

कानन कुंडल झलकता, मणि मुक्ता फल सार।
जगमग जगमग ह्वै रहै, देखै सब संसार।।३३।।

सातों सुरको गायबो, अद्‌भुत सुखमय स्वाद।
इन कानन कर परखिये, मीठे मीठे नाद।।३४।।

कानन सुन श्रावक भये, कानन सुनि मुनिराज।
कान सुनहि गुण द्रव्यके, कान बड़े शिरताज।।३५।।

राग काफी धमालमें०

कानन सुन ध्यानन ध्याइये हो, चिन्मूरत चेतन पाइये हो, कानन०।।टेक।।
कानन सरभर को करे हो, कान बड़े सिरदार।
छहों द्रव्यके गुण सुणै हो, जाने सकल विचार, कानन०।।३६।।

संघ चतुर्विध सब तरे हो, कानन सुनि जिन बैन।
निज आतम सुख भोगवै हो, पावत शिवपद ऐन, कानन०।।३७।।

द्वादशांग वानी सुनै हो, काननके परसाद।
गणधर तो गुरुवा कह्या हो, द्रव्य सूत्र सब याद, कानन०।।३८।।

कानन सुनि भरतेश्वरे हो, प्रभुको उपज्यो ज्ञान।
कियो महोच्छव हरखसें हो, पायो है पद निर्वान, कानन०।।३९।।

विकट वैन धन्ना सुने हो, निकस्यो तज आवास।
दीक्षा गह किरिया करी हो, पायो शिवगति वास, कानन०।।४०।।

साधु अनाथीसों सुन्यो हो, श्रेणिक जीव विचार।
क्षायक सम्यक तव लह्यो हो, पावैगो भवदधि पार, कानन०।।४१।।

नेमनाथवानी सुनी हो, लीनो संयम भार।
ते द्वारिकके दाहसों हो, उवरे हैं जीव अपार, कानन०।।४२।।

पार्श्वनाथके बैन सुने हो, महामंत्र नवकार।
धरणेंधर पदमावती हो, भये हैं जु तिहि बार, कानन०।।४३।।

कानन सुनि कानन गये हो, भूपति तज बहु राज।
काज सवारे आपने हो, केवलि ज्ञान उपाज, कानन०।।४४।।

जिनवानी कानन सुने हो, जीव तरे जग मांहि।
नाम कहां लों लीजिये हो, 'भैया' जे शिवपुर जांहि, कानन०।।४५।।

दोहा

आंख कहैरे कान तू, इस्यो करै अहँकार।
मैलनिकर मूंद्यो रहै, लाजै नहीं लगार।।४६।।

भली बुरी सुनतो रहै, तोरै तुरत सनेह।
तो सम दुष्ट न दूसरो, धारी ऐसी देह।।४७।।

दुष्टवचन सुन तो जरै, महा क्रोध उपजंत।
तो प्रसादतैं जीव बहु, नरकन जाय परंत।।४८।।

पहिले तुमको बेधिये, नरनारीके कान।
तोहू नही लजात है, बहुर धरै अभिमान।।४९।।

काननकी बातैं सुनी, सांची झूंठी होय।
आँखिन देखी बात जो, तामें फेर न कोय।।५०।।

इन आंखिनसों देखिये, तीर्थंकरको रूप।
सुख असंख्य हिरदै लसै, सो जानै चिद्रूप।।५१।।

आँखिन लख रक्षा करै, उपजै पुण्य अपार।
आँखिनके परसादसों, सुखी होत संसार।।५२।।

आँखिनतैं सब देखिये, तात मात सुत भ्रात।
देव गुरु अरु ग्रन्थ सब, आँखिनतैं विख्यात।।५३।।

ढाल – ''वनमालीके बाग चंपो मौलि रह्योरी'' ए देशी।

आंखिनके परसाद, देखे लोक सबैरी।
आबै निजपद याद, प्रतिमा पेखत वेरी, आंखनके०।।५४।।

देखूं दृग सिद्धांत, ग्रंथ अनेक कह्यारी।
जे भाख्या भगवंत, दर्वित तेह लह्यारी, आंखनके०।।५५।।

समवशरणकी रिद्धि, देखत हर्ष घनोरी।
प्रभु दर्शन फलसिद्धि, नाटक कौन गिनोरी, आंखनके०।।५६।।

जिन मंदिर जयकार, प्रतिमा परम बनीरी।
देखत हर्ष अपार, थुति नहिं जाहि भनीरी, आंखनके०।।५७।।

ईर्य्या समिति निहार, साधु चलै जु भलेरी।
जे पावैं शिवनार, सुखकी कीर्ति फलेरी, आँखिन०।।५८।।

आँखिन बिंब निहार, सम्यक शुद्ध लह्योरी।
गोत तीर्थंकर धार, रावन नाम कह्योरी, आँखिन०।।५९।।

चारों परतेक बुद्ध, देखत भाव फिरेरी।
लहि निज आतमशुद्ध, भवजल वेग तिरेरी, आँखिन०।।६०।।

पूरव भव आहार, देते दृष्टि पर्‍योरी।
इहि चौबीसी सार, अंस कुमर जु तर्‍योरी, आँखिन०।।६१।।

वाघिनि साधु विदार, दंतहि दृष्टि धरीरी।
पूरब भवहि निहार, त्यागन देह करीरी, आँखिन०।।६२।।

शालिभद्र सुकुमार, श्रेणिक दृष्टि पर्‍योरी।
गहि संयमको भार, आतम काज कर्‍योरी, आँखिन०।।६३।।

देख्यो जुद्ध अकाज, दीक्षा बेग गहेरी।
पांडव तज सब राज, निज निधि वेग लहेरी, आँखिन०।।६४।।

कहूं कहाँलों नाम, जीव अनेक तरेरी।
'भैया' शिवपुर ठाम, आंखितैं जाय बरेरी, आँखन०।।६५।।

दोहा

जीभ कहै रे आँखि तुम, काहे गर्व करांहि।
काजल कर जो रंगिये, तो हू नाहिं लजांहि।।६६।।

कायर ज्यों डरती रहै, धीरज नहीं लगार।
बातबातमें, रोयदे, बोलै गर्व अपार।।६७।।

जहाँ तहाँ लागत फिरै, देख सलौनो रूप।
तेरे ही परसाद तैं, दुख पावै चिद्रूप।।६८।।

कहा कहूं दृगदोषको, मोपैं कहे न जाहिं।
देख विनाशी वस्तुको, बहुर तहाँ ललचाहिं।।६९।।

जीभ कहै मोतैं सबै, जीवत है संसार।
षटरस भुंजों स्वाद ले, पालों सब परिवार।।७०।।

मोविन आंखन खुल सकै, कान सुनै नहिं वैन।
नाक न सूंघै वासको, मो विन कहीं न चैन।।७१।।

मंत्र जपत इह जीभसों, आवत सुरनर धाय।
किंकर ह्वै सेवा करै, जीभहिके सुपसाय।।७२।।

जीभहितैं जंपत रहै, जगत जीव जिन नाम।
जसु प्रसादतैं सुख लहै, पावै उत्तम ठाम।।७३।।

ढाल – 'रे जीया तो बिन घड़ी रे छ मास' ए देशी।

यतीश्वर जीभ बडी संसार, जपै पंच नवकार, जतीश्वर०।।टेक।।

द्वादशांगवाणी श्रवैजी, बोलै वचन रसाल।
अर्थ कहै सूत्रन सबैजी, सिखवै धर्म विशाल, यतीश्वर०।।७४।।

दुरजनतैं सज्जन करैजी, बोलत मीठे बोल।
ऐसी कला न औरपैंजी, कौन आंख किह तोल, यतीश्वर०।।७५।।

जीभहितैं सब जीतिये जी, जीभहितैं सब हार।
जीभहितैं सब जीवकेजी, कीजतु हैं उपकार, यतीश्वर०।।७६।।

जीभहितैं गणधर भयेजी, भव्यनि पंथ दिखाय।
आपन वे शिवपुर गयेजी, कर्मकलंक खपाय, यतीश्वर०।।७७।।

जीभहितैं उवझायजूजी, पावै पद परधान।
जीभहितैं समकित लह्यो जु, परदेशी परवान, यतीश्वर०।।७८।।

मथुरा नगरीमें हुवोजी, जंबूनाम कुमार।
कहिकैं कथा सुहावनीजी, प्रति बोध्यो परिवार, यतीश्वर०।।७९।।

रावनसों विरचे भलेजी, बाल महामुनि बाल।
अष्टापद मुक्ते गयाजी, देखहु ग्रंथ निहाल, यतीश्वर०।।८०।।

मिटै उरझ उरकी सबैजी, पूछत प्रश्न प्रतक्ष।
प्रगट लहै परमात्माजी, विनसे भ्रमको पक्ष, यतीश्वर०।।८१।।

तीन लोकमें जीभही जी, दूर करै अपराध।
प्रतिक्रमणकिरिया करैजी, पढै सिझाये साध, यतीश्वर०।।८२।।

जीभहि तैं सब गाइयेजी, सातों सुरके भेद।
जीभहितैं जस जंपियेजी, जीभहि पढिये वेद, यतीश्वर।।८३।।

नाम जीभतैं लीजियेजी, उत्तर जीभहि होय।
जीभहि जीव खिमाइयेजी, जीभ समौ नहि कोय, यतीश्वर०।।८४।।

केते जिय मुक्ति गयेजी, जीभहिके परसाद।
नाम कहांलों लीजियेजी, भैया बात अनादि, यतीश्वर०।।८५।।

दोहा

फर्स कहैरे जीभ तू, एतो गर्व करंत।
तो लागै झूंठो कहै, तो हू नाहि लजंत।।८६।।

कहै वचन कर्कस बुरे, उपजै महा कलेश।
तेरे ही परसादतैं, भिड़ भिड़ मरै नरेश।।८७।।

तेरे ही रस काजको, करत अरंभ अनेक।
तोहि तृपति क्यों ही नहीं, तातैं सबै उदेक।।८८।।

तोमै तो अवगुण घने, कहत न आवै पार।
तो प्रसादतैं सीसको, जात न लागै बार।।८९।।

झूंठे ग्रंथ न तू पढ़ै, दै झूंठो उपदेश।
जियको जगत फिरावती, और हु करै कलेश।।९०।।

जा दिन जिय थावर बसत, ता दिन तुममें कौन।
कहा गर्व खोटो करो, नाक आँख मुख श्रौन।।९१।।

जीव अनंते हम धरें, तुम तौ संख असंखि।
तितहू तो हम बिन नही, कहा उठत हो झंखि।।९२।।

नाक कान नैना सुनो, जीभ कहा गर्वाय।
सब कोऊ शिरनायकै, लागत मेरे पाय।।९३।।

झूठी झूठी सब कहै, सांची कहै न कोय।
बिन काया के तप तपे, मुक्ति कहांसों होय।।९४।।

सहै परीसह बीस द्वै, महा कठिन मुनि राज।
तब तौ कर्म खपाइकैं पावत हैं शिवराज।।९५।।

ढाल – 'मोरी सहियोरी लाल न आवैगो' ए देशी।

मोरासाधुजी फरस बडो संसार, करै कई उपकार, मोरा।

दक्षिण करतैं दीजिये जी, दान अनेक प्रकार।
तो तिहँ भवशिवपद लहैजी, मिटै मरनकी मार, मोरा०।।९६।।

दान देत मुनिराजको जी, पावै परमानंद।
सुरनर कोटि सेवा करैजी, प्रतपै तेज दिनंद, मोरा०।।९७।।

नरनारी कोऊ धरोजी, शील व्रतहिं शिरदार।
सुख अनेक सो जी लहैजी, देखो फरस प्रकार, मोरा०।।९८।।

तपकर काया कृश करेजी, उपजै पुण्य अपार।
सुख विलसै सुर लोककेजी, अथवा भवदधि पार, मोरा०।।९९।।

भाव जु आतम भावतोजी, सो बैठो मो माहिं।
काया विन किरिया नही जी, किरिया विन सुख नाहिं, मोरा०।।१००।।

गज सुकुमार गिस्यो नहीं जी, फरस तपत भई जोर।
केवल ज्ञान उपायकैंजी, पहुँच्यो शिवगति ओर, मोरा०।।१०१।।

खंदक ऋषिकी खाल उतारी; सह्यो परीसह जोर।
पूर्व बंध छूटै नहीजी, घट गये कर्म कठोर, मोरा०।।१०२।।

देखहु मुनि दमदंतको जी, कौरों करी उपाधि।
ईटनमें गर्भित भयोजी, तऊन तजीय समाधि, मोरा०।।१०३।।

सेठ सुदर्शनको दियोजी, राजा दंड प्रहार।
सह्यो परीसह भावस्योंजी, प्रगट्यो पुण्य अपार, मोरा०।।१०४।।

प्रसन्न चन्द्र शिर फरसियोजी, फिर जगये सब भाव।
नरकहि तज शिवगति लहीजी, देखहु फरस उपाव, मोरा०।।१०५।।

जेते जिय मुकते गयेजी, फरसहिके उपगार।
पंच महाव्रत विनधरेजी, कोऊ न उतस्यो पार, मोरा०।।१०६।।

नांव कहांलों लीजियजी, वीत्यो काल अनंत।
भैया मुझ उपकारकोजी, जानै श्रीभगवंत, मोरा०।।१०७।।

सोरठा

मन बोल्यो तिहँ ठौर, अरे फरस संसारमें।
तू मूरख शिरमौर, कहा गर्व झूंठो करै।।१०८।।

इक अंगुल परमान, रोग छानवें भर रहे।
कहा करै अभिमान, देख अवस्था नरककी।।१०९।।

पांचों अव्रत सार, तिनसेती नित पोषिये।
उपजै कई विकार, एतेपैं अभिमान यह।।११०।।

छिन इकमें खिर जाय, देखत दृष्ट शरीर यह।
एतेपैं गर्वाय, तोसम मूरख कौन है।।१११।।

दोहा

मन राजा मन चक्रि ह्वै, मन सबको सिरदार।
मनसों बड़ो न दूसरो, देख्यो इहि संसार।।११२।।

मनतैं सबको जानिये, जीव जिते जगमाहिं।
मनतैं कर्म खपाइये, मनसरभर कोउ नाहिं।।११३।।

मनतैं करुणा कीजिये, मनतैं पुण्य अपार।
मनतैं आतमतत्त्वको, लखिये सबै विचार।।११४।।

मनहि सयोगी स्वामिपै, सत्य रह्यो ठहराय।
चार कर्मके नाशतैं, मन नहिं नाश्यो जाय।।११५।।

मन इन्द्रिनको भूप है, इन्द्रिय मनके दास।
यह तौ बात प्रसिद्ध है; कीन्हीं जिनपरकाश।।११६।।

तब बोले मुनिरायजी, मन क्यों गर्व करंत।
देख हु तंदुल मच्छको, तुमतैं नर्क परंत।।११७।।

पाप जीव कोई करो, तू अनुमोदै ताहि।
तासम पापी तू कह्यो, अनरथ लेहि बिसाहि।।११८।।

इन्द्रिय तौ बैठी रहैं, तू दौरै निशदीश।
छिन छिन बांधै कर्मको, देखत है जगदीश।।११९।।

बहुत बात कहिये कहा, मन सुनि एक विचार।
परमातमको ध्याइये, ज्यों लहिये भवपार।।१२०।।

मन बोल्यो मुनि राजसों, परमातम है कौन।
स्वामी ताहि बताइये, ज्यों लहिये सुख भौन।।१२१।।

आतमको हम जानते, जो राजत घट माहिं।
परमातम किह ठौर है, हम तौ जानत नाहिं।।१२२।।

परमातम उहि ठौर है, रागद्वेष जिहिं नाहिं।
ताको ध्यावत जीव ये, परमातम ह्वै जाहिं।।१२३।।

परमातम द्वै विधि लसै, सकल निकल परमान।
तिसमें तेरे घट वसै, देखि ताहि धर ध्यान।।१२४।।

ढाल – 'कपूर हुवै अति उजलो रे मिरियासेती रंग' ए देशी०

प्राणी आतम धरम अनूपरे, जगमें प्रगट चिद्रूप, प्राणी० टेक।

इन्द्रिनकी संगति कियेरे, जीव परै जग माहिं।
जन्म मरन बहु दुख सहैरे, कबहू छूटे नाहिं, प्राणी०।।१२५।।

भोंरो पर्‍यो रस नाककेरे, कमलमुदित भये रैन।
केतकी कांटन वाँधियोरे, कहूं न पायो चैन, प्राणी०।।१२६।।

काननकी संगत कियेरे, मृग मार्‍यो वन माहिं।
अहि पकर्‍यो रस कानकेरे, कितहू छूट्यो नाहिं, प्राणी०।।१२७।।

आँखनिरूप निहारकैरे, दीप परत है धाय।
देखहु प्रगट पतंगकोरे, खोवत अपनो काय, प्राणी०।।१२८।।

रसनारस मछ मारियोरे, दुर्जन कर विसवास।
यातैं जगत विगूचियोरे, सहै नरकदुख वास, प्राणी०।।१२९।।

फरसहितैं गज बसपर्‍योरे बंध्यो सांकल तान।
भूख प्यास सब दुखसहैरे, किहँ विधि कहहिं बखान, प्राणी०।।१३०।।

पंचेन्द्रियकी प्रीतिसोंरे, जीव सहै दुख घोर।
काल अनंतहिं जग फिरैरे, कहूँ न पावे ठोर, प्राणी०।।१३१।।

मन राजा कहिये वडोरे, इंद्रिनको सिरदार।
आठ पहर प्रेरत रहैरे, उपजै कई विकार, प्राणी०।।१३२।।

मन इंद्री संगति कियेरे, जीव परै जग जोय।
विषयनकी इच्छा वढेरे, कैसें शिवपुर होय, प्राणी०॥१३३॥

इन्द्रिनतैं मन मारियेरे, जोरिये आतम माहिं।
तोरिये नातो रागसोंरे, फोरिये बल श्यौ थाहिं, प्राणी०॥१३४॥

इन्द्रिन नेह निवारियेरे, टारिये क्रोध कषाय।
धारिये संपति शास्वतीरे, तारिये त्रिभुवन राय, प्राणी०॥१३५॥

गुण अनंत जामें लसैरे, केवल दर्शन आदि।
केवल ज्ञान विराजतोरे, चेतन चिह्न अनादि, प्राणी०॥१३६॥

थिरता काल अनादिलोंरे, राजै जिहँ पद माहिं।
मुख अनंत स्वामी बहैरे, दूजो कोऊ नाहिं, प्राणी०॥१३७॥

शक्ति अनंत विराजतीरे, दोष न जामहि कोय।
समकित गुणकर सोभितोरे, चेतन लखिये सोय, प्राणी०॥१३८॥

बढै घटै कबहू नहीरे, अविनाशी अविकार।
भिन्न रहै परद्रव्यसोंरे, सो चेतन निरधार, प्राणी०॥१३९॥

पंच वर्णमें जो नहींरे, नही पंच रस माहिं।
आठ फरसतैं भिन्नहैरे, गंध दोऊ कोउ नाहिं, प्राणी०॥१४०॥

जानत जो गुण द्रव्यकेरे, उपजन विनसन काल।
सो अविनाशी आतमारे, चिह्नहु चिह्न दयाल, प्राणी०॥१४१॥

गुण अनंत या ब्रह्मकेरे, कहिये किहँविधि नाम।
'भैया' मनवचकायसोंरे, कीजे तिहपरिणाम, प्राणी०॥१४२॥

दोहा

परद्रव्यनसों भिन्न जो, स्वकिय भाव रसलीन।

सो चेतन परमातमा, देख्यो ज्ञान प्रवीन।।१४३।।

जो देखै गुण द्रव्यके, जानै सबको भेद।
सो या घटमें प्रगट है, कहा करत है खेद।।१४४।।

सुख अनंतको नाथ वह, चिदानंद भगवान।
दर्शन ज्ञान विराजतो, देखो धर निज ध्यान।।१४५।।

देखनहारो ब्रह्म वह, घट घटमें परतच्छ।
मिथ्यातमके नाशतैं, सूझै सबको स्वच्छ।।१४६।।

जैसो शिव तैसो इहाँ, भैया फेर न कोय।
देखो सम्यक नयनसों, प्रगट विराजै सोय।।१४७।।

निकट ज्ञानदृग देखतैं, विकट चर्मदृग होय।
चिकट कटै जब रागकी, प्रगट चिदानंद जोय।।१४८।।

जिनवानी जो भगवती, दास तास जो कोय।
सो पावहि सुखसास्वते, परम धर्म पद होय।।१४९।।

संवत सत्र इक्यावने, नगर आगरे माहिं।
भादों सुदि सुभ दोजको, बालख्याल प्रगटाहिं।।१५०।।

सुरसमाहिं सब सुख वसै, कुरसमाहिं कछु नाहिं।
दुरस बात इतनी यहै, पुरुष प्रगट समझांहिं।।१५१।।

गुण लीजे गुणवंत नर, दोष न लीज्यो कोय।
जिनवानी हिरदै बसे, सबको मंगल होय।।१५२।।

इति पंचेन्द्रियसंवाद।

अथ ईश्वरनिर्णयपचीसी लिख्यते।

दोहा

परमेश्वर जो परमगुरु, परमज्योति जगदीस।
परमभाव उर आनकें, वंदत हों नमि सीस।।१।।

ईश्वर ईश्वर सब कहै, ईश्वर लखै न कोय।
ईश्वर तो सो ही लखै, जो समदृष्टी होय।।२।।

ब्रह्मा विष्णु महेश जे, ते पाये नहिं पार।
ता ईश्वरको और जन, क्यों पावै निरधार।।३।।

ईश्वरकी गति अगम है, पार न पायी जाय।
वेदस्मृति सब कहत हैं, नाम भजोरे भाय।।४।।

कवित्त

ब्रह्मा अरु विष्णु महादेव तीनों पच हारे, काहु न निहारे प्रभु कैसे जगदीस हैं। दशों अवतार माहिं कौनैधो[1] जनम लीन्हों, तिन हू न पाये परब्रह्म ऐसे ईस हैं। ध्रुव प्रहलाद दुरवासा लोम ऋषि भये, किन हू न कहे ऐसे आप विस्वावीस हैं। आवत अचंभो इह धावत सकल जग, पावत न कोऊ ताहि नावै काहि सीस हैं।।५।।

एक मतवारे कहैं अन्य मतवारे सब, मेरे मतवारे परवारे मत सारे हैं। एक पंचतत्त्ववारे एक एकतत्त्व बारे, एक भ्रममतबारे एक एक न्यारे हैं।। जैसें मतवारे वकैं तैसें मतवारे वकैं, तासों मतवारे तकैं विना मतवारे हैं। शांतिरसवारे कहैं मतको निवारे रहैं, तेई प्रानप्यारे लहैं और सब बारे[1] हैं।।६।।

---

१. किसने।

अनंगशेखर

अरे अज्ञान आतमा लखै न तू महातमा, लग्यो है तो महातमा निजातमा न सूझई। प्रसिद्ध जो विख्यातमा विराजै गात गातमा, कहावै पात पातमा चिदातमा न बूझई।। मिथ्यात्व मोह मातमा लग्यो तु जीव घातमा, क्रोधादि बातबातमा अज्ञातमा ह्वै झूझई। अनंत शक्ति जातमा उद्योत ज्यों प्रभातमा, सु सूझै खंध आतमा तू बंधमें अरुझई।।७।।

कवित्त

हिंसाके करैया जोपै जैहैं सुरलोक मध्य, नर्कमांहि कहो बुध कौन जीव जावेंगे?। लेकैं हाथ शस्त्र जेई छेदत पराये प्रान, ते नहीं पिशाच कहो और को कहावेंगे?।। ऐसे दुष्ट पापी जे संतापी पर जीवनके, ते तो सुख संपतिसों कैसेंके अघावेंगे।। अहो ज्ञानवंत संत तंतकै विचार देखो, बोवें जें बंबूर ते तौ आम कैसें खांवेगे?।।८।।

कुंडलिया

सुख जो तुमको चाहिये, सो सुख सबको चाह।
खान पान जीवत रहै, धन सनेह निरवाह।।
धन सनेह निरवाह, दाह दुख काहि न व्यापै।
थावर जंगम जीव, मरन भय धार जु कांपै।।
आपै देह विचार, होयकैं आपहि सनमुख।
'भैया' घटपट खोल, बोल कहि कौन चहै सुख।।९।।

कवित्त

वीतराग वानीकी न जानी बान प्रानी मूढ, प्रानी तैं क्रिया अनेक आपनी हठाहठी। कर्मनके बंध कौन अंध कछू सूझै तोहि, रागदोष

---

१. भोले।

पर्णितसों होत जो गठागठी।। आतमाके जीतकी न रीत कहू जानै रंच, ग्रंथनके पाठ तू करै कहा पठापठी। मोहको न कियो नाश सम्यक न लियो भास, सूत न कपास करै कोरीसों[1] लठालठी।।१०।।

हाथी घोरे पालकी नगारे रथ नालकी न, चकचोल चालकी न चढि रीझियतु है। स्वेतपट चालकी न मोती मन मालकी न, देख द्युति भाल की न मान कीजियतु है।। शैल बाग ताल की न जल जंतु जालकी न, दया वृद्ध बालकी न दंड दीजियतु है। देख गति कालकी न ताह कौन हालकी न, चाबिचूव गालकी न बीन लीजियतु है।।११।।

जैसें कौउ स्वान पर्‍यो काचके महलबीच, ठौर ठौर स्वान देख भूँस भूँस मर्‍यो है। बानर ज्यों मूठी बांध पर्‍यो है पराये वश, कूयेमें निहार सिंह आप कूद पर्‍यो है।। फटिककी शिलामें विलोक गज जाय अर्‍यो, नलिनीके सुवटाको कौनैधों पकर्‍यो है। तैसेंही अनादिको अज्ञानभाव मान हंस, आपनो स्वभाव भूलि जगतमें फिर्‍यो है।।१२।।

दोहा

ईश्वरके तो देह नहिं, अविनाशी अविकार।
ताहि कहैं शठ देह धर, लीन्हों जग अवतार।।१३।।

जो ईश्वर अवतार ले, मरै बहुर पुन सोय।
जन्म मरन जो धरतु है, सो ईश्वर किम होय।।१४।।

एकनकी घां होय कैं, मरै एकही आन।
ताको जे ईश्वर कहैं, ते मूरख पहचान।।१५।।

---

१. कपड़ा बुननेवाले सों।

ईश्वरके सब एकसे, जगतमांहि जे जीव।
काहूपै नहिं द्वेष है, सबपैं शांति सदीव।।१६।।
ईश्वरसों ईश्वर लरै, ईश्वर एक कि दोय।
परशुराम अरु रामको, देखहु किन जगलोय।।१७।।
रौद्र ध्यान वर्तैं जहां, तहां धर्म किम होय।
परम बंध निर्दय दशा, ईश्वर कहिये सोय।।१८।।
ब्रह्माके खरशीस हो, ता छेदन कियो ईस।
ताहि सृष्टिकर्त्ता कहै, रख्यो न अपनो सीस।।१९।।
जो पालक सब सृष्टिको, विष्णु नाम भूपाल।
सो मार्‍यो इक बानतैं, प्रान तजे ततकाल।।२०।।
महादेव वर दैत्यको, दीनों होय दयाल।
आपन पुन भाजत फिर्‍यो, राख लेहु गोपाल।।२१।।
जिनको जग ईश्वर कहै, ते तो ईश्वर नाहिं।
ये हू ईश्वर ध्यावते, सो ईश्वर घट माहिं।।२२।।
ईश्वर सो ही आतमा, जाति एक है तंत।।
कर्म रहित ईश्वर भये, कर्म सहित जगजंत।।२३।।
जो गुण आतम द्रव्यके, सो गुण आतम माहिं।
जड़के जड़में जनिये, यामै तो भ्रम नाहिं।।२४।।
दर्शन आदि अनंत गुण, जीव धरै तिहुं काल।
वर्णादिक पुद्गल धरै, प्रगट दुहूंकी चाल।।२५।।
सत्यारथ पथ छोड़के, लगै मृषाकी ओर।
ते मूरख संसारमें, लहै न भवको छोर।।२६।।

'भैया' ईश्वर जो लखै, सो जिय ईश्वर होय।
यों देख्यो सर्वज्ञने, यामें फेर न कोय।।२७।।

इति ईश्वरनिर्णयपचीसी।

अथ कर्त्ताअकर्त्तापचीसी लिख्यते।

दोहा

कर्मनको कर्त्ता नहीं, धरता सुद्ध सुभाय।
ता ईश्वरके चरन को, वंदों सीस नवाय।।१।।

जो ईश्वर करता कहैं, भुक्ता कहिये कौन।
जो करता सो भोगता, यहै न्यायको भौन।।२।।

दुहूं दोषतैं रहित है, ईश्वर ताको नाम।
मनवचशीस नवाइकैं, करूं ताहि परणाम।।३।।

कर्मनको करता बहै, जापैं ज्ञान न होय।
ईश्वर ज्ञानसमूह है, किम कर्त्ता ह्वै सोय।।४।।

ज्ञानवंत ज्ञानहिं करै, अज्ञानी अज्ञान।
जो ज्ञाता कर्त्ता कहै, लगै दोष असमान।।५।।

ज्ञानीपै जड़ता कहा, कर्त्ता ताको होय।
पंडित हिये विचारकैं, उत्तर दीजे सोय।।६।।

अज्ञानी जड़तामयी, करै अज्ञान निशंक।
कर्त्ता भुगता जीव यह, यों भाखै भगवंत।।७।।

ईश्वरकी जिय जात है, ज्ञानी तथा अज्ञान।
जो इह नै कर्त्ता कहो, तौ ह्वै बात प्रमान।।८।।

अज्ञानी कर्त्ता कहै, तौ सब बनै बनाव।
ज्ञानी ह्वै जड़ता करै, यह तौ बनै न न्याव।।९।।

ज्ञानी करता ज्ञानको, करै न कहुं अज्ञान।
अज्ञानी जड़ता करै, यह तो बात प्रमान।।१०।।

जो कर्त्ता जगदीश है, पुण्य पाप किहँ होय।
सुख दुख काको दीजिये, न्याय करहु बुध लोय।।११।।

नरकनमें जिय डारिये, पकर पकरकें बाँह।
जो ईश्वर करता कहो, तिनको कहा गुनाह।।१२।।

ईश्वरकी आज्ञा विना, करत न कोऊ काम।
हिंसादिक उपदेशको, कर्त्ता कहिये राम।।१३।।

कर्त्ता अपने कर्मको, अज्ञानी निर्धार।
दोष देत जगदीशको, यह मिथ्या आचार।।१४।।

ईश्वर तौ निर्दोष है, करता भुक्ता नाहिं।
ईश्वरको कर्त्ता कहै, ते मूरख जगमाहिं।।१५।।

ईश्वर निर्मल मुकुरवत, तीन लोक आभास।
सुख सत्ता चैतन्यमय, निश्चय ज्ञान विलास।।१६।।

जाके गुन तामें बसै, नहीं औरमें होय।
सूधी दृष्टि निहारतैं, दोष न लागै कोय।।१७।।

वीतरागवानी विमल, दोषरहित तिहुंकाल।
ताहि लखै नहिं मूढ जन, झूठे गुरुके बाल।।१८।।

गुरु अंधे शिष्य अंधकी, लखै न बाट कुवाट।
विना चक्षु भटकत फिरै, खुलै न हिये कपाट।।१९।।

जोलों मिथ्यादृष्टि है, तोलों कर्त्ता होय।
सो हू भावित कर्मको, दर्वित करै न कोय।।२०।।

दर्व कर्म पुद्गल मयी, कर्त्ता पुद्गल तास।
ज्ञानदृष्टिके होत ही, सूझे सब परकाश।।२१।।

जोलों जीव न जान ही, छहों कायके वीर।
तौलों रक्षा कौनकी, कर है साहस धीर।।२२।।

जानत है सब जीवको, मानत आप समान।
रक्षा यातैं करत है, सबमें दरसन ज्ञान।।२३।।

अपने अपने सहज[1] के, कर्त्ता हैं सब दर्व।
यहै धर्मको मूल है, समझ लेहु जिय सर्व।।२४।।

'भैया' बात अपार है, कहै कहांलों कोय।
थोरेहीमें समझियो, ज्ञानवंत जो होय।।२५।।

सत्रहसे इक्यानवै, पोष शुकल तिथि वार[2]।
जो ईश्वरके गुण लखै, सो पावे भवपार।।२६।।

इति कर्त्ताअकर्त्तापचीसी

----

१. स्वभाव के। २. सप्तमी।

अथ दृष्टांतपचीसी लिख्यते।

दोहा

केवल ज्ञान स्वरूपमें, वसै चिदातम देव।
मन बच शीस नवायकैं, कीजे तिनकी सेव।।१।।

एक शुद्ध परमातमा, दुविधि तास पद जान।
त्रिविधि नमत हों जोर कर, चहुं निक्षेपन बान।।२।।

सुरसति वर्षति मेघ जिम, जिन मुख अमृत धार।
पीवत है भवि जीव जे, ते सुख लहैं अपार।।३।।

जिय हिंसा जगमें बुरी, हिंसा फल दुख देत।
मकरी मांखी भक्ष्यती, ताहि चिरी भख लेत।।४।।

जिय हिंसा करते नहीं, धरते शुद्ध स्वभाय।
तौ देखौ मुनिराजके, सेवत सुरनर पाय।।५।।

झूंठ भलो नहिं जगतमें, देखहु किन दृग जोय।
झूंठी तेती बोलती, ता ढिग रहै न कोय।।६।।

सांच बडो संसारमें, मानत सब परमान।
सांच सूआ कहै रामको, सुनत सबै धर कान।।७।।

विन दीनों जे लेत हैं, ताहि लगै बहु पाप।
चौरहि सूरी दीजिये, देखहु जग संताप।।८।।

लेत नहीं परद्रव्यको, देत सकल परत्याग।
तौ लच्छी भगवानके, रहत चरन ढिग लाग।।९।।

शीलव्रत पालै नहीं, भालै परतिय रूप।
पेख हु रावन आदि बहु, परत नर्कके कूप।।१०।।

मन वच काया योगसों, शीलव्रतहिं ठहराय।
सेठ सुदर्शन देखिये, सुरगण भये सहाय।।११।।

परिग्रह संग्रह ना भलो, परिग्रह दुखको मूल।
माखी मधुको जोरती, देखहु दुखको शूल।।१२।।

जिनके परिग्रह रंच नहिं, मातजात जिम बाल।
तिह मुनिवरके इंद्र हू, सेवत चरन त्रिकाल।।१३।।

मन वच काया योगसों, सब त्यागी मुनिराज।
कछु त्यागी जिय अणुव्रती, तेहू हैं सिरताज।।१४।।

राग न कीजे जगतमें, राग किये दुख होय।
देखहु कोकिल पींजरै, गहि डारत हैं लोय।।१५।।

देख संडासी पकरिये, अहिरण ऊपर डार।
आगहि घनसों पीटिये, लोहै संग निवार।।१६।।

नेहन कीजै आनसों, नेह किये दुख होय।
नेह सहित तिल पेलिये, डार जंत्रमें जोय।।१७।।

परसंगति कीजे नहीं, परहि मिले दुख पेख।
पानी जैसें पीटिये, वस्त्र मिले दुख देख।।१८।।

पवन जु पोषै [१]मसकको, मसक थूल ह्वै जाय।
देखहु संगति दुष्टकी, पौनहि देह जराय।।१९।।

चेतन चंदन वृक्षसों, कर्म साँप लपटाहिं।
बोलत गुरुवच मोरके, सिथल होय दुर जाहिं।।२०।।

कुगुरु कुगतिके सारथी, मूढनको ले जाहिं।
हिंसाके उपदेश दै, धर्म कहै तिहमाहिं।।२१।।

१. लुहार की धोंकनी।

दक्षनके हित दक्षसों, शठकै शठसों प्रीत।
अलि अम्बुजपै देखिये, दर्दुर कर्द्दम मीत।।२२।।

परभावनसों विरचकें, निज भावनको ध्यान।
जो इह मारग अनुसरै, सो पावै निर्वान।।२३।।

बहुत बात कहिये कहा, थोरे ही दृष्टन्त।
जो पावै निज आतम, सो पावै भव अन्त।।२४।।

'भैया' निज पाये विना, भ्रमन अनंते कीन।
तेई तरे संसारमें, जिहँ आपो लखि लीन।।२५।।

एक सात पण दोय है, अश्विन दिशा[1] प्रकास।
यह दृष्टांत पचीसिका, कही भगोतीदास।।२६।।

इति दृष्टान्तपचीसी

अथ मनबत्तीसी लिख्यते।

दोहा

दर्शन ज्ञान चरित्र जिहँ, सुख अनंत प्रतिभास।
वंदत हों तिहँ देवको, मन धर परम हुलास।।१।।

मनसों वंदन कीजिये, मनसों धरिये ध्यान।
मनसों आतम तत्त्वको, लखिये सिद्ध समान।।२।।

मन खोजत है ब्रह्मको, मन सब करै विचार।
मनविन आतम तत्त्वको, करै कौन निरधार।।३।।

मनसम खोजी जगतमें, और दूसरो कौन।
खोज गहै शिवनाथको, लहै सुखनको भौन।।४।।

१. दशमी।

जो मन सुलटै आपको, तौ सूझै सब सांच।
जो उलटै संसारको, तौ मन सूझै कांच।।५।।

सत असत्य अनुभय उभय, मनके चार प्रकार।
दोय झुकै संसारको, द्वै पहुंचावै पार।।६।।

जो मन लगै ब्रह्मको, तो सुख होय अपार।
जो भटकै भ्रम भावमें, तौ दुख पार न वार।।७।।

मनसो बली न दूसरो, देख्यो इहि संसार।
तीन लोकमें फिरत ही, जातन लागै बार।।८।।

मन दासनको दास है, मन भूपनको भूप।
मन सब बातनि योग्य है, मनकी कथा अनूप।।९।।

मन राजाकी सैन सब, इन्द्रिनसे उमराव।
रात दिना दौरत फिरै, करै अनेक अन्याव।।१०।।

इन्द्रियसे उमराव जिहँ, विषय देश विचरंत।
भैया तिह मन भूपको, को जीतै विन संत।।११।।

मन चंचल मन चपल अति, मन बहु कर्म कमाय।
मन जीते विन आतमा, मुक्ति कहो किम थाय।।१२।।

मनसो जोधा जगतमें, और दूसरों नाहिं।
ताहि पछारै सो सुभट, जीत लहै जग माहिं।।१३।।

इमन इन्द्रिनको भूप है, ताहि करै जो जेर।
सो सुख पावे मुक्तिके, यामें कछू न फेर।।१४।।

जब मन मुंद्यो ध्यानमें, इंद्रिय भई निराश।
तब इह आतम ब्रह्मने, कीने निज परकाश।।१५।।

मनसो मूरख जगतमें, दूजो कौन कहाय।
सुख समुद्रको छाडकें, विषके बनमें जाय।।१६।।
विष भक्षनतैं दुख बढै, जानै सब संसार।
तबहू मन समझै नहीं, विषयन सेती प्यार।।१७।।
छहों खंडके भूप सब, जीत किये निजदास।
जो मन एक न जीतियो, सहै नर्क दुख वास।।१८।।
छाँड़ तनकसी झूंपरी, और लंगोटी साज।
सुख अनंत विलसंत है, मन जीतै मुनिराज।।१९।।
कोटि सताइस अपछरा, वत्तिस लक्ष विमान।
मन जीते विन इन्द्र हू, सहै गर्भ दुख आन।।२०।।
छाँड़ घरहि बनमें बसै, मन जीतनके काज।
तौ देखो मुनिराजजू, विलसत शिवपुर राज।।२१।।
अरि जीतनको जोर है, मन जीतनको खाम।
देख त्रिखंडी भूपको, परत नर्कके धाम।।२२।।
मन जीतै जे जगतमें, ते सुख लहै अनंत।
यह तौ बात प्रसिद्ध है, देख्यो श्रीभगवंत।।२३।।
देख बड़े आरंभसों, चक्रवर्ति जग माहिं।
फेरत ही मन एकको, चले मुक्तिमें जांहिं।।२४।।
बाहिज परिगह रंच नहिं, मनमें धरै विकार।
तंदुल मच्छ निहारिये, पड़ै नरक निरधार।।२५।।
भावनहीतैं बंध है, भावनहीतैं मुक्ति।
जो जानै गति भावकी, सो जानै यह युक्ति।।२६।।
परिग्रह कारन मोहको, इम भाख्यो भगवान।
जिहँ जिय मोह निवारियो, तिहिं पायो कल्यान।।२७।।

अरिल्ल

कहा भयो बहु फिरे तीर्थ अड़सट्ठका।
कहा होय तन दहे, रैन दिन कट्ठका।।
कहा होय नित रटै राम मुख पट्ठका।
जो बस नाही तोहि पसेरी[१] अट्ठका।।२८।।

कहा मुंडाये मूंड बसे कहा मट्ठका।
कहा नहाये गंग नदीके तट्टका।।
कहा कथाके सुने वचनके पट्ठका।
जो बस नाही तोहि पसेरी अट्ठका।।२९।।

चौपाई १६ मात्रा

कहा कहों जियकी जड़ताई। मोपैं कछु बरनी नहिं जाई।।
आरज खंड मनुष्यभव पायो। सो विषयनसँग खेल गमायो।।३०।।

आगें कहो कौन गति जैहो। ऐसे जनम बहुर कहाँ पैहो।।
अरे तू मूरख चेत सवेरे। आवत काल छिनहि छिन ने रे।।३१।।

जबलों जमकी फौज न आवै। तबलों जो मनको समुझावै।।
आतम तत्त्व सिद्धसम राजै। ताहि विलोक मर्नभय भाजै।।३२।।

बहुत बात कहिये कहु केती। कारज एक ब्रह्म ही सेती।।
ब्रह्म लखै सो ही सुख पावै। भैया सो परब्रह्म कहावै।।३३।।

चौपाई १५ मात्रा

नगर आगरे जैनी बसै। गुण मणिरिद्ध वृद्धि कर लसै।।
तिहँ थानक मन ब्रह्म प्रकाश। रचना कही 'भगोतीदास'।।३४।।

इति मनबत्तीसी

------

१. आठ पसेरी का मन।

अथ स्वप्नबत्तीसी लिख्यते।

दोहा

स्वपनेवत संसारमें, जागे श्रीजिनराय।
तिनके चरन चितारकें, वंदत हों मन लाय।।१।।

मोह नींदमें जीवको, बीत गयो चिरकाल।
जाग न कबहू आपकी, कीन्ही सुध संभाल।।२।।

जानत है सब जगतमें, यह तन रहवो नाहिं।
पोषत है किहँ भावसों, मोह गहलता माहिं।।३।।

मेरे मीत नचीत तू, ह्वै बैठ्यो किहँ ठौर।
आज काल जम लेत है, तोहि सुपन भ्रम और।।४।।

देखत देखत आंखसों, यह तन विनस्यो जाय।
एतेपर थिर मानिये, यहो मूढ शिरराय।।५।।

जो प्रभातको देखिये, सो संध्याको नाहिं।
ताहि सांच कर मानिये, भ्रम अरु कहा कहाहिं।।६।।

ज्यों सुपनेमें देखिये, त्यों देखत परतच्छ।
सबै विनाशी वस्तु है, जात छिनकमें गच्छ[1]।।७।।

सुपनेमें भ्रम देखिये, जागत हू भ्रम मूल।
ताहि सांच शठ मानकें, रह्यो जगतमें फूल।।८।।

सुपनेमें अरु जागतें, फेर कहा है बीर।
बाहूमें भ्रम भूल है, बाहूमें भ्रम भीर।।९।।

सुपनेवत संसार है, मूढ़ न जाने भेव।
आठ पहर अज्ञानमें, मग्न रहैं अहमेव।।१०।।

---

१. चली।

सुपनेसों कहै झूंठ है, जाग कहै निजगेह।
ते मूरख संसारमें, लहै न भवको छेह।।११।।

कहा सुपनमें सांच है? कहा जगतमें सांच?।
भूल मूढ थिरमानकें, नाचत डोलै नाच।।१२।।

आँख मूंद खोलै कहा, जागत कोऊ नाहिं।
सोवत सब संसार है, मोह गहलता माहिं।।१३।।

मोह नींदको त्यागकें, जे जिय भये सचेत।
ते जागे संसारमें, अविनाशी सुख लेत।।१४।।

अविनाशी पद ब्रह्मको, सुख अनंतको मूल।
जाग लह्यो जिहँ जगतमें, तिहँ पायो भवकूल।।१५।।

अविनाशी घट घट प्रगट, लखत न कोऊ ताहि।
सोय रहे भ्रम नींदमें, कहि समुझावैं काहि।।१६।।

आप कहै हम दक्ष हैं, और न कहै अज्ञान।
अहो सुपनकी भूलमें, कहा गहै अभिमान।।१७।।

मान आपको भूपती, औरनसों कहै रंक।
देख सुपनकी संपदा, मोहित मूढ निशंक।।१८।।

देख सुपनकी साहिबी, मूरख रह्यो लुभाय।
छिन इकमें छय जायगी, धूम महलके न्याय।।१९।।

कहा सुपनकी साहिबी, मूरख हिये विचार।
जम जोधा छिन एकमें, लेहैं तोहि पछार।।२०।।

सोवतमें इह जीवको, सुरति रहै नहिं रंच।
आप कहू मानै कहू, सबहि भरम परपंच।।२१।।

मूरख है यह आतमा, क्यों ही समझत नाहिं।
देख सुपनवत आंखसों, बहुर मगन तिह माहिं।।२२।।

जानत है जमराजकी, आवत फौज प्रचंड।
मार करै इह देहको, छिनक माहिं शत खंड।।२३।।

ऐसे जमको भय नहीं, पोषत तन मन लाय।
तिनसम मूरख जगतमें, दूजो कौन कहाय।।२४।।

मूरख सोवत जगतमें, मोह गहलतामाहिं।
जन्म मरन बहु दुख सहै, तो हू जागत नाहिं।।२५।।

जन ऊपर जम जोर है, जिनसों जम हु डराय।
तिनके पद जो सेइये, जमकी कहा बसाय।।२६।।

जिनके पदको सेवते, निजपद परगट होय।
तिनतैं बडो न दूसरो, और जगतमें कोय।।२७।।

निजपद परगट होत ही, शिवपद मिलै सुभाय।
जनम मरन बहु दुख मिटै, जम विलख्यो ह्वै जाय।२८।।

जम जीतेतैं जीवको, सुख अनंत ध्रुव होय।
बहुर न कबहू, सोयबो, जगे कहावें सोय।।२९।।

जम जीते जीते बहै, जागे वहै प्रमान।
बहै सबन शिरमुकट है, चेतन धर तिहँ ध्यान।।३०।।

ध्यान धरत परब्रह्मको, तोहि परमपद होय।
तुहू कहावै सिद्धमय, और कहै कहा कोय।।३१।।

चेतन ढील न कीजिये, धरहु ब्रह्मको ध्यान।
सुख अनंत शिवलोकमें, प्रगटै महा कल्यान।।३२।।

इह विधि जो जागै पुरुष, निज दृग कर परकास।
तिहँ पायो सुख शास्वतो, कहै 'भगोतीदास'।।३३।।

उग्रसेनपुर अवनिपैं, शोभत मुकट समान।
तिह थानक रचना कही, समुझ लेहु गुणवान।।३४।।

इति सुपनबत्तीसी

अथ सूबाबत्तीसी लिख्यते।

दोहा

नमस्कार जिन देवको, करों दुहू करजोर।
सुवा बतीसी सुरस मैं, कहू अरिनदलमोर।।१।।

आतम सुआ सुगुरु वचन, पढत रहै दिन रैन।
करत काज अघरीतिके, यह अचरज लखि नैन।।२।।

सुगुरु पढावे प्रेमसों, यहू पढत मनलाय।
घटके पट जो ना खुलै, सबहि अकारथ जाय।।३।।

चौपाई

सुवा पढायो सुगुरु बनाय। करम बनहि जिन जाइयो भाय।।
भूले चूके कबहु न जाहु। लोभनलिनिपैं दगा न खाहु।।४।।

दुर्जन मोह दगाके काज। बांघी नलनी तर धर नाज।।
तुम जिन बैठ हु सुवा सुजान। नाज विषयसुख लहि तिहँ थान।।५।।

जो बैठहु तो पकरि न रहियो। जो पकरो तो दृढ जिन गहियो।।
जो दृढ गहो तो उलटि न जइयो। जो उलटो तौ तजि भजि धइयो।।६।।

इह विधि सूआ पढायो नित्त। सुवटा पढिकें भयो विचित्त।।
पढत रहै निशदिन ये वैन। सुनत लहै सब प्रानी चैन।।७।।

इक दिन सुवटै आई मनै। गुरु संगत तज भज गये बनै।।
वनमें लोभ नलिन अति बनी। दुर्जन मोह दगाको तनी।।८।।

ता तरु विषयभोग अन धरे। सुवटै जान्यो ये सुख खरे।।
उतरे विषयसुखनके काज। बैठ नलिनपैं बिलसै राज।।९।।

बैठो लोभ नलिनपैं जबै। विषय स्वाद रस लटके तबै।।
लटकत तरैं उलटि गये भाव। तर मूंडी ऊपर भये पांव।।१०।।

नलिनी दृढ पकरै पुनि रहै। मुखतैं वचन दीनता कहै।।
कोउ न बनमें छुडावनहार। नलनी पकरहि करहि पुकार।।११।।

पढत रहै गुरुके सब वैन। जे जे हितकर सिखये ऐन।।
सुवटा वनमें उड जिन जाहु। जाहु तो भूल खता जिन खाहु।।१२।।

नलनीके जिन जइयो तीर। जाहु तो तहां न बैठहु वीर।।
जो बैठो तो दृढ जिन गहो। जो दृढ गहो तो पकरि न रहो।।१३।।

जो पकरो तो चुगा न खइयो। जो तुम खावो तो उलटन जइयो।।
जो उलटो तो तज भज धइयो। इतनी सीख हृदय मैं लहियो।।१४।।

ऐसे वचन पढत पुन रहै। लोभ नलनि तज भज्यो न चहै।।
आयो दुर्जन दुर्गति रूप। पकड़े सुवटा सुंदर भूप।।१५।।

डारे दुखके जाल मझार। सो दुख कहत न आवै पार।।
भूख प्यास बहु संकट सहै। परवस परे महा दुख लहै।।१६।।

सुवटाकी सुधि बुधि सब गई। यह तौ बात और कछु भई।।
आय परे दुख सागर माहिं। अब इततैं कितको भज जाहिं।।१७।।

केतो काल गयो इह ठौर। सुवटै जियमें ठानी और।।
यह दुख जाल कटै किहँ भाँति। ऐसी मनमें उपजी खाँति।।१८।।

रात दिना प्रभु सुमरन करै। पाप जाल काटन चित धरै।।
क्रम क्रम कर काट्यो अघजाल। सुमरन फल भयो दीनदयाल।।१९।।

अब इततैं जो भजकें जाउं। तौ नलनीपर बैठ न खाउं।।
पायो दाव भज्यो ततकाल। तज दुर्जन दुर्गति जंजाल।।२०।।

आये उडत बहुर वनमाहिं। बैठे नरभव द्रुमकी छाहिं।।
तित इक साधु महा मुनिराय। धर्म दर्शना देत सुभाय।।२१।।

यह संसार कर्मवनरूप। तामहि चेतन सुआ अनूप।।
पढत रहै गुरु वचन विशाल। तौ हू न अपनी करै संभाल।।२२।।

लोभ नलिनपैं बैठे जाय। विषय स्वाद रस लटके आय।।
पकरहि दुर्जन दुर्गति परै। तामें दु:ख बहुत जिय भरै।।२३।।

सो दुख कहत न आवै पार। जानत जिनवर ज्ञानमझार।।
सुनतैं सुवटा चौंक्यो आप। यह तो मोहि पर्‍यो सब पाप।।२४।।

ये दुख तौ सब मैं ही सहे। जो मुनिवरने मुखतैं कहे।।
सुवटा सोचै हिये मझार। ये गुरु सांचे तारनहार।।२५।।

मैं शठ फिर्‍यो करमवन माहिं। ऐसे गुरु कहुँ पाये नाहिं।।
अब मोहि पुण्य उदै कछु भयो। सांचे गुरुको दर्शन लयो।।२६।।

गुरुकी गुणस्तुति बारंबार। सुमिरै सुवटा हिये मझार।।
सुमरत आप पाप भज गयो। घटके पट खुल सम्यक थयो।।२७।।

समकित होत लखी सब बात। यह मैं यह परद्रव्य विख्यात।।
चेतनके गुण निजमहि धरे। पुद्‍गल रागादिक परिहरे।।२८।।

आप मगन अपने गुण माहिं। जन्म मरण भय जियको नाहिं।।
सिद्ध समान निहारत हिये। कर्म कलंक सबहि तज दिये।।२९।।

ध्यावत आप माहिं जगदीश। दुहुंपद एक विराजत ईश।।
इहविधि सुवटा ध्यावत ध्यान। दिनदिन प्रति प्रगटत कल्यान।।३०।।

अनुक्रम शिवपद जियको भया। सुख अनंत विलसत नित नया।।
सतसंगति सबको सुख देय। जो कछु हियमें ज्ञान धरेय।।३१।।

केवलिपद आतम अनुभूत। घट घट राजत ज्ञान संजूत।।
सुख अनंत विलसै जिय सोय। जाके निजपद परगट होय।।३२।।

सुवा बतीसी सुनहु सुजान। निजपद प्रगटत परम निधान।।
सुख अनंत बिलसहु ध्रुव नित्त। 'भैयाकी' विनती धर चित्त।।३३।।

संवत सत्रह त्रेपन माहिं। अश्विन पहिले पक्ष कहाहिं।।
दशमी दशों दिशा परकास। गुरु संगति तैं शिव सुखभास।।३४।।

इति सूवाबत्तीसी

अथ ज्योतिषके छन्द लिख्यते।

छप्पय।

दिन करके दिन बीस, चंद्र पंचास प्रमानहु।
मंगल विंशति आठ, बुद्ध छप्पन शुभ ठानहु।।
शनिके गण छत्तीस, देव गुरु दिनहि अठावन।
राहु वियालिस लहिय, शुक्र सत्तर मन भावन।।
इम गनहु दशा निजराशितैं, सूरज जित संक्रमहिं तित।
शुभफलहिं विचारहु भविक जन, परम धरम अवधार चित।।१।।

मेष वृछिक पति भौम, वृषभ तुलनाथ शुक्र सुर।
मीनराशि धनराशि ईश, तस कहत देव गुरु।।

कन्या मिथुन बुधेश, कर्क स्वामी श्री चंद गणि।
मकर कुंभ नृप शनी, सिंह राशिहि प्रभु रवि भणि।।
ये राशी द्वादश जगतमें, ज्योतिष ग्रंथ वखानिये।
तस नाथ सात लख भविकजन, परम तत्त्व उर आनिये।।२।।

मेष सूर वृष चंद्र, मकर मंगल गण लिज्जै।
कन्या बुध अति शुद्ध कर्क सुरगुरुहि भणिज्जै।।
मीन शुक्र सुख करन, तुलहि दुख हरन शनीश्चर।
मिथुन राहु जय करय, भरय भंडार धनीश्वर।।
इह विधि अनेक गुण उच्च महि, रिद्ध सिद्धि संपति भरय।
तस नाथ सात लखि भविक जन, पर्म धर्म जिय जय करय।।३।।

दोहा

तुल सूरज वृश्चिक शशी, कर्क भौम बुध मीन।
मकर वृहस्पति कन्य भृगु, मेष शनिश्चर दीन।।४।।

राहु होय धन राशि जो, ए सब कहिये नीच।
परमारथ इनमें इतो, रहिये निज सुख बीच।।५।।

इति ज्योतिषछन्द

अथ पद राग प्रभाती

साहिब जाके अमर है सेवक सब ताके।
दीप और पर दीपमें भर रहे सदाके, साहिब०।।१।।

जामे तीर्थंकर भये चक्री बसु देवा।
काल अनंतहु एकसे, घट बढ नहि टेवा, साहिब०।।२।।

जाकी उत्पति नित्य है नित होय विनाशा।
जीव विना पुद्‌गल विना सागर सम वासा, साहिब०।।३।।

अर्थ कहो याको कहा विनती सौ बारा।
नाव कह्यो या पद विषै, तुम लेहु विचारा, साहिब०।।४।।

पुनः

कहा तनकसी आयुषैं, मूरख तू नाचै।
सागरथितिधर खिर गये, तू कैसें वांचै, कहा०।।१।।

देख सुपनकी संपदा, तू मानत सांचै।
वे जु नर्ककी आपदा, जर है को आंचै, कहा०।।२।।

धर्मकर्ममें को भलो परखो मणि कांचै।
भैया आप निहारिये परसों मति मांचै, कहा०।।३।।

इति पद

अथ फुटकर कविता लिख्यते।

कवित्त

तेरो ही स्वभाव चिनमूरति विराजत है, तेरो ही स्वभाव सुख सागरमें लहिये। तेरो ही स्वभाव ज्ञान दरसन राजत है, तेरो ही स्वभाव ध्रुव चारितमें कहिये।। तेरो ही स्वभाव अविनाशी सदा दीसत है तेरो ही स्वभाव परभावमें न गहिये। तेरो ही स्वभाव सब आन लसै ब्रह्ममाहिं यातैं तोहि जगतको ईश सरदहिये।।१।।

मोह मेरे सारेने विगारे आन जीव सब, जगतके वासी तैसे वासी कर राखे हैं।। कर्मगिरिकंदरामें बसत छिपाये आप, करत अनेक पाप जात कैसे भाखे हैं।। विषैवन जोर तामे चोरको निवास सदा, परधन

हरवेके भाव अभिलाखे हैं। तापै जिनराज जूके बैन फौजदार चढे, आन आन मिले तिन्हें मोक्ष देश दाखे हैं।।२।।

जोलों तेरे हिये भर्म तोलों तू न जानै मर्म, कौन आप कौन कर्म कौन धर्म सांच है। देखत शरीर चर्म जो न सहै शीत धर्म, ताहि धोय मानै धर्म ऐसे भ्रम माच है।। नेक हू न होय नर्म बात बातमाहिं गर्म, रहो चाहै हेम हर्म[1] वसनाहीं पांच है। एते पै न गहै शर्म कैसें ह्वै प्रकाश पर्म, ऐसे मूढ भर्ममाहिं नाचै कर्म नाच है।।३।।

अमल सु पी रहैरी अमल सुपीरहैरी, अमल वही रहैरी अमल सु पीर है। बानी जो गहीरहैरी वानी जो वही रहैरी, वानी न कही लहैरी वानी न कही रहै।। परको शरीरहैरी परको नही रहैरी, परको नही रहैरी वहै दुख भीर है। भौदधि गहीरहैरी आयो तिह तीरहैरी, चेतै निज घां कहीरी पर ह्वै सही रहै।।४।।

अरिनके ठट्ट दह वट्ट कर डारे जिन, करम सुभट्टनके पट्टन उजारे हैं। नर्क तिरजंच चट पट्ट देकैं बैठ रहे, विषै चौर झट झट्ट पकर पछारे हैं।। भौ वन कटाय डारे अट्ठ मद दुट्ठ मारे, मदनके देश जारे क्रोध हू संहारे हैं।। चढ़त सम्यक्त सूर बढत प्रताप पूर, सुखके समूह भूर सिद्धके निहारे हैं।।५।।

बारबार फिर आई बारबार फिर आई, बारबार फेर आई आतमसों हरी है। बारबार जुर आई बारबार जर आई, बारबार जार आई ऐसी नीच खरी है।। बारबार बार चाहै बारबार बार चाहै, बारबार चार चाहै मानो चार दरी है। बारबार धोखो खाहि बारबार कहै काहि, बारबार पोषै ताहि बारबुधि करी है।।६।।

---

१. महल।

अपनी कमाई भैया पाई तुम यहां आय, अब कछु सोच किये हाथ कहा परि है। तब तो विचार कछु कीन्हों नाहिं बंधसमै, याके फल उदै आय हमै ऐसे करि है।। अब पछताये कहा होत है अज्ञानी जीव, भुगते ही वनै कृति कर्म कहूं हरि है। आगेको संभारिकें विचार काम वही करि, जातें चिदानंद फंद फेरकै न धरि है।।७।।

नाम मात्र जैनी पै न सरधान शुद्ध कहूं, मूँड़के मुँड़ाये कहा सिद्धि भई बावरे। काय कृश किये कछू कर्म तौ न कृश होहिं, मोह कृश करिवेको भयो तो न चावरे।। छाँड्यो घरबार पै न छांड्यो घरबार कोऊ, बार बार ढूंढै धन वनै कहूं दावरे। कलियुगके साधुकी वडाई कहो केती कीजे, रात दिना जाके भाव रहैं हाव हावरे।।८।।

सवैया

हे मन नीच निपात निरर्थक, काहेको सोच करै नित कूरो।
तू कितहू कितहू पर द्रव्य है, ताहिकी चाह निशा दिन झूरो।।
आवत हाथ कछू शठ तेरे जु, बांधत पाप प्रणाम न पूरो।
आगेको बेल बढै दुखकी कछु, सूझत नाहिं किधों भयो सूरो।।९।।

छप्पय छंद

शीश गर्व नहिं नम्यो, कान नहिं सुनै बैन सत।
नैन न निरखे साधु, वैनतैं कहे न शिवपति।।
करतें दान न दीन, हृदय कछु दया न कीनी।
पेट भर्‌यो कर पाप, पीठ परतिय नहिं दीनी।।
चरन चले नहिं तीर्थ कहँ, तिहि शरीर कहा कीजिये।
इमि कहै श्याल रे श्वान यह! निंद निकृष्ट न लीजिये।।१०।।

सवैया (मात्रिक)

मनवचकाय योग तीनहुंसों, सब जीवनको रक्षक होय।
झूठे वचन न बोलै कबहू, बिना दिये कछु लेय न जोय।।
शीलव्रताहिं पालै निरदूषन, दुविधि परिग्रह रंच न कोय।
पंच महाव्रत ये जिन भाषित, इहि मगचलै साधु है सोय।।११।।

कवित्त

पेटहीके काज महाराजजूको छांड़ देत, पेटहीके काज झूंठ जंपत बनायकें। पेटहीके काज राव रंकको बखान करै, पेटहीके काज तिन्हें मेरु कहै जायकें।। पेटहीके काज पाप करत डरात नाहिं, पेटहीके काज नीच नवै शिर नायकें। पेटहीके काजको खुशामदी अनेक करै, ऐसे मूढ पेट भरै पंडित कहायकें[1]।।१२।।

छप्पय

वीतरागके बिंब सेव, समदृष्टी करई।
अष्टक द्रव्य चढाय, भाल भरि आगे धरई।।
पूजा पाठ प्रमान, जाप जप ध्यानहिं ध्यावै।
अचल अंग थिरभाव, शुद्ध आतम लौ लावै।।
मंजार निरखि नैवेद्यको, मर्कट फल इच्छा धरहि।
तंदुलहिं चिरा पुष्पहिं भँवर, एक थाल भुंजन करहि।।१३।।

मात्रिक कवित्त

जे जिहँ काल जीव मत ग्राही, किरिया भावहोहिं रस रत्त।
कर करनी निज मन आनंदै, वांछा फल चिंतहिं दिन रत्त।।
रहित विवेक सु ग्रंथ पाठ कर, झार धूर पद तीन धरत्त।
तिनको कहिये औगुन थानक, चक्रीधरमें नृपति भरत्त।।१४।।

---

१. कहत।

कवित्त

केई केई बेर भये भूपर प्रचंड भूप, बड़े बड़े भूपनके देश छीनलीने हैं। केई केई बेर भये सुर भौनवासी देव, केई केई बेर तो निवास नर्क कीने हैं।। केई केई बेर भये कीट मलमूत माहिं, ऐसी गति नीचबीच सुख मान भीने हैं। कौड़ीके अनंत भाग आपन विकाय चुके, गर्व कहा करे मूढ़! देख! दृग दीने हैं।।१५।।

जब जोग मिल्यो जिनदेवजीके दरसको, तब तो संभार कछु करी नाहिं छतियाँ। सुनि जिनवानीपै न आनी कहू मन माहिं, ऐसो यह प्रानी यों अज्ञानी भयो मतियाँ।। स्वपर विचारको प्रकार कछु कीन्हों नाहिं, अब भयो बोध तब झूरे दिन रतियाँ। इहाँ तो उपाय कछु बनै नाहिं संजमको, बीत गयो औसर बनाय कहै बतियाँ।।१६।।

छप्पय

जहाँ जपहिं नवकार, तहाँ अघ कैसे आवें।
जहाँ जपहिं नवकार, तहाँ व्यंतर भज जावें।।
जहाँ जपहिं नवकार, तहाँ सुख संपति होई।
जहाँ जपहिं नवकार, तहाँ दुख रहै न कोई।।
नवकार जपत नव निधि मिलै, सुख समूह आवै सरव।
सो महामंत्र शुभ ध्यानसों, 'भैया' नित जपवो करव।।१७।।

दोहा

सीमंधरस्वामी प्रमुख, वर्त्तमान जिनदेव।
मन वच शीस नवायके, कीजे तिनकी सेव।।१८।।

महिमा केवल ज्ञानकी, जानत है श्रुतज्ञान।
तातें दुहू बराबरी, भाषे श्री भगवान।।१९।।

जितनो केवल ज्ञान है, तितनो है श्रुतज्ञान।
नाव भिन्न यातें कह्यो, कर्म पटल दरम्यान[१]।।२०।।

विन कषायके त्यागतें, सुख नहिं पावै जीव।
ऐसे श्री जिनवर कही, बानी माहिं सदीव।।२१।।

जो कुदेवमें देव बुधि, देव विषै बुधि आन।
जो इन भावन परिणवै, सो मिथ्या सरधान।।२२।।

जैसे [२]पटको पेखनो, तैसो यह संसार।
आय दिखाई देत है, जात न लागै बार।।२३।।

त्याग विना तिरवो नहीं, देखहु हिये विचार।
तूंबी लेपहिं त्यागती, तब तर पहुँचै पार।।२४।।

त्याग बडो संसारमें, पहुँचावै शिवलोक।
त्यागहितें सब पाइये, सुख अनंतके थोक।।२५।।

सुगुरु कहत है शिष्यको, आपहि आप निहार।
भले रहे तुम भूलिकें, आपहि आप विसार।।२६।।

जो घर तज्यो तो कहा भयो, राग तज्यो नहिं वीर!।
साँप तजै ज्यों कंचुकी, विष नहिं तजै शरीर।।२७।।

भरतक्षेत्र पंचम समय, साधु परिग्रहवंत।
कोटि सात अरु अर्ध सब, नरकहिं जाय परंत।।२८।।

देत मरन भव सांप इक, कुगुरु अनंती बार।
वरु सांपहिं गहपकरिये, कुगुरु न पकर गँवार।।२९।।

बाघ सिंघको भय कहा? एकबार तन लेय।
भय आवत है कुगुरुको, भवभव अति दुख देय।।३०।।

---

१. बीच में। २. पटवीजना (खद्योत)।

दृगके दोष न छूटहीं, मृग जिमि फिरत अजान।
धृग जीवन या पुरुषको, भृगुकेदास[1] समान।।३१।।

केवलज्ञान स्वरूप मय, राजत श्री जिनराय।
वंदत हों तिनके चरन, मन वच शीस नवाय।।३२।।

कर्मनके वश जीव सब, बसत जगतके माहिं।
जे कर्मनको बस किये, ते सब शिवपुर जाहिं।।३३।।

इति फुटकर कविता

अथ परमात्मशतक लिख्यते।

दोहा

पंचम परम पद प्रणमिके, परम पुरुष आराधि।
कहों कछू संक्षेपसों, केवल ब्रह्म समाधि।।१।।

सकल देवमें देव यह, सकल सिद्धमें सिद्ध।
सकल साधुमें साधु यह, पेख निजातमरिद्ध।।२।।

सारे विभ्रम मोहके, सारे जगत मँझार।
सारे तिनके तुम परे, सारे गुणहिं विसार।।३।।

---

२. यह निजातम की समृद्धि सम्पूर्ण देवों में देव, सम्पूर्ण सिद्ध परमात्माओं में सिद्ध और सम्पूर्ण साधुओं में साधु है इससे हे भव्य उस निजातम रिद्धि को पेख अर्थात् देख।।

(३) (सारे) सम्पूर्ण जगत में जो मोह के (सारे) सब विभ्रम हैं, तुम (सारे) उत्तम २ गुणों को विसारके उन्हीं के (सारे) सहारे अर्थात् आश्रय पड़े हो।

---

१. एकाक्षी (काना)।

सोरठा

पीरे होहु सुजान, पीरे का रे ह्वै रहे।
पीरे तुम बिन ज्ञान, पीरे सुधा सुबुद्धि कहँ।।४।।
विमल रूप निजमान, विमल आन तू ज्ञान में।
विमल जगतमें जान, विमल समलतामें भयो।५।।
उजरे भाव अज्ञान, उजरे जिहँतें बंधये।
उजरे निरखे भान, उजरे चारहु गतिनतें।।६।।
सुमरहु आतम ध्यान, जिहि सुमरे सिधि होत है।
सुमरहिं भाव अज्ञान सुमरन से तुम होतहो।।७।।

दोहा

मैनकाम जीत्यो वली, मैनकाम रस लीन।
मैनकाम अपनो कियो, मैनकाम आधीन।।८।।

---

(४) हे सुजान! (पीरे) पियरे अर्थात् प्यारे होओ। (पीरे) दु:खित (का रे) क्यों हो रहे हो, और तुम बिना ज्ञान के ही (पीरे) पीड़े अर्थात् दु:खित हुए हो, इसलिए अब बुद्धि रूपी अमृत को (पीरे) पान करो।

(५) हे विमल आत्मन्! अपना (विमल) कर्मों से रहित स्वरूप मान करके (तू ज्ञान में आन) ज्ञान को प्राप्त हो, (विमल) विशेष मलरहित सिद्ध संसार में से ही जानों, क्योंकि विमल मलसहित से होता है, भावार्थ मोक्ष संसारपूर्वकही होता है।

(६) हे आत्मन! यह अज्ञानभाव (उजरे) उजड़े अर्थात् विनाश को प्राप्त हुए जिनसे आत्मा (उजरे) उजले अर्थात् प्रगटरूप से बंद हो रहा था, और जब ज्ञान सूर्य (उजरे) उज्ज्वल देखे गये, तब चारों गतों से (उजरे) छूटे भावार्थ सिद्ध पद को प्राप्त हुए।

(७) हे भाई! ध्यान में आत्मा का स्मरण करो जिसके स्मरण से कार्य सिद्ध होता है, अथवा जिससे सिद्ध होते हो, अज्ञान भावों के (सुमेरहिं) विलकुल नष्ट हो जाने से तुम (सुमरन से) स्मरण करने योग्य (परमात्मा) हो सकते हो।

(८) मैं बलवान काम को न जीत सका और (मैंनकाम) मैं 'नकाम'

मैनासे तुम क्यों भये, मैनासे सिध होय।
मैनाहीं वा ज्ञानमें, मैनरूप निज जोय।।९।।

जैगी सो जानिये, वसै सजोगीगेह[१]।
सोई जोगी जोगहै[२], सब जोगी सिरतेह।।१०।।

तारी[३] पी तुल भूलके, तारीतन रसलीन।
तारी खोजहु ज्ञानकी, तारी पति परवीन।।११।।

जिन[४] भूलहु तुम भर्ममें, जिन भूलहु जिनधर्म।
जिन[५] भूलहिं, तुम भूलहो, जिन शासनको मर्म।।१२।।

फिरे[६] बहुत संसार में, फिर फिर थाके नाहिं।
फिरे[७] जबहि [८]निजरूपको, फिरे न चहुं गति माहिं।।१३।।

हरी खात हो बावरे, हरी तोरि मति कौन।
हरी भजो आपौ तजो, हरी रीति सुख हौन।।१४।।

व्यर्थ रसलीन अर्थात् विषयासक्त हुआ। मैनकाम कहिये कामदेव के आधीन होकर मैंने अपना काम न किया अर्थात् आत्मकल्यान नहीं किया।

(१०) (पी) हे प्रिय! तुम (तारी) ध्यान को भूल करके अथवा तारी कहिये मोहरूपी नसा पी कहिये पिया और (तारीतन) संसार की अथवा मोह की रीतियों में लवलीन हो रहे हो, इसलिये हे प्रवीण तुम ज्ञान की (तारी) ताली अर्थात् कुंजी (चाबी) 'खोजा' तलाश करो, जो (तारी) तुम्हारी (पत) लज्जा है अथवा तुम प्रवीन और तारीपति कहिये ज्ञानरूपी तारी के पति हो।

(१४) हे (बावरे) भोले जीव! तेरी मति किसने हरली है, जो तू (हरी)

---

१. तेरहवें गुणस्थान में। २. योग्य है। ३. एक प्रकार का नशा। ४. मत (निषेधार्थ)। ५. जिनेश्वर भगवान को। ६. भ्रमण करे। ७. पलटे, सन्मुख होवे। ८. आत्मरूप।

द्वयक्षरी दोहा

जैनी जानै जैन नै, जिन जिन जानी जैन।
जेजे जैनी जैन जन, जानै निज निज नैन।।१५।।

परमारथ परमें नहीं, परमारथ निज पास।
परमारथ परिचय विना, प्राणी रहै उदास[1]।१६।।

परमारथ जानें परम, पर[2] नहिं जाने भेद।
परमारथ निज परखिबो, दर्शन ज्ञान अभेद।।१७।।

परमारथ निज जानिबो, यहै परमको[3] राज।
परमारथ जाने नहीं, कहौ परम किहि काज।।१८।।

आप पराये वश परे, आपा डार्‌यो खोय।
आप[4] आप जाने नहीं, आप प्रगट क्यों होय।।१९।।

सब सुख सांचेमें बसै, सांचो है सब झूठ।
सांचो झूठ वहायके, चलो जगतसों रूठ।।२०।।

जिनकी महिमा जेलखें, ते जिन[5] होहिं निदान।
जिनवानी यों कहत है, जिन जानहु कछु आन।।२१।।

(सचित्त वस्तुएँ) खाता है, अब आपौ (ममत्व) छोड़ करके (हरी) सिद्ध भगवान को भजो अर्थात् ध्यावो। यही सुख होनेवाली (हरी) ताजी अथवा उत्तम रीति है।

(१५) जैनी जैनशास्त्रोक्त नयों को जानता है, और (जिन) जिन्होंने उन नयों को (जिन) नहीं जानीं, उनकी (जैन) जय नहीं होती है, इसलिए (जेजे) जो जो (जैनजन) जिनधर्म के दास जैनी हैं, वे अपनी अपनी (नैन) नयों को अवश्य ही जानें अर्थात् समझें।

(२०) सम्पूर्ण सुख सांचे में अर्थात् सच्चे स्वरूप में है, और सांचा

---

१. दुखित। २. परन्तु। ३. आतमा। ४. आप अपने को नहीं जानता। ५. तीर्थंकर।

ध्यान धरो निजरूपको, ज्ञान[1] माहिं उर आन।
तुम तो राजा जगतके, चेतहु विनती मान।।२२।।

चेतन रूप अनूप है, जो पहिचानें कोय।
तीन लोकके नाथकी, महिमा पावे सोय।।२३।।

जिन पूजहिं जिनवर नमहिं, धरहिं सुथिरता ध्यान।
केवलपदमहिमा लखहिं, ते जिय सम्यकवान।।२४।।

मुद्दत लों परवश रहे, मुद्दत कर निज नैन।
मुद्दत आई ज्ञानकी, मुद्दतकी, गुरु बैन।।२५।।

ज्ञान दृष्टि धर देखिये, शिष्ट[2] न यामहिं कोय।
इष्ट[3] करै पर वस्तुसों, भिष्ट[4] रीति है सोय।।२६।।

तुम तौ पद्म समान हो, सदा अलिप्त स्वभाव।
लिप्त भये गोरस[5] विषें, ताको कौन उपाव।।२७।।

वेदभाव[6] सब त्याग कर, वेद[7] ब्रह्मको रूप।
वेद[8] माहिं सब खोज[9] है, जो वेदे चिद्रूप[10]।।२८।।

अर्थात् पौद्गलिकदेह रूपी सांचा बिलकुल झूठा अर्थात् अस्थिर है, इसलिए (सांचो झूठ) इस देहरूपी झूठे, सांचे को त्याग करके, संसारसों (रूठ) रुष्ट होकर चल अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर।

(२५) हे आत्मन्! तुम अपने नेत्रों को (मुदित) मुद्रित अर्थात् बंद करके (मुद्दतलों) बहुत समय तक परवश अर्थात् पुद्गल के वश में रहे; परन्तु जब ज्ञान की (मुद्दत) अवधि आई, तब गुरु के वचनों ने (मुद्दत) मदत अर्थात् सहायता कीन्हीं।

---

१. हृदय में ज्ञान ला करके। २. उत्तम। ३. प्यार। ४. भ्रष्ट खराब। ५. 'गो' इन्द्रियों के 'रस' विषय में। ६. स्त्रींपुनपसकभाव। ७. आत्मा का स्वरूप जान। ८. शास्त्रों में। ९. पता। १०. यदि चिद्रूप को जानता हो तो। नहीं तो कुछ नहीं।

अनुभवमें जोलों नहीं, तोलों अनुभव नाहिं।
जे अनुभव जानें नहीं, ते जी अनुभव माहिं।।२९।।

अपने रूप स्वरूपसों, जो जिय राखै प्रेम।
सो निहचै शिवपद लहै, [१]मनसावाचानेम।।३०।।

प्रश्नोत्तर

षट दर्शनमें को शिरैं? कहा धर्मको मूल?।
मिथ्यातीके ह्वै कहा? 'जैन' कह्यो सु कबूल।।३१।।

वीतराग कीन्हों कहा? को चन्दा की सैन?।
धामद्वार[२] को रहत है? 'तारे' सुन शिख बैन।।३२।।

धर्म पंथ कोनें कह्यो? कौन तरै संसार?।
कहो[३] रंकवल्लभ कहा? 'गुरु' बोलै वच सार।।३३।।

कहो स्वामि को देव है? को[४] कोकिल सम काग?।
को न नेह सज्जन करै? सुनहु शिष्य विनराग।।३४।।

गुरु संगति कहा पाइये? किहि विन भूलै भर्म?।
कहो जीव काहे मयी? 'ज्ञान' कह्यो गुरु मर्म।।३५।।

---

(२९) जबतक अनुभव = 'अनु-पश्चात्' भव=संसार में नहीं अर्थात् जबतक थोड़े भव बाकी न रहें, तबतक 'अनुभव', अर्थात् सम्यक ज्ञान नहीं है, क्योंकि जो अनुभव (सम्यक्ज्ञान) नहीं जानते हैं, वे 'अनुभव', अर्थात् पीछे संसार में ही पड़े रहते हैं।

(३१) छहों दर्शन में जैनदर्शन श्रेष्ठ है, धर्मों का मूल जैन है, मिथ्याती के जैन अर्थात् जै (विजय) नहीं होती।

---

१. मन से और वचन से। २. घर। ३. गरीब का वल्लभ अर्थात् प्यारा गुरु (भारी) पदार्थ होता है। ४. जो कोयल बिना राग (मोटी आवाज) कीहो वह काग समान ही है।

जिन[1] पूजैं ते हैं किसे? किहतें जगमें मान?।
पंचमहाव्रत जे धरैं, 'धन' बोले गुरु ज्ञान।।३६।।

छिन छिन छीजै देह नर, कित ह्वै रहो अचेत।
तेरे शिर पर अरि चढ्यो, काल दमामों देत।।३७।।

जो जन परसों हित करै, निज सुधि सबै विसार।
सो चिन्तामणि रत्न सम, गयो जन्म नर हार।।३८।।

जैसे प्रगट [2]पतंगके, दीप माहिं परकाश।
तैसे ज्ञान उदोतसों, होय तिमिरको नाश।।३९।।

चार माहिं जोलों फिरै, धरै चारसों प्रीति।
तौलों चार लखै नहीं, चार खूंट यह रीति।।४०।।

जे लागे दशबीससों, ते तेरह पंचास।
सोरह बासठ कीजिये, छांड चारको वास।।४१।।

विधि कीजे विधि भाव तज, सिद्ध प्रसिद्ध न होय।
यहै ज्ञानको अंग है, जो घट बूझै कोय।।४२।।

---

(४०) जीव जब तक चार माहिं अर्थात् चार गतीन (देव, मनुष्य, नरक, तिर्यञ्च) में फिरता है और चार (क्रोध, मान, माया, लोभ) में प्रीति रखता है, तब तक चार अनंत चतुष्टय (अनंतसुख, अनंतज्ञान, अनंतबल, अनंतवीर्य) को प्राप्त भी नहीं कर सकता है, अर्थात् कर्मों से रहित नहीं हो सकता है, यह चार खूंट की रीति है।

(४१) जो दश+बीस=तीस कहिये तृष्णा से अथवा स्त्री से अनुरक्त हुए, वह तेरह+पंचास+कहिये तेसठ हैं अर्थात् मूर्ख हैं। इसलिए सोलह+बासठ+अठहत्तर कहिये आठ कर्मों को हतकर तर कहिये तिरो और चार गतिन का बास छोड़ दो (इसमें संख्या शब्दों से श्लेष रूप द्वितीय अर्थ ग्रहण कर कवि ने चतुराई दिखाई।)

---

१. जो जिन भगवान की पूजा करते हैं, वे धन अर्थात् धन्य हैं। २. सूर्य।

वार[१] व्यसन को नृपति जो, प्रभु जुआ तो ज्ञान।
तुम राजा शिवलोकके, वह दुरमतिकी खान।।४३।।

आप अकेलो ब्रह्म मय, पर्‍यो भरमके फंद।
ज्ञानशक्ति जानें नहीं, कैसें होय स्वछंद।।४४।।

शिवस्वरूपके लखतहीं, शिवसुख होय अनंत।
शिव समाधिमें रम रहे, शिव मूरति भगवंत।।४५।।

बालापन गोकुलवसे, यौवन मनमथ राज।
वृन्दावन पर रस रचे, द्वारे कुबजा काज।।४६।।

दिना दशकके कारणे, सब सुख डार्‍यो खोय।
विकल भयो संसार में, ताहि मुक्ति क्यों कोय।।४७।।

या माया सों राचिके, तुम जिन भूलहु हंस।
संगति याकी त्यागके, चीन्हों अपनो अंस।।४८।।

जोगी[२] न्यारो [३]जोगतें, करै जोग[४] सब काज।
जोग[५] जुगत जानें सवै, सो जोगी शिवराज[६]।।४९।।

---

(४६) कृष्णजी बालापन में गोकुल में रहे। यौवन में मथुरा में, और फिर कुब्जा परस्त्री के रस में मग्न हो उसके द्वारे वृन्दावन में रहे। इसी प्रकार हे जीव! तू बालापने में तो गोकुल अर्थात् इन्द्रियों के कुल समूह में अथवा उनकी केलि में रहा, और जवानी में मनमथ अर्थात् कामदेव के राज्य में रहा अर्थात् वश में रहा, और पीछे वृन्दावन जो कुटुम्ब समूह उसमें रचा। काहे के लिये, द्वारे कुबजाकाज, कहिये द्वार जो आस्रव उसके कबजे में आने को अथवा द्वार जो मोक्ष का उसको कुब्ज अर्थात् वृन्द करने के लिये।

---

१. सात। २. आत्मा। ३.मन वचन काय के योग। ४. योग्य (उचित)। ५.योग (ध्यान)। ६. मोक्ष।

जाकी महिमा जगतमें, लोकालोक प्रकाश।
सो अविनाशी घट विषें, कीन्हों आय निवास।।५०।।

केवल रूप स्वरूपमें, कर्म कलंक न होय।
सो अविनाशी आतमा, निजघट परगट होय।।५१।।

धर्म्माधर्म्म स्वभाव निज, धरहु ध्यान उरआन।
दर्शन ज्ञान चरित्रमें, केवल ब्रह्म प्रमान।।५२।।

निज चन्दाकी चाँदनी, जिहि घटमें परकाश।
तिहिँ घटमें उद्योत ह्वै, होय तिमरको नाश।।५३।।

जित देखत तित चाँदनी, जब निज नैनन जोत[1]।
नैन मिचत[2] पेखै नहीं, कौन चांदनी होत।।५४।।

ज्ञान भान[3] परगट भयो, तम अरि नामे दूर।
धर्म कर्म मारग लख्यो, यह महिमा रहिपूर।।५५।।

जेतन की संगति किये, चेतन होत अजान।
ते तनसों ममता धरै, आपुनो कौन सयान[4]।।५६।।

जे तन सों दुख होत है, यहै अचंभो मोहि।
चेतन सों ममता धरै, चेतन! चेत न तोहि।।५७।।

जा तनसों तू निज कहै, सो तन तौ तुझ नाहिं।
ज्ञान प्राण संयुक्त जो, सो तन तौ तुझ माहिं।।५८।।

जाके लखत यहै लख्यो, यह मै यह पर होय।
महिमा सम्यक् ज्ञानकी, बिरला बूझै कोय।।५९।।

छहों द्रव्य अपने सहज, राजत हैं जग माहिं।
निहचै दृष्टि विलोकिये, परमें कबहूं नाहिं।।६०।।

---

१. ज्योतिप्रकाश। २. बन्द होते। ३. सूर्य। ४. चातुर्य्य।

जड़ चेतन की भिन्नता, परम देवको राज।
सम्यक होत यहै लख्यो, एक पंथ द्वै काज।।६१।।

समुझै पूरण ब्रह्मको, रहै लोभ लौ[१] लाय।
जान बूझ कूए परै, तासों कहा वसाय।।६२।।

जाकी प्रीतिप्रभावसों, जीत न कबहू होय।
ताकी महिमा जे धरें, दुरबुद्धी जिय सोय।।६३।।

जाकी परम दशाविषैं, कर्म कलंक न कोय।
ताकी प्रीतिप्रभावसों, जीव जगतमें होय।।६४।।

अपनी नवनिधि छांड़ि कै, मांगत घर घर भीख।
जान बूझ कूए परै, ताहि कहौ कहा सीख।।६५।।

मूढ़ मगन मिथ्यातमें, समुझै नाहिं निठोल[२]।
कानी[३] कौड़ी कारणे, खोवै रतन अमोल।।६६।।

कानी कौड़ी विषय सुख, नरभव रतन अमोल।
पूरव पुन्यहिं कर चढ्यो, भेद न लहैं निठोल।।६७।।

चौरासी लखमें फिरै, रागद्वेष परसंग।
तिनसों प्रीति न कीजिये, यहै ज्ञानको अंग।।६८।।

चल चेतन तहां जाइये, जहां न राग विरोध।
निजस्वभाव परकाशिये, कीजे आतम बोध।।६९।।

तेरें वाग[४] सुज्ञान हैं, निज गुण फूल विशाल।
ताहि विलोकहु परमतुम[५], छांडि आल जंजाल।।७०।।

छहों द्रव्य अपने सहज, फूले फूल सुरंग।
तिनसों नेह न कीजिये, यहै ज्ञानको अंग।।७१।।

---

१. ममता। २. निठल्ला बेकाम मूर्ख। ३. फूटी। ४. बगीचा। ५. शुद्धात्मा।

सांच विसार्‍यो भूलके, करी झूठसों प्रीति।
ताहीतें दुख होत हैं, जो यह गही अनीति।।७२।।
हित शिक्षा इतनी यहै, हंस सुनहु आदेश।
गहिये शुद्ध स्वभावको, तजिये कर्म कलेश।।७३।।

सोरठा

ज्यों नर सोवत कोय, स्वप्न माहिं राजा भयो।
त्यों मन मूरख होय, देखहि सम्पति भरमकी।।७४।।
कहहु कौन यह रीति, मोहि बतावहु परमतुम।
तिन ही सों पुनि प्रीति, जो नरकहिं ले जात हैं।।७५।।
अहो! जगतके राय, मानहु एती वीनती।
त्यागहु पर परजाय, काहे भूले भरममें।।७६।।
एहो! चेतनराय, परसों प्रीति कहा करी।
जो नरकहिं ले जाय, तिनही सों राचे सदा।।७७।।
तुम तौ परम सयान, परसों प्रीति कहा करी।
किहिगुण[१] भये अयान, मोहि बतावहु सांच तुम।।७८।।
कर्म्म शुभाशुभ दोय, तिनसों आपौ मानिये।
कहहु मुक्ति क्यों होय, जो इन मारग अनुसरैं।।७९।।
मायाहीके फन्द, अरुझे चेतनराय तुम।
कैसे होहु स्वच्छन्द, देखहु ज्ञान विचारके।।८०।।
एहो! परम सयान, कौन सयानप[२] तुम करी।
काहे भये अयान, अपनी जो रिधि छांड़िके।।८१।।
तीन लोकके नाथ, जगवासी तुम क्यों भये।
गहहु ज्ञानको साथ, आवहु अपने थल[३] विषैं।।८२।।

---

१. किसकारण। २. चतुरता। ३. मोक्षस्थल।

तुम पूनों[१] सम चन्द, पूरण ज्योति सदा भरे।
परे पराये फन्द, चेतहु चेतनरायजू।।८३।।
जानहिं गुण पर्य्याय, ऐसे चेतनराय हैं।
नैनन लेहु लखाय, एहो! सन्त सुजान नर।।८४।।
सब कोउ करत किलोल, अपने अपने सहजमें।
भेद न लहत निठोल[२], भूलत मिथ्या भरममें।।८५।।

दोहा

आन न मानहि औरकी, आनें उर जिनबैन।
आनन देखै परमको, सो आनें शिव ऐन।।८६।।
'लो' गनको लागो रहे, 'भ' वजल बोरै आन।
ये द्वय[३] अक्षर आदिके, तजहु ताह पहिचान।।८७।।
जित देखहु तित देखिये, पुद्गलहीसों प्रीत।
पुद्गल हारे हार अरु, पुद्गल जीते जीत।।८८।।
पुद्गलको कहा देखिये, धरै विनाशी रूप।
देखहु आतम सम्पदा, चिद्विलासचिद्रूप।।८९।।
भोजन जल थोरो निपट[४], थोरी नींद कषाय।
सो मुनि थोरे कालमें, वसहिं मुकतिमें जाय।।९०।।
जगत फिरत कै जुग[५] भये, सो कछु कियो विचार।
चेतन अब किन चेतहू, नरभव लह अतिसार[६]।।९१।।
दुर्ल्लभ दश दृष्टांतसों, सो नर भव तुम पाय।
विषय सुखनके कारणे, सर्वस[७] चले गँवाय।।९२।।

---

(८६) जो और (अन्यधर्मवालों) की (आन) आज्ञा अथवा लज्जा नहीं मानता है, अपने हृदय में भगवान के वचनों को धारण करता और परम अर्थात् शुद्धात्मा का 'आनन' मुख अर्थात् रूप अवलोकन करता है, वह यथार्थ मोक्ष को प्राप्त करता है।

---

१. पूर्णिमा। २. मूर्ख। ३. लोभ। ४. अत्यन्त। ५. युग। ६. श्रेष्ठ। ७. श्रेष्ठ।

ऐसी मति विभ्रम भई, विषयन लागत धाय[1]।
कै दिन कै छिन कै घरी, यह सुख थिर ठहराय।।९३।।
देखहु तो निज दृष्टिसों, जगमें थिर कछु आह।
सबै विनाशी देखिये, को तज गहिये काह।।९४।।
केवल शुद्ध स्वभावमें, परम अतीन्द्रिय रूप।
सो अविनाशी आतमा, चिद्विलास चिद्रूप[2]।।९५।।
जैसो [3]शिवखेतहिं वसै, तैसो या तनमाहिं।
निश्चय दृष्टि निहारिये, फेर रंच कहुं नाहिं।।९६।।
चेतन कर्म उपाधि तज, रागद्वेषको संग।
जे प्रगटै निज सम्पदा, शिव सुख होय अभंग।।९७।।
तू अनंत सुखको धनी, सुखमय तोहि स्वभाव।
करते छिनमें प्रगट निज, होठ बैठ शिवराव।।९८।।
ज्ञान दिवाकर[4] प्रगटते, दश दिशि होय प्रकाश।
ऐसी महिमा ब्रह्मकी, कहत भगवतीदास।।९९।।
जुगल चन्दकी जे कला, अरु संयमके भेद।
सो संवत्सर जानिये, फाल्गुण तीज सुपेद।।१००।।

इति परमात्मशतकम्।

------

(१००) (जुगलचन्दकी जे कला) चन्द्रकी सोलह कला के जो जुगल (दूने) बत्तीस और संयम (नियम) के भेद सत्रह अर्थात् १७३२ सम्वत् की फाल्गुण सुपेद (सुदी) तीज – 'फाल्गुनशुक्ल तृतीया सम्वत् १७३२ विक्रमाब्द को यह परमात्मशतक बनाया।'

१. दौड़ के। २. सिद्धपरमात्मा। ३. मोक्षक्षेत्र में। ४. सूर्य।
– इस शतक के ९१, ९२, ९३ नं० के दोहे वैराग्यपच्चीसी में भी आये हैं।

अथ चित्रबद्धकविता.

अनुष्टुपछन्द,

आपा थान न था पाआ ।
चार मार रमा रचा ॥
राधा सील लसी धारा ।
साद साम मसा दसा ॥ १ ॥

पादानुपादगतागत चित्रम्.

आ	पा	था	न
चा	र	मा	र
रा	धा	सी	ल
सा	द	सा	म

दोहा.

पर्म सेव पर सेव तज, निज उधरन मनधारि ॥
धर्म सेव वर सेव सज, निज सुधरन धनधारि ॥ २ ॥

त्रिपदीबद्धचित्रम्.

प	से	प	से	त	नि	उ	र	म	धा
र्म	व	र	व	ज	ज	ध	न	न	रि
ध	से	व	से	स	नि	सु	र	ध	धा

त्रिपदीपंचकोटकं.

पर्म	पर	तज	उध	मन
सेव	सेव	निज	रन	धारि
धर्म	वर	सज	सुध	धन

अन्य सप्तकोटकंत्रिपदी.

पर्म	वप	सेव	जनि	उध	नम	धा
से	र	त	ज	र	न	रि
धर्म	वर	सेंव	जिन	सुध	नध	धा

दोहा.

जैन धर्म में जीव की, कही जात तहकीक ॥
जैन धर्म में जीत की, लही वात यह ठीक ॥ २ ॥

एकाक्षर त्रिपदीबद्ध चक्रम्.

जै	ध	में	व	क	जा	त	की
न	र्म	जी	की	ही	त	ह	क
जै	ध	में	त	ल	वा	य	ठी

कपाटबद्ध चक्रम्.

जै	न	{ }	न	जै
ध	र्म		र्म	ध
में	जी		जी	में
व	की	{ }	की	त
क	ही		ही	ल
जा	त		त	वा
त	ह		ह	य
की	क	{ }	क	ठी

अश्वगतिबद्ध चित्रम्.

जै	न	ध	र्म	में	जी	व	की
क	ही	जा	त	त	ह	की	क
जै	न	ध	र्म	में	जी	त	की
ल	ही	वा	त	य	ह	ठी	क

छन्द (मात्रा १०) अनुप्रासरहित.

न तनमें मैंन तन, तहेम सु सुमहेत ॥
न मनमें मैंन मन, मैं सु मैं हौं हौं मै सु मै ॥ ४ ॥

सर्वतोभद्रगति चित्रम्.

न	त	न	मै	मै	न	त	न
त	हे	म	सु	सु	म	हे	त
न	म	न	मै	मै	न	म	न
मै	सु	मै	हौं	हौं	मै	सु	मै
मै	सु	मै	हौं	हौं	मै	सु	मै
न	म	न	मै	मै	न	म	न
त	हे	म	सु	सु	म	हे	त
न	त	न	मै	मै	न	त	न

मात्रिक सवैया (३२मात्रा)

या मनके मान हरनको भैया, तू निहचै निज जानि दया।
को हित तोहि विचारत क्यों नहिं, रागरुद्धेष निवारि नया॥
भर्मादिक भाव विछेद करो, ज्यों तोहि लोपन प्रकाश भया।
यामन मानह कोन भलो, नन लोभ न कोह न मान मया॥ ५॥

पर्वतबद्ध चित्रम्.

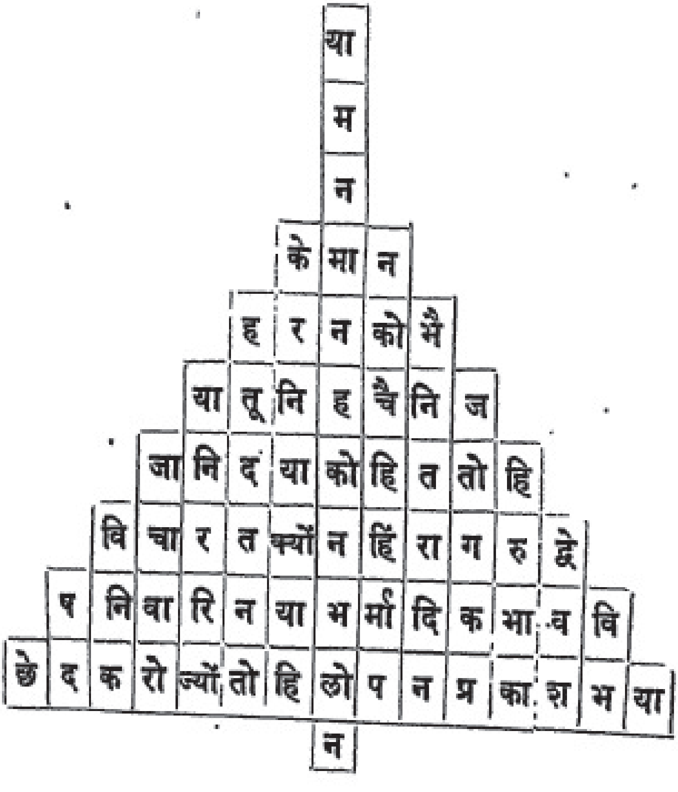

दोहा.

जैनधर्ममें जीवकी, कही जान तहकीक ॥
जैन धर्ममें जीव की, लही बात यह ठीक ॥ ५ ॥

चटाई बद्ध चित्रम्.

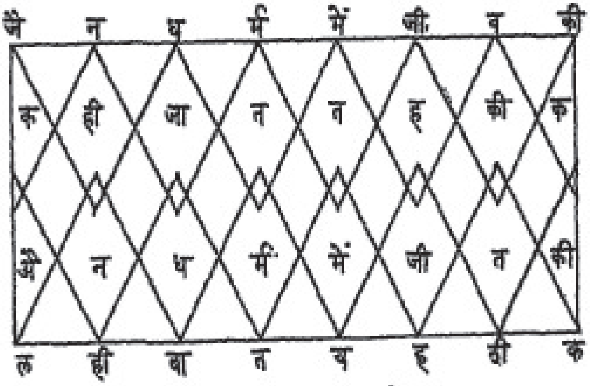

दोहा- करमनसों कर युद्ध तू, करले ज्ञान कमान ॥
तान सबलसों परम तू, मारो मनमथ जान ॥ ६ ॥

चक्र बद्ध चित्रम्.

दोहा.

परम धरम अवधारि तू, पर संगति कर दूर ॥
ज्यों प्रगटै परमातमा, सुख संपति रहै पूर ॥ ७ ॥

धनुषबद्धचित्रम्.

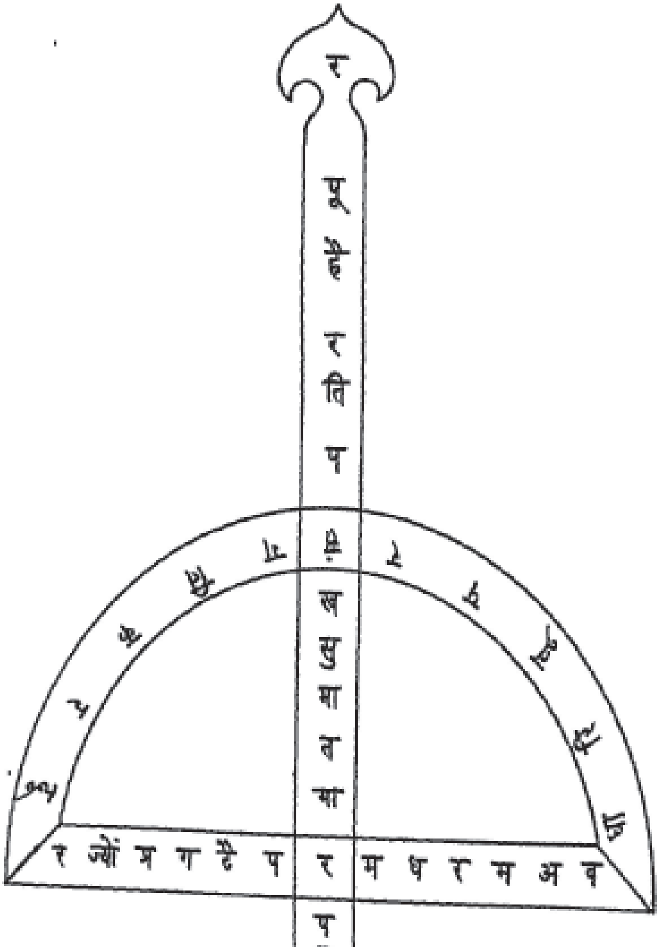

आभीर छंद.

रामदेव चित चाहि। सामदेव नित गाहि॥
जामदेव मित पाहि। तामदेव हित ठाहि॥ ८॥

सर्वतो भद्रगति चित्रम्.

दोहा- आप आप थप जाप जप, तप तप खप वप पाप॥
काप कोप रिप लोप जिप, दिप दिप त्रप दप वाप॥ ९॥

विंशतिपत्र कमलाकार वद्ध चित्रम्.

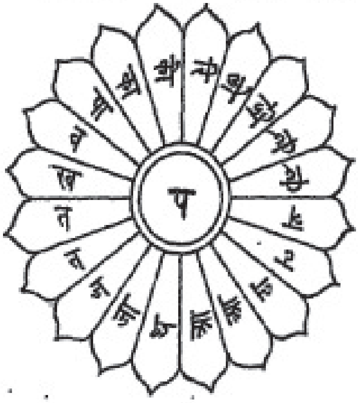

दोहा.

आप आप थप जाप जप, तप तप खप वप पाप ॥
काप कोप रिप लोप जिप, दिप दिप नप टप ताप ॥१॥

हारबद्धचित्रम्.

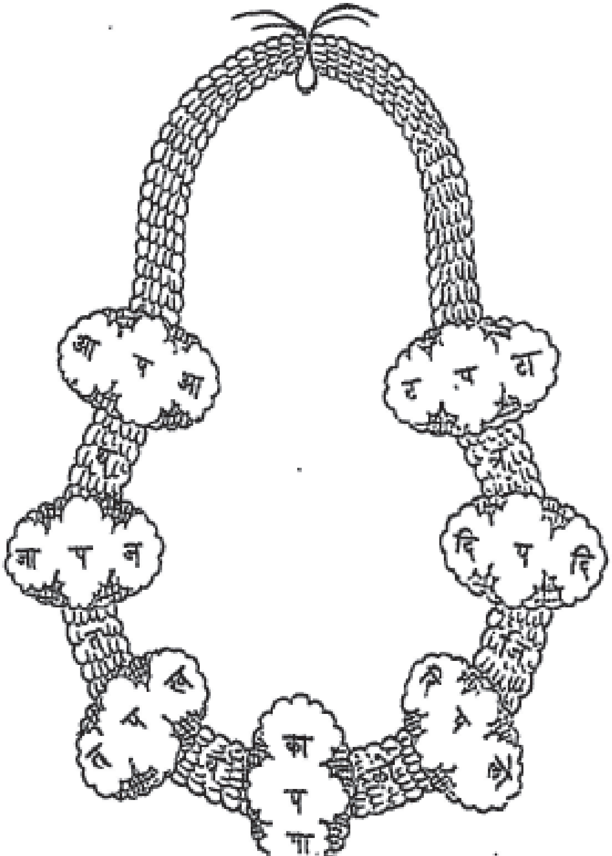

नाग बद्ध चित्रम्.

षटपद.
श्री रिषभ अजित संभव अभिनंदन।
सुमति नलिन सुपार्श्व चन्द्र प्रभ वंदन॥
सुविध शीतल श्रांस वासु पूज्य अरिगंजन।
नाथ जगत भय हरै विमल अभि रंजन॥
सु अनंत धर्म जिन चन्द्र शांति अरि कुंति मलि।
वंदि मुनि सुव्रत नमि नेमि नर पास श्री वीर वलि
॥१०॥

दोहा

अरि परि हरि अरि हेरि हरि, चेरि चेरि अरि टारि ।।
करि करि थिरि थिरि धारि धरि, फिरि फिरि तरि तरि तारि ।।११।।

चामराकार बद्ध चित्रम्.

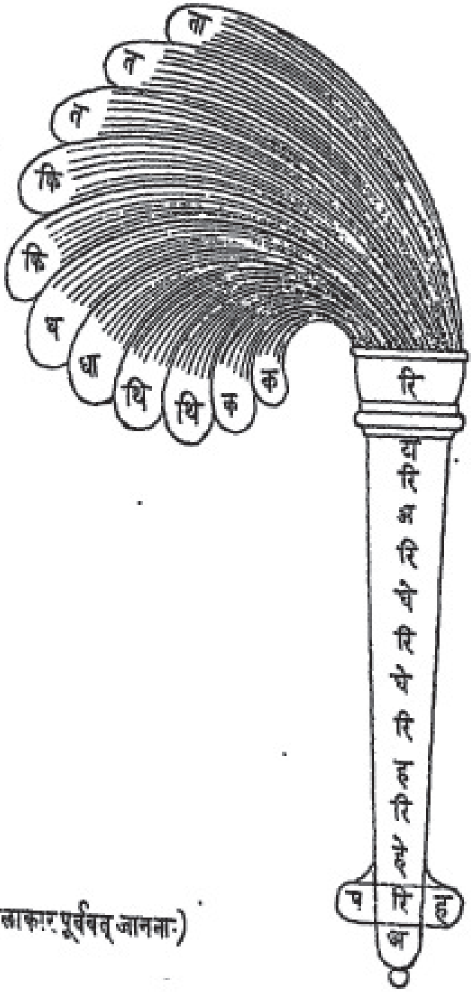

(कमलाकार पूर्ववत् जानना:)

द्वितीय नाग बन्ध.

षट्पद.
तजहु पंचरिपु चलन,
रचहु निज परजी। पापरीत पर
हरहु रतनकिमवरजी ॥ मनधर
पर्म स्वरूप, देख अदभुन वदन ।पूरन
निज गुन भर्यो, सुमति जीते मदन॥
यहु एक बहुत कर्म,नमिलें, छिन२
नृत्य करंत। सहि जान पंचपद सुम-
रिलें,सु भवसागरहिं तरंत॥
१२

तृतीय नागबद्ध- चहिलपिका.

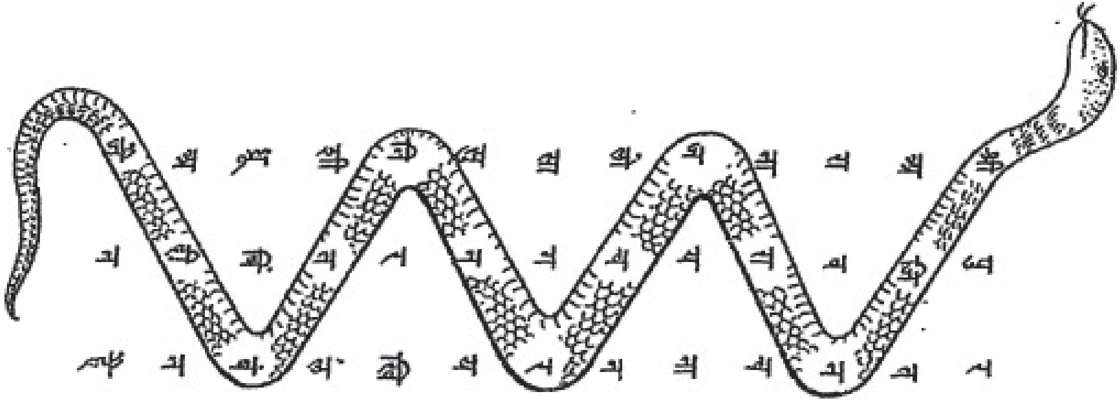

षट्पद-

कहाँ अंसको जनम? नाम कहा दूजे जिनको? । कौन सीय अपहरीं? कहो तीजो संहनको?॥
दयावंत कहा करै? कौन वर्णादिक पेखै?॥ कौं अति जल संग्रहै? श्रवण गुण को कहु लेखै?॥
साधु चलत किम धरणिपर? मद्दलिपुर जिन कवन हुव?॥ कवन अकिंचन? कवन प्रभु? कवन शिरोमणि धर्म तुव?॥१३॥

अथग्रंथकर्त्ता परिचय।

चौपाई

जंबूद्वीप सु भारत वर्ष। तामें आर्य क्षेत्र उत्कर्ष।।
तहाँ उग्रसेन पुर थान। नगर आगरा नाम प्रधान।।१।।
तहाँ वसहिं जिनधर्मी लोक। पुण्यवन्त बहु गुणके थोक।।
बुद्धिवन्त शुभ चर्चा करें। अखय भँडार धर्मको भरें।।२।।
नृपति तहाँ राजै औरंग। जाकी आज्ञा वहै अभंग।।
ईति भीति व्यापै नहिं कोय। यह उपकार नृपतिको होय।।३।।
तहाँ जाति उत्तम बहु बसै। तामें ओसवाल पुनि लसै।
तिनके गोत बहुत विस्तार। नाम कहत नहिं आवै पार।।४।।
सबतें छोटो गोत प्रसिद्ध। नाम कटारिया रिद्धि समृद्ध।।
दशरथसाहु पुण्यके धनी। तिनके रिद्ध वृद्धि अति घनी।।५।।
तिनके पुत्र लालजी भये। धर्मवंत गुणगण निर्मये।।
तिनके पुत्र भगवतीदास। जिन यह कीन्हों 'ब्रह्मविलास'।।६।।
जामें निज आतमकी कथा। ब्रह्मविलास नाम है यथा।।
बुद्धिवंत हँसियो मत कोय। अल्पमती भाषा कवि होय।।७।।
भूल चूक निज नयन निहार। शुद्ध कीजियो अर्थ विचार।।
संवत सत्रह पंचपचास। ऋतुवसंत वैशाख सुमास।।८।।
शुक्लपक्ष तृतिया रविवार। संघ चतुर्विधको जयकार।।
पढत सुनत सबको कल्यान। प्रगट होय निजआतम ज्ञान।।९।।
तिहूं कालके जिन भगवान। वंदन करों जोर जुग पान।।
भैया नाम भगवतीदास। प्रगट होहु तसु ब्रह्मविलास।।१०।।
बहुत बात कहिये कहा घनी। जीव यहै त्रिभुवनको धनी।।
प्रगट होय जब केवल ज्ञान। शुद्धस्वरूप यही भगवान।।११।।

इति श्रीआगरानिवासी भैया भगवतीदासजीकृत ब्रह्मविलास सम्पूर्ण।